जयप्रकाश नारायण

राष्ट्रीय जीवनचरित

जयप्रकाश नारायण

सुधांशु रंजन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1063-1

पहला संस्करण 1994
दूसरी आवृत्ति 2000 (*शक 1922*)
© सुधांशु रंजन, 1994
Jai Prakash Narain *(Hindi)*
रु. 50.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

भूमिका

स्वतंत्र भारत में जनता का सबसे ज्यादा प्यार और सम्मान जिन दो नेताओं को मिला, वे थे– पंडित जवाहरलाल नेहरू और जयप्रकाश नारायण। दोनों में मौलिक अंतर यह रहा कि जहां नेहरू हमेशा राजसत्ता के शिखर पर रहे, जयप्रकाश हमेशा अपने को राजसत्ता से अलग रखकर लोकसत्ता को मजबूत करने में लगे रहे। दरअसल, महात्मा गांधी के बाद ऐसा करने वालों में वे एकमात्र व्यक्ति थे। वे राजनीति और राजसत्ता के ऊपर लोकनीति और लोकसत्ता का अंकुश रखने के पक्षधर थे ताकि राजसत्ता को भ्रष्ट होने से बचाया जा सके। ऐसा व्यक्ति बार-बार नहीं आता और जब एक बार आता है तो फिर जाता भी नहीं।

जयप्रकाश जी के बारे में कई भ्रांतियां हैं। कुछ लोगों ने उन्हें पलायनवादी कहा है तो कुछ की नजरों में उनके विचारों में तारतम्य नहीं है और वे कभी एक रास्ते पर नहीं चल पाये। ऐसे व्यक्तियों ने न तो उनके व्यक्तित्व को परखा और न ही उनके विचारों पर गौर किया है।

पलायनवाद का आरोप लगाने का एक मुख्य कारण यह है कि उन्होंने कभी कोई पद स्वीकार नहीं किया। ऐसा करने का एकमात्र कारण यह था कि वे सामाजिक परिवर्तन में सरकार की भूमिका को सीमित मानते थे। हालांकि महात्मा गांधी की तरह उन्होंने संसदीय संस्था को वेश्या कहकर नहीं नकारा, लेकिन उन्होंने विकेंद्रित आर्थिक विकास और ग्राम-स्वराज की अवधारणा पर बल दिया।

उनके जीवन में ऐसे अवसर कई बार आये जब वे सत्ता के शीर्ष पर जा सकते थे, किंतु कोई ग्द उन्हें कभी आकृष्ट नहीं कर पाया। सन् 1953 में पंडित नेहरू ने जयप्रकाशजी और उनके समाजवादी साथियों को केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होने का आमंत्रण दिया था, किंतु जे. पी. ने सरकार में शामिल होने के लिए 14 शर्तें रखीं। उन्होंने कहा कि एक निश्चित कार्यक्रम पर सहमति हुए बिना वे मंत्री नहीं बनेंगे। वह सहमति हो नहीं पाई। दूसरा अवसर सन् 1962 में आया जब चीनी आक्रमण के कारण तत्कालीन सरकार के विरुद्ध असंतोष था। राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने उनसे कहा, ''जे. पी., मेक रेडी टू टेक ओवर।''[1] कुछ सांसदों ने भी इस दिशा में पहल की। नेतृत्व परिवर्तन का समर्थन करने वालों की बैठक एक समाजवादी साथी पुरुषोत्तम त्रिकमदास के घर हुई और उनसे नेतृत्व

स्वीकार करने का आग्रह किया गया। किंतु जे. पी. ने इसे न केवल ठुकरा दिया बल्कि नेहरू से मिलकर उन्हें अपना समर्थन दिया। फिर सन् 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद प्रधानमंत्री पद के लिए कुछ नेताओं ने जयप्रकाश जी का नाम सुझाया। लालबहादुर शास्त्री ने कहा कि यदि जे. पी. प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार होते हैं तो वे (शास्त्री) अपना नाम वापस ले लेंगे। इस बार भी जे. पी. ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते हुए कहा कि एक बार सत्ता से दूर होने के बाद फिर इससे सटना नहीं है। फिर सन् 1967 में राष्ट्रपति पद के लिए डा. राममनोहर लोहिया और मीनू मसानी ने उनका नाम सुझाया। जे. पी. के नाम पर कई दलों और कांग्रेस के भी कुछ सदस्यों का समर्थन मिलने लगा था। लेकिन उन्होंने डा. जाकिर हुसैन के लिए अपने समर्थन की घोषणा कर दी। इन सबका मात्र एक कारण था : लोक शक्ति में उनकी अटूट आस्था।

उनके विचारों में जिन्हें तारतम्य और सुसंगति नजर नहीं आती, उन्होंने कभी जयप्रकाश जी के विचारों के अंदर झांकने का प्रयास नहीं किया। वे राजनीतिज्ञ से ज्यादा सत्य के अन्वेषक थे। सत्य को जानने की चेष्टा में वे मार्क्सवाद से समाजवाद, गांधीवाद, सर्वोदय आदि कई विचारधाराओं के प्रभाव में आये तथा कई आंदोलनों का नेतृत्व किया। लेकिन जैसे ही उन्हें लगा कि वह आंदोलन सत्य और न्याय की मांगों पर खरा नहीं उतर रहा है, उन्होंने अपने को उससे अलग करने का साहस दिखाया। उनके एक अनन्य मित्र और सहयोगी श्री एस. एम. जोशी ने टिप्पणी की है : "जयप्रकाश नारायण मेरे विचार में, एक राजनीतिज्ञ से ज्यादा एक शिक्षक थे, वे सत्य के अन्वेषक थे। ... जयप्रकाश तह तक ईमानदार थे, और मैं उनके जीवन से अनेक घटनाओं का उदाहरण दे सकता हूं जिससे पता चलेगा कि सत्य और सत्यवादिता का स्थान उनकी नजर में उन सभी सामान्य चीजों से काफी ऊपर था, जिन्हें आप और मैं महत्वपूर्ण समझते हैं।"[2]

उनके हर काम तथा विचार में सबसे ज्यादा जोर होता था जनता पर। 'लोकतंत्र' में वे लोक को सर्वोपरि मानते थे और बाकी सभी चीजों को उसके बाद। इसी भावना से उपजी थी संपूर्ण क्रांति की उनकी अवधारणा। गांधी जी के ग्राम-स्वराज की कल्पना की ही तार्किक परिणति थी संपूर्ण क्रांति। इसका उद्‌देश्य था सामाजिक संरचना को पूरी तरह बदलना क्योंकि उनके विचार में व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो चुकी थी कि बिना पूरी व्यवस्था बदले नैतिक और समतामूलक समाज का निर्माण नहीं हो सकता था। जे. पी. ने सन् 1969 में ही लिखा था, "गांधी की अहिंसा सिर्फ कानून और व्यवस्था की वकालत या यथास्थितिवाद के लिए पर्दा नहीं थी, बल्कि एक क्रांतिकारी दर्शन थी। यह, दरअसल, एक संपूर्ण क्रांति का एक दर्शन है क्योंकि इसमें व्यक्तिगत और सामाजिक आचारों एवं मूल्यों का उतना ही समावेश है, जितना आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं का।"[3]

जयप्रकाश ने देश से कुछ मांगा नहीं, सिर्फ दिया ही। इसलिए देश उनके नैतिक अधिकार को मानता था। चंबल के खूंखार डकैतों को सरकार पकड़ नहीं सकी, लेकिन जयप्रकाश की नैतिकता के वशीभूत होकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह की कई घटनाएं हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी फरियाद लेकर उनके पास आ जाता था। एक बार आनंदमार्गियों का एक अंतर्राष्ट्रीय दल उनके निवास पर इसलिए धरना दे रहा था कि उसके अपने नेता श्री पी. सी. सरकार से जेल में सामूहिक रूप से उनकी मुलाकात करवा दें। इसी प्रकार एक दिन दाऊदी बोहरा-समाज के लोग बड़ी संख्या में जे. पी. के पास आये कि उन्हीं के समाज के सुधारवादी लोगों से उनके रूढ़िवाद को जो खतरा पैदा हुआ है, उससे वे उन्हें बचाएं।

जे. पी. हमेशा समकालीन समस्याओं से जूझते रहे, चाहे वह कश्मीर की समस्या हो या नागालैंड के उग्रवाद की, मुजफ्फरपुर के मुसहरी प्रखंड में नक्सलियों के आतंक की हो या बिहार के अकाल संकट की, बंगलादेश या तिब्बत की हो या विश्व में परमाणु युद्ध के बढ़ रहे खतरे की। जे. पी. एक साथ राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, सहकारिता, शिक्षा, मानवाधिकार तथा अन्य ज्वलंत समस्याओं पर मनन करते रहते थे।

हर समस्या के प्रति उनका दृष्टिकोण मानवीय होता था, जो जाति, धर्म और राष्ट्र की सीमा से परे था। इस कारण कई बार उन्हें देशद्रोही तक कहा गया। दरअसल, वे मूलतः मानवतावादी थे। मानव-मानव में कोई अंतर नहीं करते थे। उनका नौकर भी उनके बिछावन पर सो जाता था, किंतु उन्हें बुरा नहीं लगता था। उनके मित्रों और संबंधियों को इस पर आपत्ति होती थी, लेकिन वे कहते थे कि वह भी तो आदमी ही है। नौकर को हमेशा 'सहायक' कहते थे 'नौकर' नहीं। उनमें बच्चों की सी सरलता थी। मामूली सी बात पर खुश हो जाते और मामूली सी बात पर रूठ जाते।

वे अत्यंत भावुक स्वभाव के थे। एक-दो घटनाओं के जिक्र से उनकी संवेदनशीलता का पता चलता है। सन् 1959 में समाजवादी आंदोलन का रजत-जयंती सम्मेलन बंबई में आयोजित किया गया था। सम्मेलन के पंडाल का नाम उन के एक घनिष्ठ मित्र युसुफ मेहरअली के नाम पर रखा गया था, जिनकी मृत्यु कम उम्र में ही हो गयी थी। सम्मेलन में जे. पी. को आशीर्वचन देने के लिए आमंत्रित किया गया। जब वे बोलने के लिए खड़े हुए, तो उनका गला भर आया और आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। बहुत देर तक वे कुछ बोल नहीं पाये और सम्मेलन में शांति छाई रही।

उनके दिल में इतनी करुणा थी कि किसी की पीड़ा देखकर वे द्रवित हो जाते थे। एक बार वे केदारनाथ गये। सर्वोदयी नेता और समन्वय आश्रम, बोधगया के संस्थापक श्री द्वारको सुंदरानी भी उनके साथ थे। सुंदरानी जी ने मुझे बताया कि वहां चारों ओर बर्फ बिछी हुई थी। एक दिन सवेरे एक जमादार नंगे पांव पाखाना साफ करने उनके कमरे

में गया। जमादार को उस स्थिति में काम करते देखकर उनकी आंखें छलछला आईं, और वे बोले, "देखिए आजादी के इतने दिनों बाद भी इन लोगों की यही स्थिति है। मैंने भी अमेरिका में ऐसे काम किये थे, लेकिन बूट और गर्म कपड़े पहनकर काम करता था।" पत्नी प्रभावती के निधन के लगभग एक वर्ष बाद तक वे उन्हें याद करके रो देते थे।

शिष्टाचार की तो वे प्रतिमूर्ति थे। अपने घर आनेवालों का दिल खोलकर स्वागत करते। कई बार ऐसा होता था कि उन्हें गाड़ी पकड़नी होती और निकलते ही वक्त कोई आ जाता। फिर भी वे उसे जाने को नहीं कहते थे और उससे बातें करने लगते थे। इससे कई बार गाड़ी छूट भी जाती थी। युसुफ मेहरअली ने बड़े प्यार से उनके बारे में लिखा है, "जे. पी. के दो दुर्गुण हैं जो मैं ढूंढ़ पाता हूं। पहला, खूबसूरत शेविंग सेट का उनके पास होना। एक मंद-मंद मुस्कान के साथ वे आपसे कहेंगे कि यह शहर में बेहतरीन है। जब किसी का चेहरा जयप्रकाश के जैसा सुंदर हो तो इसे माफ किया जा सकता है।

"मैं नहीं जानता कि दूसरे का वर्णन मैं कैसे करूं जब तक इसे मैं समय-बोध की कमी न कहूं क्योंकि इसे सीधा समय का पाबंद नहीं होना कहना सपाट होगा। सचाई यह है कि जयप्रकाश अच्छी बहस बहुत पसंद करते हैं, विशेषकर एक तेजस्वी विरोधी के साथ और ऐसा करने में वे आधा दर्जन महत्वपूर्ण मुलाकातें भी भूल जायेंगे। लेकिन उस समय जब वे देर से आते हैं उनके चेहरे पर ऐसी सच्ची विवशता होती है कि देर से आने के कारण ज्यादा प्यारे लगते हैं।"[4] उन्हें हर समय यह चिंता रहती थी कि किसी को उनसे कोई दुःख न हो। इसके साथ ही वे यह प्रयास भी करते थे कि कोई उनके समक्ष अपने को छोटा महसूस न करे। जब उनके सचिव या अन्य कोई व्यक्ति उन्हें कुछ लिखकर देते थे और जे. पी. उसमें कोई अशुद्धि पाते थे तो वे यह नहीं कहते थे कि यह गलत है। बल्कि कहते थे कि यहां पर मुझे थोड़ा संदेह है, इसलिए डिक्शनरी देख लीजिए।

वयोवृद्ध समाजवादी नेता श्री देवेंद्र प्रसाद सिंह ने एक घटना के बारे में मुझे बताया। सन् 1960 के आसपास की बात है। जे. पी. कलकत्ता गये हुए थे। वहां उनसे कुछ सर्वोदयी नेता मिलने गये। देवेंद्र बाबू भी अशोक मेहता के साथ उनसे मिलने पहुंचे। जे. पी. ने उन सर्वोदयी नेताओं का परिचय उन दोनों से कराया, लेकिन अशोक मेहता ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया और न ही आधे घंटे की बातचीत में उनकी ओर कभी देखा। जे. पी. को श्री मेहता का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा और उनके जाने के बाद उन्होंने कहा, "अशोक को यह क्या हो जाता है? उसने इन लोगों को कोई महत्व ही नहीं दिया।" व्यवहार और नियम के भी वे पक्के थे। उनके सामने यदि कोई व्यक्ति चाय भी आवाज करके पीता तो उनका चेहरा मलिन हो जाता।

सादगी इस हद तक थी कि कभी उन्होंने कार नहीं रखी। आराम से रिक्शे-टमटम

से इधर-उधर चले जाते थे। रेल यात्रा में इंटर कलास से ऊपर शायद ही चलते थे।

रूसो की तरह जे. पी. की भी मनुष्य की आधारभूत अच्छाइयों में गहरी आस्था थी। वे आश्वस्त थे कि हर व्यक्ति मूलतः अच्छा ही होता है। चंबल के डकैतों के आत्मसमर्पण से यह प्रमाणित भी होता है। उनके इस विश्वास और भावुकता का बहुत सारे लोगों ने गलत फायदा भी उठाया। इस कारण कई व्यक्तियों की धारणा है कि जे. पी. में आदमी की परख नहीं थी। ऐसा मानने वालों में उनके कई निकट के सहयोगी और मित्र भी हैं। एक बार नवंबर, 1988 में एस. एम. जोशी ने पुणे में बातचीत के क्रम में मुझसे कहा, "जे. पी. को तो आदमी की बिल्कुल ही पहचान नहीं थी। सारे गलत लोग उनसे फायदा उठाते रहे।" यही बात जब मैंने मोहन धारिया से पूछी तो उनका जवाब था, "जो स्वयं अच्छा है उसे दूसरा भी अच्छा नजर आयेगा।"

दरअसल, जे. पी. दोस्ती का निर्वाह बखूबी करते थे। कुछ ही मुलाकातों में लोगों की उनसे आत्मीयता हो जाती थी। चूंकि उनके मन में मित्रता के लिए सम्मान था इसलिए स्वार्थी लोग इस संबंध का लाभ उठाने में नहीं चूकते थे। दोस्ती का निर्वाह करना जहां अपने आप में श्लाघ्य है वहीं इसका एक दूसरा पक्ष भी है कि लोग इससे गलत लाभ उठाते हैं। इसलिए गांधी जी का दृष्टिकोण बिलकुल स्पष्ट था कि संत को दोस्ती से बचना चाहिए क्योंकि दोस्ती के कारण व्यक्ति गलत काम करने को मजबूर होता है। उनका मानना था कि किसी से इतनी दोस्ती नहीं होनी चाहिए कि आप उसे 'नहीं' बोलने की स्थिति में न रहें। जार्ज ऑरवेल ने गांधी जी के इस विचार पर टिप्पणी की है कि गांधी का विचार निर्विवाद रूप से सही है। ऑरवेल ने लिखा है कि दोस्ती ऐसी चीज है जिससे संतों को बचना चाहिए, किंतु संतता भी ऐसी चीज है जिससे आम व्यक्ति को बचना चाहिए। जे. पी. की जीवन शैली संत की नहीं थी इसलिए वे दोस्ती करते थे और उसका सम्मान भी करते थे। इसके अतिरिक्त जे. पी. हर व्यक्ति को अंतिम वक्त तक संशय का लाभ देते थे।

उनके सहयोगियों के अनुसार उनका चित्त इतना विशाल था कि वे दुनियादारी सीख नहीं पाये। उनके कपड़े उनके सहयोगी और मित्र आराम से पहनते थे। अपने लिए कपड़े खरीदते और साथ में यदि कोई उसकी प्रशंसा कर देता तो उसके लिए भी वैसे ही कपड़े खरीद देते। अपने सामान की तो कभी चिंता ही नहीं करते थे। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के संस्थापक सदस्य श्री एस. एच. रजी ने जे. पी. से अपनी पहली मुलाकात के बारे में मुझे बताया कि वे सन् 1934 के शुरू में रामवृक्ष बेनीपुरी के साथ एक साहित्य-सम्मेलन में पटना से इलाहाबाद जा रहे थे। जे. पी. भी साथ जाने वाले थे। लेकिन वे लोग गाड़ी पर चढ़ गये और जे. पी. नहीं आये। दानापुर स्टेशन पर उन लोगों की नजर जे. पी. पर पड़ी। दरअसल, स्टेशन देर से पहुंचने की उनकी आदत थी और वे चलती गाड़ी में

चढ़ गये थे। मुगलसराय में गाड़ी ज्यादा देर रुकी तो जयप्रकाश उन लोगों के डिब्बे में जाकर बातचीत करने लगे। बेनीपुरी जी ने रजी साहब का परिचय उनसे कराया। फिर कुछ देर बाद वे वापस अपने डिब्बे में चले गये। सुबह जब सब इलाहाबाद जंक्शन पर उतरे तो उन लोगों ने देखा कि जे. पी. के पास कोई सामान नहीं था। उनके पूछने पर जे. पी. ने बड़े निर्विकार भाव से बताया कि जब वे मुगलसराय में उन लोगों से बात कर रहे थे तो किसी ने उनका सामान उतार लिया।

जयप्रकाश जी की इन्हीं बातों से मुझे उनकी जीवनी लिखने की प्रेरणा मिली। इस पुस्तक में जयप्रकाश जी के जीवन के साथ-साथ उनके चिंतन और वैचारिक योगदान पर भी विचार किया गया है। साथ ही, उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के कुछ पक्ष जो अब भी पूरी तरह सामने नहीं आये हैं, उन्हें सामने लाने का विनम्र प्रयास किया गया है।

उद्धरण

1. जयप्रकाश, संपादन—नारायण देसाई, कांति शाह (जयप्रकाश अमृत कोष, 223, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नयी दिल्ली), पृ. 410
2. जोशी, एस.एम. : करप्शन इन इंडिया : रैमीफिकेशन्ज एंड रिमेडीज (पापुलर प्रकाशन, बंबई), पृ. 10
3. द टाइम्स (लंदन), 13 अक्तूबर, 1969
4. मेहरअली, युसुफ; जयप्रकाश नारायण; हिज लाइफ एंड थाट (कम्मेमोरेशन वॉल्यूम), 1963, पृ. 22

आभार

लोकनायक जयप्रकाश नारायण जैसे व्यक्ति की जीवनी लिखना मुझ जैसे अल्पज्ञ और अकिंचन व्यक्ति के लिए अत्यंत दुष्कर कार्य था। ऐसा मैं किसी विनम्रतावश नहीं लिख रहा हूं , बल्कि यही सच्चाई है। मेरी कठिनाई इसलिए भी ज्यादा थी क्योंकि मेरा उनसे कभी कोई संपर्क नहीं रहा। बचपन में मात्र एक बार उनके भाषण को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। किंतु जयप्रकाश जी के कुछ निकट सहयोगियों और मित्रों ने मेरी इतनी सहायता की जिससे यह कार्य संभव हो पाया। मुझे यह स्वीकार करने में कोई झिझक नहीं है कि उन लोगों के सहयोग के बिना मेरी पुस्तक कभी पूरी नहीं हो पाती।

पूर्व सांसद और समाजवादी नेता श्री शिशिर कुमार के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। उन्होंने मुझे न केवल कई बहुमूल्य जानकारियां दीं, जो अब तक कहीं प्रकाशित नहीं हैं, बल्कि जब भी मुझे कोई संदेह हुआ मैंने दूरभाष पर उनसे संपर्क किया और उन्होंने मेरे संदेह को दूर किया। उनकी इस कृपा के लिए मेरा रोम-रोम उनके प्रति कृतज्ञ है। वयोवृद्ध समाजवादी नेता श्री एस. एच. रजी और श्री देवेन्द्र प्रसाद सिंह, पूर्व सांसद, का भी इस पुस्तक में महत्तर योगदान है। अपनी अस्वस्थता के बावजूद उन दोनों ने मुझे काफी समय दिया और जे. पी. की जीवन शैली तथा उनके व्यक्तित्व के बारे में प्रेरक जानकारी दी। मैं हृदय से उन दोनों के प्रति आभारी हूं।

जे. पी. के निजी सचिव श्री सच्चिदानंद, वरिष्ठ पत्रकार श्री जितेन्द्र सिंह तथा गांधी संग्रहालय, पटना के मंत्री डा. रजी अहमद के सहयोग को मैं कभी नहीं भुला पाऊंगा। उन लोगों ने जे. पी. के साथ उपने कई अंतरंग संस्मरण मुझे सुनाये, जिनसे जे. पी. के व्यक्तित्व के कुछ नये आयाम सामने आते हैं। जितेन्द्र बाबू ने मेरी पांडुलिपि को भी पढ़ने का कष्ट किया। डा. रजी अहमद ने जयप्रकाश से संबंधित कुछ दुर्लभ दस्तावेज उपलब्ध कराये। आभार से मैं उन तीनों के समक्ष नतमस्तक हूं।

अवकाश प्राप्त पुलिस आई. जी. श्री मिथिलेश कुमार सिन्हा, लेफ्. जनरल एस. के. सिन्हा, सर्वोदयी नेता श्री त्रिपुरारी शरण एवं श्री भवेश चंद्र प्रसाद, बिहार सरकार के कृषि मंत्री श्री रामजीवन सिंह, विधायक श्री सुशील कुमार मोदी आदि ने भी इस कार्य मे मेरा भरपूर सहयोग किया। मैं उन सबों के प्रति कृतज्ञ हूं। मैं प्रोः आनंद मूर्ति तथा प्रो. भृगुनंदन त्रिपाठी के प्रति आभारी हूं जिन्होंने मेरी पांडुलिपि के कुछ हिस्सों को पढ़ने का कष्ट किया।

दीपक, संजय एवं आमोद ने पांडुलिपि के टंकण का काम बड़ी कुशलता से किया। उनके सहयोग के लिए मैं कृतज्ञ हूं।

इसके अतिरिक्त मेरे भाई हिमांशु रंजन, अनुज श्वेतांशु रंजन, मेरे अनन्य मित्र प्रभाष चंद्र सिन्हा तथा स्मिता पावस्कर के प्रति भी मैं दिल से कृतज्ञ हूं , जिन्होंने बराबर मेरा उत्साहवर्धन किया।

अपनी पत्नी मंजरी के नाम का जिक्र यहां न करूं तो मैं अपनी ही नजर में अपराधी हो जाऊंगा। अपनी सुख-सुविधा का त्याग कर उसने मेरे साथ सहयोग किया। मैं उसके प्रति भी हृदय से आभारी हूं।

सुधांशु रंजन

बउल जी—बचपन और शिक्षा

बिहार और उत्तर प्रदेश की सीमा पर पटना से कोई 50 मील दूर एक गांव है—दियारा। बिहार के सारण (छपरा) जिले का यह गांव गंगा और सरयू (घाघरा) के संगम के निकट अवस्थित है। दियारा उस भूमि के टुकड़े को कहा जाता है, जो नदी का पानी उतर जाने पर कहीं कहीं उभर कर पानी से ऊपर आ जाता है। नदी के पाट बदलने से दोनों राज्यों की सीमाएं भी बदलती रहती हैं। इसी कारण सिताब दियारा जो शुरू से बिहार में रहा अब उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में चला गया है। हर वर्ष यह गांव बाढ़ की विनाश लीला झेलता है।

इस गांव का भी अपना एक आकर्षक इतिहास है। गांव के बारे में श्रीमती बिंदु सिन्हा ने लिखा है, "किन्हीं सिताब राय ने इस दियारे को गांव का रूप दिया था, उन्हीं के नाम पर नाम पड़ा सिताब दियारा। मुगलों के अत्याचार से ऊबकर लोग यहां आ छुपे थे। तब यहां सिर्फ कास के जंगल थे, जिसमें असंख्य ऋषि, मुनि, संत और तपस्वी लोक दृष्टि से सर्वथा अलग रहकर अपनी तपस्या में लीन रहते थे। जब गांव बसा, तब धीरे-धीरे वे लोग यह स्थान छोड़कर अन्यत्र चले गये क्योंकि गांव की जनसंकुलता उनकी निष्काम तपश्चर्या में बाधक बनने लगी थी।"[1]

इसी गांव में रहते थे देवकीनंदन लाल। अंग्रेजी शिक्षा पाकर देवकीनंदन दरोगा बने थे और अपने रौबदार व्यक्तित्व के लिए जाने जाते थे। वे अंग्रेजों के प्रिय थे, किंतु आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अंग्रेजों की पिटाई भी करते थे। उन्हें लंबे समय के बाद काफी मन्नत पर पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम रखा गया हरसू दयाल। दरअसल, शाहाबाद के हरसूब्रह्म के यहां मन्नत मांगने के बाद लड़के का जन्म हुआ था। इसलिए नाम पड़ा हरसू दयाल। बाबू देवकीनंदन की एक और पुत्री थी। हरसू दयाल को भी अंग्रेजी शिक्षा दी गयी। उन्हें फारसी पढ़ने के लिए विश्वविद्यालय भेजा गया, लेकिन स्नातक करने के पहले उन्हें नहर विभाग में जिलेदार की नौकरी मिल गयी। उनकी शादी छपरा जिले के ही एक जमींदार परिवार में फूलरानी देवी से हुई।

11 अक्तूबर, 1902 को फूलरानी देवी ने चौथी संतान को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया जयप्रकाश नारायण। विक्रम संवत के अनुसार यह दिन था 1959 की विजयादशमी का। जयप्रकाश के जन्म के पहले सिताब दियारा में प्लेग जोर-शोर से फैला था। इसलिए

हरसू दयाल घर छोड़कर सपरिवार लगभग ढाई मील दूर बलिया जिले की अपनी खेती वाली जमीन पर चले गये थे। इस जगह को बाबुरवानी कहते थे। यहीं जयप्रकाश का जन्म हुआ था। जयप्रकाश के जन्म पर पुलकित होकर पिता हरसू दयाल ने कहा था, "मेरा बेटा किसी दिन एक महान आदमी बनेगा।"

परिवार को तब एक गहरा झटका लगा जब हरसू दयाल का सबसे बड़ा लड़का हरिप्रकाश तेरह वर्ष की उम्र में हैजे का शिकार हो गया। हरिप्रकाश से छोटी बहन चंद्रभानु भी ग्यारह साल की उम्र में प्लेग से मर गयी। चंद्रभानु से छोटी थी चंद्रावती और तब थे जयप्रकाश। बाद में दो और बच्चों का जन्म हुआ–बहन चंद्रकला तथा भाई राजेश्वर।

जयप्रकाश का लगाव मां फूलरानी देवी से ज्यादा रहा। मां की सादगी और निर्मलता का काफी प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। पिता से उनका लगाव उतना नहीं रहा क्योंकि हरसू दयाल का स्वभाव बहुत कम बोलने का था। लेकिन उनकी देशभक्ति और स्वतंत्र विचार की गहरी छाप जयप्रकाश पर पड़ी। सरकारी नौकरी करते हुए भी सन् 1912 में पटना में हुए कांग्रेस अधिवेशन में वे शामिल हुए थे। सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने में उनकी रुचि थी और वे छुआछूत तथा जात-पांत के विरोधी थे। उन्होंने कभी अपने बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। केवल एक बार जयप्रकाश को गुस्से में उन्होंने पीटा था क्योंकि जयप्रकाश ने तीर-धनुष से खेलते हुए इस तरह तीर चलाया था कि वह हरसू दयाल के अधीनस्थ काम करने वाले बड़ा बाबू के घर के आंगन में गिरा था। इससे बाबू की पुत्रवधू को गाल पर चोट लगी थी और बड़ा बाबू ने हरसू दयाल से शिकायत की थी।

दो संतानों को खो चुकने के बाद फूलरानी देवी हमेशा अपने बच्चों के प्रति सशंकित रहती थीं। वह हमेशा जयप्रकाश को अपने पास रखती थीं। उन्हें डर था कि दूसरों के संपर्क में आने पर कहीं उन्हें छूत का रोग न हो जाये। मां की चिंता तब और बढ़ गई जब चार वर्ष तक जयप्रकाश के दूध के दांत नहीं निकले। देर से दांत निकलने के कारण ही उनका नाम "बउल" पड़ा। बउल का अर्थ होता है बिना दांत का। प्यार से परिवार के लोगों ने उन्हें बउल कहकर पुकारना शुरू कर दिया। गांव के लोग भी बउल जी या बउल भैया कहकर ही संबोधित करते थे।

जयप्रकाश का बचपन बिलकुल एकांत में बीता। मां ने उनके एकांत के खालीपन को भरने के लिए उन्हें घर के जानवरों के साथ खेलने की छूट दे दी। पिता एक जोड़ा कबूतर खरीद कर ले आये और जयप्रकाश उन कबूतरों के साथ घंटों खेलते, बातें करते और उन्हें खिलाते। एक दिन अत्यधिक गर्मी के कारण एक कबूतर मर गया। अतिभावुक और संवेदनशील स्वभाव के जयप्रकाश के लिए यह वेदना असह्य थी। वह उस दिन कुछ नहीं खा पाये।

बचपन से ही खेल-कूद में उनकी अधिक दिलचस्पी नहीं रही। भाई-बहनों के साथ

खेलते तो जानबूझकर हार जाते ताकि छोटे भाई-बहन प्रसन्न रहें। बचपन से ही शांत और धीर-गंभीर रहने के कारण उन्हें वहां की भोजपुरी बोली में "बूढ़ लड़िका" कहा जाता था। पिता ने भी एक बार कहा था, "यह तो बूढ़ा लड़का है।"

हरसू दयाल नहर निर्माण के काम से बराबर बाहर जाते रहते थे, लेकिन जयप्रकाश का बचपन गांव में ही बीता। उन्हें पढ़ाने के लिए आदित्य मिश्र नाम के एक शिक्षक घर पर ही आते थे। एक बार हरसू दयाल किसी बात पर मिश्र जी से नाराज हो गये और उन्हें हटाने का फैसला कर लिया। किंतु जयप्रकाश के इस अनुरोध पर कि इससे मिश्र जी बेरोजगार हो जायेंगे, यह फैसला बदल दिया गया।

लगभग छह वर्ष की अवस्था में गांव की प्राथमिक पाठशाला में उन्हें भर्ती कराया गया। पढ़ाई में वे शुरू से ही काफी मेधावी थे। उनके शिक्षक ने तभी टिप्पणी की थी, "यह लड़का आगे चलकर नाम कमायेगा।"

पटना में पढ़ाई

आगे की पढ़ाई की सुविधा सिताब दियारा में न होने के कारण नौ वर्ष की उम्र में उन्हें पटना लाया गया। पटना के कॉलेजिएट स्कूल में सातवीं कक्षा में उनका नामांकन कराया गया। उन दिनों मैट्रिक को फर्स्ट क्लास कहा जाता था और सातवीं क्लास का अर्थ था मैट्रिक से सात कक्षा नीचे। यह जयप्रकाश की अपने गांव के बाहर की पहली यात्रा थी। अपने बाबा-दादी के साथ बैलगाड़ी से वे पटना आये थे। उनके एक रिश्तेदार शम्भू शरण वर्मा उस समय पटना में कॉलेज में पढ़ते थे और छात्रावास में रहते थे। उस छात्रावास का नाम था सरस्वती भवन। उस समय इस छात्रावास में कुछ अत्यंत प्रतिभावान युवक जमा हो गये थे जिन्होंने आगे चलकर स्वाधीनता संग्राम में महान योगदान किया। जयप्रकाश भी उनके साथ छात्रावास में रहने लगे। बाद में जब उनकी बड़ी बहन चंद्रावती का विवाह श्री ब्रजबिहारी बाबू से हुआ, जो पटना उच्च न्यायालय में काम करते थे, तो वे बहन-बहनोई के साथ रहने लगे।

कॉलेजिएट स्कूल के शिक्षकों का जयप्रकाश के चरित्र निर्माण पर बहुत असर पड़ा। बराबर कृतज्ञता और आदर के साथ वे अपने इन शिक्षकों को याद करते थे। स्कूल में उनकी गिनती तीन सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों में होती थी। उनकी कक्षा के अन्य अच्छे विद्यार्थी थे सिंहेश्वर सिंह और सयद सीज। बाद में सिंहेश्वर सिंह डिप्टी कलक्टर हुए। जयप्रकाश कक्षा में कभी कुछ बोलते नहीं थे, न ही मौखिक उत्तर देने कभी खड़े होते थे, लेकिन लिखित परीक्षाओं में हमेशा अच्छे रहते थे। डिबेट में भी कभी भाग नहीं लेते थे। खेल-कूद में तो कभी हिस्सा लिया ही नहीं। उनके एक सहपाठी श्री सुरेश चंद्र मिश्र ने इस बारे में लिखा है, "पटना कॉलेजिएट स्कूल में गेम्स (खेल-कूद) करीक्यूलम का अनिवार्य अंग

था। मैं तो स्वयं ही खेल-कूद पर फिदा रहता था, लेकिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब सर्वश्रेष्ठ दोनों-तीनों विद्यार्थियों में से किसी एक से भी किसी भी दिन खेल-कूद के मैदान में भेंट नहीं हुई। सिंहेश्वर किसी-किसी दिन किसी बहाने मैदान में आ जाते थे, मगर जयप्रकाश ने तो मानो कसम ही खा ली थी।"[2]

उनकी भाषा समृद्ध थी और हिंदी, अंग्रेजी तथा संस्कृत में उनकी अच्छी पैठ थी। साहित्य में उनकी बहुत रुचि थी। 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'प्रभा', 'प्रताप'– जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं को वे नियमित रूप से पढ़ते थे। मैथिली शरण गुप्त की कविताएं उन्हें बहुत प्रभावित करती थीं। एक बार एक निबंध प्रतियोगिता में वे पूरे बिहार में प्रथम आये थे : विषय था–"बिहार में हिंदी की स्थिति"। साहित्य के साथ साथ विज्ञान और गणित में भी में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। सन् 1919 में मैट्रिक की परीक्षा में वे प्रथम श्रेणी में बहुत उच्च अंकों से पास हुए और उन्हें मेरिट छात्रवृत्ति मिली।

श्री सुरेश चंद्र मिश्र ने एक और घटना का उल्लेख किया है। सन् 1917 में बकरीद के अवसर पर शाहाबाद के ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदू-मुसलमान दंगे हो गये थे। उसकी आग शांत नहीं हो पा रही थी। कुछ दिन बाद छात्रों के बीच उस दंगे की चर्चा चली। सुरेश चंद्र मिश्र ने कहा, "हमारे देश की मुस्लिम आबादी स्वराज्य प्राप्ति के रास्ते में अवरोध का कार्य करती है।" चुप रहकर सभी साथियों ने इसका समर्थन किया, तभी जयप्रकाश बोल उठे, "नहीं, यह बात बिल्कुल गलत है।" सुरेश चंद्र मिश्र ने लिखा है, "मैं झल्ला उठा। इतने दिनों तक किसी जगह मुंह खोलते नहीं देखा, न क्लास में, न मैदान में, न डिबेट ही में और आज जब नौ आदमी उस बात को कबूल कर रहे हैं तब यह देशोद्धार की इस विवेचना का खंडन कर रहे हैं। लेकिन, जयप्रकाश का जो मुंह खुला, तो फिर रुका नहीं। मुस्लिम आबादी अड़चन नहीं है, इसका तो समर्थन उन्होंने किन किन दलीलों से पेश किया, यह हमें स्मरण नहीं है। पटना के इमाम बंधुओं का नाम उन्होंने जरूर लिया था और कौन कौन से नाम लिये, कौन कौन दृष्टांत उपस्थित किये, मुझे याद नहीं है। इतना ही याद है कि वह चुप्पा नवयुवक इतना मुखर बन गया और इतनी योग्यता से उसने अपने प्रतिपादन को प्रमाणित किया कि हम सब अवाक् रह गये, कोई प्रत्युत्तर नहीं दे सके। ... जे. पी. ने जो कुछ कहा था, उसकी पृष्ठभूमि तो तब तैयार हुई जब सन् 1919-20 में खिलाफत आंदोलन और स्वराज आंदोलन मिलकर एक हुआ, लेकिन जे. पी. सन् 1917 में ही उस सिद्धांत पर पहुंच चुके थे–यूक्लिड की तरह खेल खेल में राजनीतिज्ञ प्रतिपाद्यों को साधते हुए।"[3]

राष्ट्रभक्ति की चिंगारी

यह वह वक्त था जब राष्ट्रीयता पूरे देश में अंगड़ाई ले रही थी। जयप्रकाश के किशोर

हृदय में भी राष्ट्रभक्ति की चिंगारी धधकने लगी और उनके अंदर एक विप्लवी विचारधारा का उदय होने लगा, इसलिए जब लोकमान्य बालगंगाधर तिलक पटना होकर रेलगाड़ी से जा रहे थे तो जयप्रकाश अपने दोस्तों के साथ स्टेशन गये।

एक बार स्कूल में रक्षा-बंधन के दिन ही परीक्षा की तिथि रखी गयी। उन्होंने पांच अन्य छात्रों के साथ परीक्षा का बहिष्कार किया। इसके लिए उनके हेडमास्टर बिटमोर ने उन सबको बेंत की सजा दी। लेकिन इससे जयप्रकाश के मन में बिटमोर साहब के लिये कोई कटुता नहीं आई, बल्कि बहुत सम्मान के साथ वे उनका नाम लेते थे और कहते थे कि कर्तव्य पालन के लिए विवश होकर उन्हें सजा देनी पड़ी थी, लेकिन उनके (बिटमोर) मन पर इसकी ग्लानि बनी रही।

इस समय बंगाल में उग्र राष्ट्रवादियों का एक समूह तैयार हो रहा था जो कांग्रेस के कार्यकलाप से संतुष्ट नहीं था। वायसराय लार्ड कर्जन के अलोकप्रिय निर्णयों, खासकर बंगाल के विभाजन, के विरुद्ध इस गुट में आक्रोश था और वे लोग उग्र तरीके से इसका विरोध करना चाहते थे। बालगंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, अरविंद घोष तथा लाला लाजपत राय ऐसे युवकों के आदर्श हो गये। पंजाब में गदर पार्टी और बंगाल में अनुशीलन समिति सक्रिय हो चुकी थी। इसी समय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में तिलक ने घोषणा की : "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे"। इन सबका जयप्रकाश पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा।

बंगाल के उग्र पंथियों के प्रभाव में ही धार्मिक प्रवृत्ति के न होते हुए भी जयप्रकाश ने गीता का पाठ शुरू किया क्योंकि इससे एक महान युद्ध का वर्णन है और इसमें इस अवधारणा को पुष्ट किया गया कि आत्मा अमर है और कभी उसका नाश नहीं हो सकता।

गीता का उन पर ऐसा असर पड़ा कि विवाह होने पर पत्नी प्रभावती देवी को पहले उपहार के रूप में उन्होंने गीता ही भेंट की। उस समय गीता के कई अध्याय उन्हें शब्दशः याद हो गये थे। तुलसीदास-कृत रामचरितमानस का भी उन पर गहरा असर पड़ा। अमेरिका जाते समय गीता और रामचरितमानस की एक एक प्रति वे अपने साथ ले गये।

उनके रहन-सहन में सादगी थी। शुरू में पटना आने पर धोती, कमीज, कोट और विदेशी जूते पहनते थे। बाद में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव में स्वदेशी कपड़े की मोटी धोती, कुरता और देसी जूते (चमरौंधा) पहनने लगे। उम्र थोड़ी ज्यादा होने पर धोती पहननी छोड़ दी और पायजामा कुर्ता पहनने लगे। पोशाक सादी होती थी लेकिन बिल्कुल साफ-सुथरी । वे अपने कपड़ों के प्रति सचेत रहते थे और लंबी यात्रा के बाद भी उनके कपड़े देखकर नहीं लगता था कि इतनी लंबी यात्रा उन्होंने की है। जीवन में वे अनुशासन को बहुत महत्व देते थे।

उनके खान-पान में भी सादगी रही। मां शाकाहारी थीं, किंतु पिता मांसाहारी। इसलिए

उनके घर में मांस बनता था। पटना में बहनोई के साथ रहने पर जयप्रकाश शाकाहारी हो गये क्योंकि ब्रजबिहारी बाबू पूरी तरह वैष्णव थे। बाद में अमेरिका में भी ढाई-तीन वर्ष तक उन्होंने मांसाहार नहीं किया। लेकिन बाद में शुरू किया और विनोबा के आंदोलन में सम्मिलित होने पर सन् 1955 के लगभग मांस का सेवन फिर छोड़ दिया। तत्पश्चात मृत्यु से चार-पांच साल पूर्व फिर मांसाहार आरंभ कर दिया था।

उद्धरण

1. सिन्हा, बिंदु : जे.पी. का घर संसार (ज्योत्स्ना, लोकनायक विशेषांक, पटना), 1977, पृ. 63
2. मिश्र, सुरेशचन्द्र : चिरंतन विद्रोही जयप्रकाश (ज्योत्स्ना), पृ. 30
3. वही, पृ. 31-2

विवाह, कालेज की शिक्षा और अमेरिका प्रवास

सन् 1919 में मैट्रिक पास करने के बाद जयप्रकाश का नामांकन आई.एस.-सी. में पटना कालेज में हुआ। इस समय जलियांवाला बाग, रॉलेट एक्ट, होमरूल आंदोलन, खिलाफत आंदोलन एवं चंपारण सत्याग्रह की तरह की घटनाओं के कारण पूरे देश का राजनीतिक माहौल गर्म था और अंग्रेजों के विरुद्ध लोगों के मन में जबर्दस्त आक्रोश था। इन घटनाओं की गहरी छाप जयप्रकाश के मस्तिष्क पर भी पड़ रही थी जो स्कूल के जमाने से ही भावनात्मक रूप से राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गये थे। राष्ट्रीय नेताओं में सबसे ज्यादा गोपाल कृष्ण गोखले का उन पर प्रभाव रहा। उनकी मृत्यु पर जयप्रकाश ने उनकी प्रशंसा में एक कविता भी लिखी।

स्कूल में ही अनुग्रह नारायण सिंह, रामचरित्र सिंह, पांडेय रघुनंदन, पांडेय हरनंदन, रामनवमी बाबू, शंभू शरण वर्मा आदि जैसे चरित्रवान और देशभक्त लोगों से उनकी मित्रता हुई। छोटन सिंह नाम के एक सहपाठी के कारण विप्लववादियों से भी उनका संपर्क हुआ, परंतु यह संबंध ज्यादा दिन नहीं चल पाया क्योंकि छोटन सिंह गिरफ्तार कर लिये गये और अन्य लोगों से उनकी मुलाकात फिर नहीं हुई।

इसी बीच जयप्रकाश ने महात्मा गांधी पर तोताराम सनाढ्य द्वारा लिखी पुस्तक पढ़ी। इसमें सत्याग्रह के आविष्कार और दक्षिण अफ्रीका में उसके अनुपम प्रयोग के बारे में पढ़कर वे मुग्ध हो गये। इसके बाद गांधी जी के चंपारण आंदोलन का गहरा प्रभाव उन पर पड़ा। अपने कुछ मित्रों के साथ जयप्रकाश ने एक समिति का गठन किया जिसकी नियमित बैठकें होती थीं और राजनीति, समाज-सुधार, स्वाधीनता इत्यादि विषयों पर चर्चा होती थी। उनके मित्र उन्हें "हम लोगों के राजेन्द्र प्रसाद" कहने लगे।

सन् 1920 में पटना में गांधी जी की एक विशाल सभा हुई। जयप्रकाश ने पहली बार गांधी जी को इस सभा में देखा। इसका भी उनके ऊपर प्रभाव पड़ा, किंतु वही अभी तक यह निर्णय नहीं कर पाये थे कि वह आंदोलन में कूद पड़ें या पहले पढ़ाई पूरी कर लें। गांधी जी के आह्वान पर लाखों लोग असहयोग आंदोलन में सक्रिय हो गये थे—छात्रों ने स्कूल कालेज छोड़ दिये, वकीलों ने वकालत छोड़ दी, बहुत से लोगों ने अंग्रेजों की दी हुई उपाधियां लौटा दीं।

मौलाना आजाद के प्रभाव में कालेज का बहिष्कार

इस बीच जनवरी, 1921 में मौलाना अबुल कलाम आजाद पटना आये। उनके साथ जवाहरलाल नेहरू भी आये। जयप्रकाश भी मौलाना आजाद की सभा में गये। मौलाना के विचारोत्तेजक भाषण ने उन्हें पूरी तरह झकझोर दिया। मौलाना ने विद्यार्थियों को धिक्कारते हुए कहा था, "कुछ विद्यार्थी यह सोचते हैं कि एक बार परीक्षा दे दें और फिर कालेज छोड़ दें। यह कितनी वाहियात बात है। एक आदमी संखिया की डली चूस रहा है अगर हम उससे कहते हैं कि तुम जहर पी रहे हो तो क्या यह कहेगा कि जब तक आप इसके बदले में मुझे मीठे दूध का गिलास नहीं देंगे, तब तक मैं इस जहर का चूसना बंद नहीं करूंगा। जब तक आपको अमृत नहीं मिलेगा, क्या आप जहर चूसते रहेंगे? अंग्रेजों की चलाई पढ़ाई तो हमें गुलाम बनाने वाली पढ़ाई है। हमारे देश के लिए तो यह जहर के बराबर है। यह पढ़ाई हमें गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहती है। इसे तो फौरन छोड़ देना चाहिए।"[1]

इस भाषण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि जयप्रकाश ने दूसरे दिन ही कालेज छोड़ दिया। कालेज की परीक्षा समाप्त हो चुकी थी और इसमें उन्हें बहुत अच्छे अंक प्राप्त हुए थे। विश्वविद्यालय परीक्षा के सिर्फ बीस दिन बचे थे, लेकिन गुलाम बनाने वाली शिक्षा भला कैसे ग्रहण करते? पिताजी को पत्र लिखकर उन्होंने माफी मांगी कि उनकी अनुमति के बिना उन्होंने यह निर्णय कर लिया। स्वदेशी के प्रभाव में उन्होंने खादी पहननी शुरू कर दी। चरखा चलाना भी उन्होंने सीखा। फिर अचानक चौरीचौरा कांड के बाद गांधी जी ने आंदोलन स्थगित कर दिया और जयप्रकाश के कई साथी वापस कालेज जाने लगे। लेकिन अंग्रेजी हुकूमत द्वारा चलाई जा रही शिक्षण संस्थाओं में वापस जाना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। इसी कारण बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भी पढ़ने नहीं गये, क्योंकि उसे भी थोड़ा सरकारी अनुदान मिलता था। सरकारी स्कूल-कालेजों का बहिष्कार करने वाले छात्रों की पढ़ाई के लिए गांधी जी ने कुछ राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की थी जिनमें बिहार विद्यापीठ भी एक था। जयप्रकाश ने इसी बिहार विद्यापीठ से आई. एस-सी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की।

मौलाना आजाद के भाषण का प्रभाव जीवनपर्यंत उनके ऊपर रहा और जहर चूसने का यह उदाहरण वे सन् 1974 के आंदोलन में भी दिया करते थे। इन पंक्तियों के लेखक को व्यक्तिगत रूप से उन्हें देखने और सुनने का केवल एक बार अवसर प्राप्त हुआ जब सन् 1974 में बेगुसराय में उनकी सार्वजनिक सभा स्थानीय गणेश दत्त महाविद्यालय के मैदान में हुई। उस भाषण में उन्होंने भी यही कहा, "कुछ लोग कहते हैं कि दूसरी वैकल्पिक और बेहतर व्यवस्था तैयार किये बिना इस सरकार को हटाने से क्या लाभ होगा? तो मैं पूछता हूं कि कोई बच्चा यदि अपने मुंह में विष का डंठल लिये हो तो पहले वह डंठल

मुंह से निकालोगे या अमृत का वृक्ष लगाओगे?" दरअसरल जे. पी दो व्यक्तियों के भाषणों से बेहद प्रभावित हुए थे—एक मौलाना आजाद का, और दूसरा जार्ज बर्नार्ड शॉ का : दूसरा भाषण सुनने का अवसर उन्हें अमेरिका से लौटते समय लंदन में मिला था। उन दोनों के भाषणों को सुनकर उन्होंने महसूस किया कि इतना उम्दा भाषण भी किया जा सकता है।

विवाह

राष्ट्रीय आंदोलन में कूदने से पहले ही उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया : उनका विवाह प्रभावती देवी से हो गया। प्रभावती जी जंयप्रकाश के गृह-जिला सारण के ही श्रीनगर गांव की थीं। उनके पिता ब्रजकिशोर प्रसाद बिहार में उस समय कांग्रेस के सबसे महत्वपूर्ण नेता थे। सन् 1912 से 1916 तक वे बिहार और उड़ीसा विधान परिषद् के सदस्य रहे और सन् 1916 में बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति के अध्यक्ष भी थे। प्रभावती जी का जन्म श्रीनगर में ही हुआ। न तो ब्रजकिशोर बाबू और न उनकी पत्नी फुलझरी को अपनी इस सबसे बड़ी पुत्री प्रभावती के जन्म की निश्चित तिथि याद रही। उन्हें सिर्फ इतना याद रहा कि सन् 1906 में 15 से 21 जून के बीच प्रभावती का जन्म हुआ। फुलझरी ने सात बच्चों को जन्म दिया—तीन पुत्र और चार पुत्रियां। सबसे बड़े बेटे का निधन छह वर्ष की अवस्था में हो गया जब प्रभावती मात्र नौ महीने की थीं। बाद में प्रभावती से छोटी बहन की भी छह वर्ष की आयु में मृत्यु हो गयी। एक और बहन भी बचपन में गुजर गई। अन्य भाई-बहन जो बच गये, वे थे भाई विश्वनाथ प्रसाद तथा शिवनाथ प्रसाद और बहन विद्यावती जिनकी शादी डा. राजेन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र मृत्युंजय प्रसाद से हुई।

दो बच्चों को खो चुकने के बाद मां फुलझरी ने प्रभावती को विद्यालय जाने की अनुमति नहीं दी। वैसे भी उस जमाने की मान्यताओं के अनुसार कन्याओं की शिक्षा आवश्यक नहीं मानी जाती थी। पिता ने घर पर पढ़ाने के लिए एक शिक्षक रख दिया। उन्होंने घर ही पर हिंदुस्तानी, संस्कृत और थोड़ी-बहुत अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया।

महात्मा गांधी और ब्रजकिशोर प्रसाद

ब्रजकिशोर बाबू दरभंगा में वकालत करते थे और एक वकील के रूप में उनकी एक विशिष्ट पहचान थी। वे गांधी जी के काफी निकट सहयोगी थे। गांधी जी से ब्रजकिशोर बाबू का संपर्क सन् 1916 के लखनऊ कांग्रेस में हुआ। महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के विरुद्ध किये जा रहे दमन के विरुद्ध अपने सफल सत्याग्रह के बाद सन् 1915 में भारत वापस आये थे और सन् 1916 में कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने सम्मेलन

में कोई सक्रिय हिस्सा नहीं लिया। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि शाय़द वे स्थिति की समीक्षा कर रहे थे। लेकिन भारत लौटने के पहले ही उन्हें काफी प्रसिद्धि मिल चुकी थी। बिहार के प्रतिनिधियों में राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद और चंपारण के किसान नेता पंडित राजकुमार शुक्ल थे।

पंडित राजकुमार शुक्ल ने गांधी जी से अनुरोध किया कि चंपारण में नील की खेती करने वाले बटाईदारों की वे मदद करें जिनका अंग्रेजों के द्वारा बुरी तरह शोषण हो रहा था। बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति के अध्यक्ष की हैसियत से ब्रजकिशोर बाबू इस बारे में एक प्रस्ताव पारित कराना चाहते थे, इसलिए श्री शुक्ल ने गांधी जी से उनका परिचय कराया। पहली मुलाकात में गांधी जी की धारणा ब्रजकिशोर बाबू के बारे में अच्छी नहीं बनी क्योंकि उन्होंने वकील की पोशाक, अचकन और पायजामा पहन रखा था। गांधी जी को लगा कि यह वकील किसानों का शोषण करने की कोशिश कर रहा है।

ब्रजकिशोर प्रसाद और राजकुमार शुक्ल सहित बिहार के कुछ प्रतिनिधियों ने गांधी जी से अनुरोध किया कि वे चंपारण में नील की खेती के विषय पर एक प्रस्ताव पारित करवायें। गांधी जी ने यह कह कर इंकार कर दिया कि जब तक वे अपनी आंखों से स्थिति नहीं देखेंगे तब तक वे कोई विचार नहीं देंगे। दूसरे दिन ब्रजकिशोर बाबू ने प्रस्ताव पेश किया कि उत्तर बिहार में कृषि संबंधी तनाव और नील के रैयतों की स्थिति की जांच करने तथा उसे दूर करने के उपाय सुझाने के लिए एक समिति गठित की जाये।

प्रस्ताव बिना किसी विरोध के पारित हो गया। इसके बाद राजकुमार शुक्ल के आग्रह पर गांधी जी चपांरण जाने के लिए तैयार हो गये। राजकुमार शुक्ल बाद में कलकत्ता से गांधी जी को लेकर 10 अप्रैल, 1917 को पटना पहुंचे। पटना में वे लोग पहले राजेन्द्र प्रसाद के घर गये लेकिन वे पुरी गये हुए थे। उनके लोगों ने गांधी जी को एक मुवक्किल समझकर आउट हाउस में उनके रहने की व्यवस्था कर दी। लेकिन गांधी जी के पुराने दोस्त मजहरूल हक ने, जिनसे लंदन में वे मिले थे, गाड़ी भेज कर उन्हें अपने घर पर बुला लिया। उसी दिन गांधी जी मुजफ्फरपुर गये और जे. बी. कृपलानी के यहां ठहरे। दूसरे दिन उनसे कुछ वकील मिलने आये जिनमें वे रामनवमी प्रसाद से काफी प्रभावित हुए। गांधी जी को स्थानीय भाषा समझने में दिक्कत होती थी, इसलिए उन्होंने रामनवमी बाबू से आग्रह किया कि वे किसानों की बात समझाने में उनकी मदद करें। धरनीधर बाबू भी, जो दरभंगा के मशहूर वकील थे, इस काम में गांधी जी के साथ हो गये। इस तरह रामनवमी प्रसाद और धरनीधर प्रसाद इस मौके पर गांधी जी के लिए दुभाषिये बन गये। इन दोनों के साथ गांधी जी 15 अप्रैल को मोतिहारी पहुंचे। रामनवमी बाबू ने ब्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू को बुलाने के लिए पहले ही तार भेज दिया था। संदेश

पाकर वे दोनों मोतिहारी पहुंचे।

इस बार गांधी जी ब्रजकिशोर बाबू की विनम्रता, सादगी और अच्छाई से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने यह भी महसूस किया कि बिहार के वकील ब्रजकिशोर बाबू को बहुत सम्मान देते थे।

ब्रजकिशोर बाबू ने गांधी जी को आश्वासन दिया कि चंपारण के किसानों की वे और उनके साथी वकील हर संभव मदद करेंगे। इसके बाद से चंपारण आंदोलन में ब्रजकिशोर बाबू की सक्रिय सहभागिता रही। अब गांधी जी तथा ब्रजकिशोर बाबू की मैत्री प्रगाढ़ हो गई और गांधी जी जब भी बिहार आते ब्रजकिशोर बाबू उनके साथ होते। प्रभावती का लालन-पालन ऐसे ही त्याग, सत्य, निष्ठा और देशभक्ति के माहौल में हुआ और उनमें उदात्त संस्कार का उदय हुआ। गांधी जी के कोई लड़की नहीं थी। उन्होंने ब्रजकिशोर बाबू से अनुरोध किया कि वे प्रभावती को उनकी दत्तक पुत्री के रूप में उनके साबरमति आश्रम में रहने की इजाजत दें।

प्रभावती की जयप्रकाश से शादी ठीक करवाने में शंभू शरण वर्मा मध्यस्थ बने, जो उम्र में जयप्रकाश से काफी बड़े थे। एक दिन शंभू बाबू जयप्रकाश को पटना में राजेन्द्र बाबू के यहां ले गये वहीं ब्रजकिशोर बाबू ने उन्हें देखा और उनसे थोड़ी बातचीत भी की। ब्रजकिशोर बाबू को जयप्रकाश जंच गये। फिर शंभू बाबू के माध्यम से ही शादी की बात पक्की हो गयी। लड़के और लड़की ने एक दूसरे को देखा नहीं था। इस समय प्रभावती चौदह की और जयप्रकाश अठारह वर्ष के थे। लोगों ने ब्रजकिशोर बाबू से पूछा कि एक समाज सुधारक होकर वे अपनी बिटिया का ब्याह इतनी कम उम्र में क्यों कर रहे हैं? इस पर उनका जबाब था, "प्रभावती के लिए यह लड़का मुझे पसंद आ गया है। फिर ऐसा वर और घर कहां मिलेगा? इसलिए ब्याह तो कर दिया है लेकिन मैं प्रभावती को पांच साल के पहले ससुराल नहीं भेजूंगा।"[2]

शादी श्रीनगर गांव में अक्तूबर, 1920 में हुई। कोई तिलक-दहेज नहीं लिया गया। विवाह परंपरागत विधियों के साथ संपन्न हुआ। शादी के बाद प्रभावती जी ससुराल नहीं गई। क्योंकि गौना (जिसे दूसरा विवाह भी कहते हैं) के बाद लड़की ससुराल जाती है। गौना तो चार-पांच साल बाद होना था, परंतु जयप्रकाश को कुछ अंतराल बाद ही अमेरिका जाना था, इसलिए गौना भी जल्दी ही हो गया। इस बारे में स्वयं प्रभावती ने बाद में कहा था, "जब पति चले जायें तो फिर गौना कैसे होगा? इसलिए मुझे जाना पड़ा। मैं बहुत रोती थी, पिताजी से सब बातें कहती थी। वे समझाते थे कि सीता जी कैसे गयी थीं? तुम नानी के यहां कैसे जाती हो? वैसे ही वहां भी जाना । ... तब मुझे शादी का अर्थ मालूम हुआ।"[3]

उस समय किसी क्रांतिकारी के लिए शादी करना धारा के विपरीत जाना था।

अनुशीलन समितियां काम कर रही थीं और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में 'बिहार विद्यार्थी संघ' भावी राजनीति की संरचना तैयार कर रहा था। अनुशीलन समितियों के व्रतों में से एक व्रत यह भी था कि स्वाधीनता संग्राम में लेने वाला एक निश्चित अवधि तक विवाह के बंधन से अपने को मुक्त रखेगा। जयप्रकाश के बाल सखा श्री सुरेश चंद्र मिश्र ने लिखा है, ''मेरे पिता आर्य समाजी हो चुके थे और कम से कम पच्चीस वर्ष की उम्र तक विवाह नहीं करने और ब्रह्मचारी बने रहने का व्रत मैंने ले लिया था। गांधी जी के संपर्क में आने के बाद वही आजीवन व्रत संकल्प के रूप में बदल गया। जयप्रकाश अविवाहित थे। देशोत्थान के बारे में बड़ी ऊंची बातें करते थे। अतएव मैं यह मानकर चलता था कि यह सामान्य संकल्प तो उनमें होगा ही। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब सन् 1919 में मैट्रिक की परीक्षा के बाद मेरे पास जे. पी. की एक चिट्ठी आयी कि मेरा विवाह अमुक तारीख को होने वाला है, तुम आओ। मैंने प्रत्युत्तर भेजा, ''तुम व्रत से च्युत हो रहे हो, मैं शामिल नहीं हो सकता।'' फिर दूसरी चिट्ठी आयी ''नाराज नहीं होओ, राजेन्द्र बाबू इसमें पड़े हुए हैं। शंभू बाबू ने मेरी तरफ से जबान दे दी है। मैं इंकार नहीं कर सका। तुम आओ, जरूर आओ।''[4]

इस घटना के बारे में सुरेश चंद्र मिश्र ने टिप्पणी की है कि किसी प्रचलित धारणा को स्वीकार करना जयप्रकाश के स्वभाव में था ही नहीं। प्रचलित धारणा यह थी कि नारी संपूर्ण समर्पण में बाधक होगी, लेकिन जयप्रकाश ने इसे नहीं स्वीकारा और उन्होंने सही सोचा। उनके जीवन में तो प्रभावती जी कभी क्रांति में बाधा नहीं बनीं, हमेशा पूरक बनी रहीं।

प्रभावती—एक आदर्श पत्नी

प्रभावती जी ने जयप्रकाश के व्यक्तित्व को एक नया आयाम दिया और हमेशा उनका मार्गदर्शन करती रहीं। जिन लोगों ने जे. पी. और प्रभावती जी को निकट से देखा है उनका मानना है कि प्रभावती का चरित्र जे. पी. की तुलना में कहीं ज्यादा उदात्त था। शादी के बाद जब जयप्रकाश ने कालेज का बहिष्कार किया तो प्रभावती जी ने उनकी देशभक्ति की सराहना की।

लेकिन इस घटना से जयप्रकाश के व्यक्तित्व के एक और पक्ष की झलक मिलती है कि वे किसी को दुखी नहीं कर पाते थे। ''नहीं'' कहना उनके स्वभाव में था ही नहीं। वे हमेशा सचेत रहते थे कि किसी भी व्यक्ति को उनकी किसी बात से दुख न हो। इस कारण अगर किसी व्यक्ति को वे पसंद नहीं करते थे तब भी उसके सामने उसकी कमजोरी नहीं बताते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से स्वार्थी लोग उनके इर्दगिर्द रहे और वे उनको अपने से दूर नहीं कर पाये।

आई.एस-सी. पास करने के बाद जयप्रकाश ने अमेरिका जाने का निर्णय लिया। उन्होंने प्रभावती जी को भी साथ चलने के लिए लिखा। अमेरिका जाने से तो प्रभावती जी ने इंकार कर दिया, किंतु जयप्रकाश को जाने की सहर्ष अनुमति दे दी, ''मुझे बहुत खुशी है कि आप पढ़ने के लिए परदेश जा रहे हैं। वहां से पढ़कर लौटेंगे तो यहां देश का काम कर सकेंगे।''[5] पिता हरसू दयाल जी ने भी विरोध नहीं किया और ब्रजकिशोर ने भी अनमने भाव से हां कर दी। लेकिन मां फूलरानी इससे दुखी हुईं।

अमेरिका जाने की प्रेरणा उन्हें स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के भाषणों और पुस्तकों से मिली। स्कूली जीवन में ही जयप्रकाश पटना में उनका भाषण सुनकर अत्यधिक प्रभावित हुए थे। फिर स्वामी जी की पुस्तकों में उन्होंने पढ़ा कि किस तरह अमेरिका जाकर खेतों और कारखानों में काम कर उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की। उन्हीं दिनों भोला दत्त पंत नाम के एक व्यक्ति से जयप्रकाश का परिचय हुआ जो अमेरिका जा रहे थे। दोनों ने साथ जाने की योजना बनायी। किंतु इसी समय समाचार पत्रों में अमेरिका के डिप्रेशन (मंदी की लहर) के बारे में रिपोर्ट छपी। इससे जयप्रकाश को रोक लिया गया, किंतु भोला दत्त पंत चले गये। अमेरिका पहुंचकर उन्होंने जयप्रकाश को पत्र लिखकर बताया कि स्थिति ठीक है और उन्हें सपत्नीक आने का निमंत्रण दिया।

जापान तक जाने का किराया ''एसोसिएशन फॉर दि एडवांसमेंट ऑव द सांइटिफिक लर्निंग'' नामक संस्था से प्राप्त हुआ और बाकी पैसों का इंतजाम इधर-उधर से कर जयप्रकाश अमेरिका जाने के लिए तैयार हुए। यही वह समय था जब स्वतंत्रता शब्द उनको बहुत उद्वेलित कर रहा था। उन्होंने स्वयं बाद में लिखा, ''उस समय स्वतंत्रता मेरे जीवन का आकाशदीप बनी, और स्वतंत्रता का अर्थ केवल अपने देश की स्वतंत्रता ही नहीं रहा, बल्कि उससे आगे बढ़ कर उसका अर्थ हो गया, मनुष्य-मात्र की सब प्रकार के बंधनों से मुक्ति।''[6]

विदेश जाने के कार्यक्रम को ध्यान में रखकर प्रभावती जी का गौना करा दिया गया और वे सिताब दियारा आ गयीं। एक वर्ष तक अपनी सास के साथ रहीं और उन्हीं के साथ सोती भी थीं। जयप्रकाश ने जाने के पहले उन्हें गीता पढ़ने और चरखा चलाते रहने की सलाह दी। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय गांधीवादी दर्शन का अच्छा प्रभाव उन पर था।

अमेरिका के लिए प्रस्थान

जयप्रकाश 16 मई, 1922 को पटना से कलकत्ता के लिए रवाना हुए। वहां उन्होंने पहली बार ट्राम देखी। 16 अगस्त, 1922 को वे कलकत्ता से "जेनस" नामक एक मालवाहक जहाज द्वारा रवाना हुए। जहाज पर ही उनकी मित्रता सीताराम गोपाल रेड्डी और हरिश्चंद्र

रामराव प्रधान से हुई। हैदराबाद के ये दोनों नवयुवक भी अमेरिका ही जा रहे थे। दूसरे दो बंगाली विद्यार्थी भी थे। श्री रेड्डी और श्री प्रधान अत्यंत भावुक और आत्मीय व्यक्ति थे, वे घर की याद कर भाव विभोर हो जाते थे। जयप्रकाश से दोस्ती के कारण इन लोगों को सहारा मिला। रंगून, पेनांग, सिंगापुर और हांगकांग के रास्ते करीब तीस दिन में जहाज जापान के कोबे बंदरगाह पर पहुंचा। रास्ते में यह चायनीज टायफून से घिर गया। चक्कर और उल्टी से जयप्रकाश परेशान हो गये। कोबे से रेलगाड़ी द्वारा वे योकोहामा गये। वहां से "तैयोमारू" जहाज पर सवार होकर 8 अक्तूबर, 1922 को सन फ्रांसिस्को पहुंचे। वहां एक रात ठहर कर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में नामांकन के लिए बर्कले पहुंचे।

आजीविका के लिए कड़ी मेहनत

बर्कले पहुंचने पर उन्हें पता चला कि विश्वविद्यालय का नया सत्र शुरू होने में अभी तीन महीने की देर है। बर्कले में वे डा. के.वी.मेनन से मिले और शुरू में उन्हीं के यहां ठहरे। अभाव के कारण हाथ पर हाथ धरे बैठना संभव नहीं था। इसलिए मेरिसविली नामक स्थान में काम ढूंढ़ने गये। वहां पहले एक सस्ते होटल में ठहरे। उस समय वहां बड़ी संख्या में भारतीय रहते थे। भारत में चल रहे असहयोग आंदोलन की खबर से विश्व के कोने-कोने में रहने वाले भारतीय रोमांचित थे और जैसे ही कोई व्यक्ति भारत से बाहर जाता लोग उससे उत्सुकता से मिलते। जब वहां लोगों को मालूम हुआ कि आंदोलन में भाग लेने के लिए जयप्रकाश ने कालेज की पढ़ाई और विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति छोड़ दी तो उन्हें आसानी से काम मिल गया। उनकी भेंट हुई शेर खान से जो पठानों की एक टुकड़ी के नेता थे। शेर खान का डील-डौल बहुत विशाल था किंतु उनका दृष्टिकोण बहुत मानवतावादी था। वे विद्यार्थियों की मदद करते थे। वे उन्हें यूबा सिटी ले गये जहां सी.बी. हार्टर के फलों के बगीचे में उनके (शेर खान के) मजदूर काम करते थे। मजदूरों की कमी न होने पर भी उन्होंने जयप्रकाश को काम दिया। जयप्रकाश को टोकरियों में से खराब फल चुन चुन कर बाहर रखने होते थे। जयप्रकाश उन लोगों के साथ ही रहने लगे। शेर खान की मंडली में सभी मुसलमान थे जो गोमांस खाते थे। लेकिन जब तक जयप्रकाश उनके साथ रहे वहां गोमांस नहीं आया। यह शेर खान की उदारता और दूसरे लोगों की धार्मिक-सांस्कृतिक भावनाओं के प्रति सम्मान का नायाब उदाहरण है।

जयप्रकाश जमकर मेहनत करने लगे और बिना किसी साप्ताहिक अवकाश के रोज दस घंटे काम करते थे। शुरू में उनके पठान दोस्तों ने काम में उनकी बहुत मदद की। हर घंटे के लिए उन्हें 40 सेंट मिलते जो उनके लिए काफी थे। एक महीने में ही उन्होंने 80 डॉलर बचा लिये। एक महीने बाद फलों का मौसम खत्म हो गया और वे बर्कले आ गये। वहां जनवरी, 1923 में उन्होंने कैलिफोर्निया में नामांकन कराया और किराये के एक

कमरे में रहने लगे। विज्ञान विभाग के दूसरे वर्ष में उन्हें प्रवेश मिला क्योंकि वे भारत से आई.एस-सी. करके गये थे। पहले उनकी इच्छा वैज्ञानिक बनने की थी, इसलिए विज्ञान में नाम लिखवाया। कुछ ही दिनों में जमा पैसे खत्म हो गये। फिर अर्थोपार्जन के लिए उन्होंने रेस्तराओं में बेयरे का तथा बर्तन धोने का काम शुरू किया। 5 जून, 1974 को पटना में एक आम सभा में उन दिनों को याद करते हुए उन्होंने कहा था, "अमेरिका में बागानों में, लोहे के कारखानों में काम किया। जहां जानवर मारे जाते हैं उन कारखानों में काम किया। जब यूनिवर्सिटी में पढ़ता था, छुट्टियों में काम करके इतना कमा लेता था कि कुछ खाना हम तीन-चार विद्यार्थी मिलकर पकाते थे, और सस्ते में हम लोग खा-पी लेते थे। एक कोठरी में कई आदमी मिल कर रह लेते थे। रुपया बचा लेते थे, कुछ कपड़े खरीदने, कुछ फीस के लिए। और बाकी हर दिन-रविवार को भी छुट्टी नहीं...एक घंटा रेस्तरां में, होटल में या तो बर्तन धोया या वेटर का काम किया, तो शाम को रात का खाना मिल गया, दिन का खाना मिल गया। किराया कहां से मकान का हमको आया। बराबर दो-तीन लड़के–कितने वर्षों तक दो चारपाई नहीं थीं। कमरे में–एक चारपाई पर मैं और कोई-न-कोई साथ हमारे अमेरिकन लड़का रहता था, हम दोनों साथ सोते थे। एक रजाई हमारी होती थी। इस गरीबी में मैं पढ़ा हूं। इतवार के दिन या कुछ "ऑड टाइम" में, यह जो होटल का काम है उसको छोड़ करके यह जूते साफ करने का काम "शू शाइन पार्लर" में, उससे ले करके कमोड साफ करने का काम होटलों में।"

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में एक सत्र पूरा होने पर उन्हें विश्वविद्यालय छोड़ना पड़ा क्योंकि अचानक वहां बाहर के विद्यार्थियों के लिए फीस लगभग दुगुनी कर दी गयी। जयप्रकाश वहां से आयोवा विश्वविद्यालय गये जहां पहले से उनके मित्र भोलादत्त पंत पढ़ रहे थे। आयोवा में फीस कैलिफोर्निया के मुकाबले एक चौथाई थी। वहां भी उन्हें ऐसे काम करने पड़े। भोला पंत ने काम ढूंढ़ने में उनकी सहायता की। सन् 1923-24 में दो सत्रों की उनकी पढ़ाई आयोवा में हुई। आयोवा विश्वविद्यालय के ही एक ख्याति प्राप्त प्रोफेसर ने जयप्रकाश नारायण को जे.पी. कहकर संबोधित करना शुरू किया। बाद में इसी संक्षिप्त नाम से वे अधिक लोकप्रिय हुए।

आयोवा में उन्होंने जर्मन तथा फ्रांसीसी भाषा के साथ साथ कुछ समय तक केमिकल इंजीनियरिंग का भी अध्ययन किया। उनके पिता चाहते थे कि जयप्रकाश इंजीनियर बनें। एक वर्ष के बाद जे.पी. विस्कांसिन विश्वविद्यालय चले गये। यहीं उनकी विचारधारा में व्यापक बदलाव आया।

अब विज्ञान की जगह समाज विज्ञान की ओर उनका रूझान होने लगा क्योंकि उन्हें लगा कि विज्ञान का सही उपयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक कि देश पराधीनता

की बेड़ियों से मुक्त नहीं होता। उन्होंने समाजशास्त्र में नामांकन करवाया, किंतु हायर कैल्क्यूलस, मैथेमेटिकल प्राबबिलिटीज, स्टैटिस्टिक्स एवं बैक्टीरियालजी जैसे विषयों का अध्ययन भी जारी रखा।

उस वक्त रॉवर्ट ला फॉलेट के प्रभाव के कारण विस्कांसिन विश्वविद्यालय संयुक्त राज्य का सबसे प्रगतिशील विश्वविद्यालय माना जाता था। इसके अतिरिक्त इसके समाज शास्त्र विभाग में प्रो. एडवार्ड एल्सवर्थ रॉस और प्रो. यंग जैसे विश्वविख्यात समाजशास्त्री कार्यरत थे।

मार्क्सवाद का प्रभाव

यहां वे अलग अलग विचारधाराओं के विद्यार्थियों के संपर्क में आये। इनमें पोलैंड का ऐव्रम लैंडी नामक एक यहूदी छात्र काफी तेजस्वी था और कट्टर मार्क्सवादी था। वह एक साम्यवादी पार्टी का सक्रिय सदस्य भी था। उसके कारण जयप्रकाश की दिलचस्पी भी मार्क्सवाद में बढ़ी। साथ ही उन्होंने देखा कि अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी अतुल वैभव के साथ साथ बेहद गरीबी है। उनका मन विद्रोह कर उठा कि क्यों दुनिया का सारा सुख और ऐश्वर्य गिने-चुने लोगों तक ही सिमट कर रह जाता है? विस्कांसिन विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर कहा करते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था में गरीबी की समस्या का कोई निदान नहीं है। इसका जे.पी. पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वह उस प्रोफेसर के निकट संपर्क में आ गये। उन्हीं दिनों जय लवस्टोन के नेतृत्व में अमेरिकी साम्यवादी मार्क्सवाद का प्रचार कर रहे थे। इसका भी असर उन पर पड़ा था। कुल मिलाकर स्थिति यह बनी कि जे.पी. मार्क्सवादी साहित्य के अध्ययन में डूब गये। मार्क्स, लेनिन, प्लेखनॉव, मानवेन्द्र नाथ राय, रोजा लेक्सेम्बर्ग, ट्राट्स्की आदि की पुस्तकों का उन्होंने विस्तार से अध्ययन किया। एम.एन. राय की पुस्तक "आफ्टरमैथ ऑव नॉनकॉपरेशन" एवं "इंडिया इन ट्रैंजिशन" और उन्हीं के द्वारा संपादित पत्रिका "न्यू मासेज" से वे अत्यंत प्रभावित हुए। और इस तरह वे एक कट्टर मार्क्सवादी बन गये। जे.पी. के अपने ही शब्दों में, "अमेरिका में, विस्कांसिन में, मैडिसन में, मैं घोर कम्युनिस्ट था। घोर मार्क्सवादी बना, स्टालिनवादी नहीं। वह लेनिन का जमाना था, वह ट्राट्स्की का जमाना था। सन् 1924 में लेनिन मरे थे, और 1924 में मैं मार्क्सिस्ट बना था। और दावे के साथ कह सकता हूं कि उस समय तक जो भी मार्क्सवाद के ग्रंथ छपे थे, अंग्रेजी में, हम लोगों ने पढ़ डाले थे। रात रात को रोज एक रशियन दर्जी था, उसके यहां हमारे क्लास लगते थे।"[8]

जे.पी. अमेरिका में कम्युनिस्ट चैप्टर के सदस्य बने। एलेन एंड वेन्डी स्कार्फ ने जे.पी. की जीवनी में जोर देकर लिखा है कि जे.पी. कभी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य अमेरिका में नहीं बने। लेकिन जे.पी. के निजी सचिव श्री सच्चिदानंद ने लेखक को बताया कि वे

कम्युनिस्ट चैप्टर के सदस्य बने और जे.पी. ने स्वयं इस बारे में उन्हें बताया था। विस्कांसिन में ही उनका परिचय जे. लवस्टोन और मैनुएल गोमेज जैसे वरिष्ठ और नेताओं से हुआ। गोमेज से उनकी मुलाकात शिकागो में हुई और दोनों में शीघ्र ही मित्रता हो गयी। गोमेज में जे.पी. को सलाह दी कि वे मास्को जाकर हाल में खुले ओरिएंटल यूनिवर्सिटी में साम्यवादी विचारों और क्रांतिकारी तौर-तरीकों की दीक्षा लें। उन्हें यह सलाह अच्छी लगी। उन्होंने सोचा कि जब जीवन में क्रांति और सामाजिक परिवर्तन के ही काम को आगे बढ़ाना है तो डिग्री हासिल करने से क्या लाभ।

जे.पी. मानसिक रूप से रूस जाने को तैयार हो गये। उन्हें पत्र लिखने की आदत बहुत कम थी, लेकिन उन्होंने पत्नी प्रभावती को रूस साथ चलने के लिए चिट्ठी लिखी। प्रभावती जी ने फिर इंकार कर दिया। उन्हें बताया गया कि उन्हें सिर्फ जाने का खर्च वहन करना होगा, बाकी व्यवस्था वहां हो जायेगी। इसके लिए पढ़ाई छोड़कर काम की तलाश में वे शिकागो पहुंचे। डिप्रेशन का दौर शुरू हो जाने के कारण काम मिल नहीं रहा था। भारतीय होने के कारण भी कोई उन्हें काम नहीं दे रहा था। पैसे थे नहीं और काम खोजने पैदल भटकते रहे। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। परिणाम यह हुआ कि जे.पी. गंभीर रूप से बीमार पड़ गये। पैसे की कमी के कारण उचित इलाज भी नहीं हो पा रहा था। गले में अधिक दर्द के कारण बोलना और खाना भी दूभर हो गया। नीग्रो बस्ती में प्रैक्टिस कर रहे एक भारतीय बंगाली डाक्टर ने उनके टान्सिल का आपरेशन किया, लेकिन आपरेशन पूरा सफल नहीं रहा और उसकी जड़ गले में रह गयी जिससे जहर पूरी देह में फैल गया। उनकी हालत अत्यंत नाजुक हो गयी। किसी तरह तीन महीने बिस्तर पर पड़े रहने के बाद वे ठीक हुए। ऐसी दयनीय स्थिति में उनके मित्र चंद्रा सिंह ने उनको अपने घर पर रखा और पति पत्नी ने मिलकर उनकी सेवा की। इस बीच जे.पी. के घर वाले लगभग एक साल से उनका कोई समाचार न पाकर बेहद चिंतित थे। भोला पंत के पत्र से ही बहुत बाद में परिवार को उनकी बीमारी का पता चला।

कर्ज में डूबे जे.पी. ने लाचारी में पिता को आर्थिक सहायता के लिए लिखा। बाबू हरसू दयाल ने जमीन गिरवी रखकर पैसे भेज दिये। परंतु जब उन्हें मालूम हुआ कि जयप्रकाश की रूस जाने की योजना है तो वे चिंतित हो गये। उन्होंने प्रभावती जी के पिता ब्रजकिशोर बाबू से इस पर विचार विमर्श किया। फिर ब्रजकिशोर बाबू और शम्भू बाबू ने डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद से आग्रह किया कि वे अपने प्रभाव से जयप्रकाश का मास्को जाने से रोकें। राजेन्द्र बाबू ने जे.पी. को पत्र लिखा कि अन्याय के विरुद्ध महत्वपूर्ण लड़ाई भारत में ही लड़नी है, सोवियत संघ में नहीं। उन्होंने जे.पी. को आगाह किया कि मास्को जाने पर हो सकता है ब्रिटिश सरकार उन्हें स्वदेश वापस लौटने की अनुमति न दे जैसा

कि एम.एन. राय के साथ हुआ। इस पत्र का कोई विशेष असर जे.पी. पर नहीं हुआ, परंतु मास्को जाने के लिए पैसे भी कहां थे? अंततः विवश होकर उन्हें यह योजना निरस्त करनी पड़ी।

पुनः विस्कांसिन विश्वविद्यालय में उन्होंने पढ़ाई शुरू की और सत्र पूरा किया। इसी बीच उनके मित्र एब्रॉम लैंडी को कोलम्बस स्थित ओहियो विश्वविद्यालय में लेक्चररशिप मिल गयी। उन्होंने जे.पी. को वहां जाने की सलाह दी और जे.पी. ओहियो विश्वविद्यालय चले गये। 31 अगस्त, 1928 को उन्होंने बी.ए. की परीक्षा पास की। परिणाम अच्छा होने के कारण तीस डॉलर की छात्रवृत्ति मिल गयी और तीन महीने बाद विभाग में असिस्टेंट की नौकरी भी मिल गयी। वे ट्यूटोरियल क्लास लेने लगे, इसलिए आर्थिक परेशानी कुछ कम हो गयी। साथ ही उन्होंने एम.ए. में नामांकन कराके अध्ययन जारी रखा। एम.ए. के लिए लिखे गये उनके शोध निबंध "सोसाइटल वैरिएशन" को उस वर्ष विश्वविद्यालय का सर्वोत्तम निबंध माना गया। इस निबंध में उन्होंने प्रतिपादित किया था कि उत्पादन के उपादानों और तकनीकों को बेहतर बनाने से ही मानव समाज में परिवर्तन होता है। 13 अगस्त, 1929 को उन्हें एम.ए. की डिग्री प्रदान की गयी। वे पी.एच-डी. भी करना चाहते थे, लेकिन मां की अस्वस्थता का समाचार उन्हें मिला। ड्रॉप्सी के कारण उनकी स्थिति नाजुक हो गयी थी। इसलिए पी.एच-डी. का विचार त्यागकर सितंबर, 1929 में उन्हें भारत वापस आना पड़ा।

जे.पी. ने अमेरिका में सात वर्षों से अधिक रहकर पांच विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। पैसे कमाने के लिए एक-दो सत्रों की पढ़ाई भी उन्हें छोड़नी पड़ी। उन्हें तरह तरह के काम करने पड़े। बगीचे में फल चुनने, अच्छे फलों से सड़े हुए फलों को निकालने, फलों की पैकिंग से लेकर कारखानों में और होटलों में प्लेट धोने, कमोड साफ करने, बूट पॉलिश करने, बर्फ गिरने पर कुदाली से उसे हटाने का और बूचड़खाने तक में काम किया। वहां पशुओं को कटते देखा तो कई हफ्ते मांस का सेवन नहीं कर पाये। मांसाहार उन्होंने लंबी बीमारी के बाद डाक्टर की सलाह पर शुरू किया था।

आर्थिक कठिनाई ने उन्हें अपने विवेक के विरुद्ध भी एक काम करने पर मजबूर किया जिसमें झूठ और फरेब का इस्तेमाल होता था। वहां कुछ भारतीय फेस क्रीम और बालों के लिए शैंपू बनाते थे। और यह कहकर बेचते थे कि यह हिमालय की जड़ी-बूटियों से बनाया गया है, इससे घुंघराले बाल सीधे हो जाते हैं और चेहरे का रंग भी साफ हो जाता है। उसे प्रमाणित करने के लिए वे अपने बाल और शरीर के रंग का उदाहरण देते थे। इसलिए भारतीय लड़कों को सेल्स मैन के रूप में पसंद किया जाता था और उन्हें अच्छी आमदनी होती थी। नीग्रो और मलाट महिलाएं इसे खूब खरीदती थीं। जे.पी. ने भी कुछ दिनों तक इसे घर घर घूमकर बेचने का काम किया। एक बार एक मलाट युवती



जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती



जे. पी. जर्मनी के पूर्व चांसलर विली ब्रांडर के साथ



दांए सेः जे. पी., मिश्र के तत्कालीन राष्ट्रपति नसर और बी. के. नेहरू



जे. पी. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के साथ



आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ जे. पी.



बेलछी कांड पर श्रीमती गांधी के पटना आनें पर जे. पी. उन्हें आशीर्वाद देते हुए



जे. पी. और मोरारजी देसाई



जे. पी. और कामराज नाडर



दाएं से: प्रभावती जी, विनोबा भावे और जे. पी.



जे. पी. आचार्य कृपलानी के साथ



दाढ़ी बनाने में व्यस्त जे. पी.



भोजन करते हुए जे. पी.



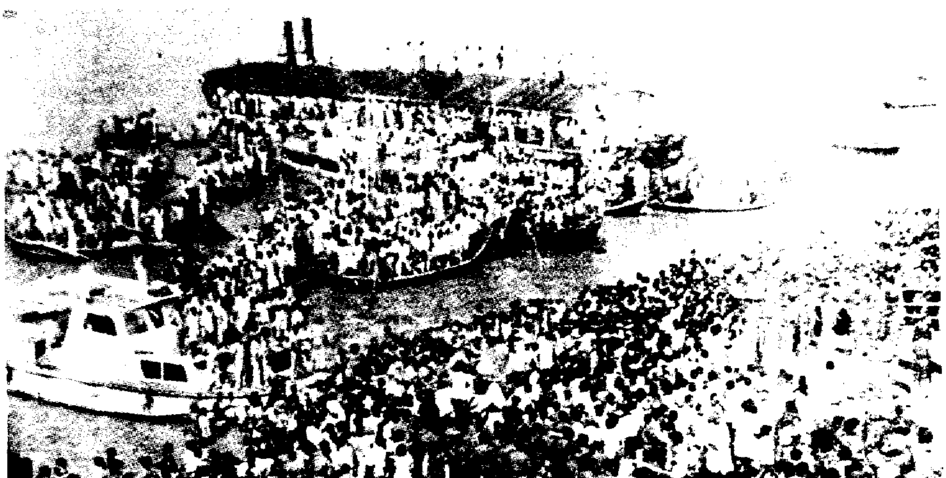
जे. पी. जेल में



8 अक्तूबर 1979 को जे. पी. का महाप्रयाण



जे. पी. की शव यात्रा



अंतिम संस्कार - बांस घाट, पटना

ने उनसे कुछ सामान लिया और पैसे बाद में ले जाने को कहा। बाद में जब वे पैसे लेने गये तो गुस्से में उसने उन्हें धिक्कारा कि आप धोखाधड़ी कर पैसे कमाते हैं। यह सुनते ही जे.पी. भाग आये और फिर उन्होंने वह काम नहीं किया। अमेरिका में ही काम करते हुए उन्हें श्रम की महत्ता और मनुष्य की समानता का अर्थ गहराई से समझने का अवसर मिला। अमेरिकी पत्रकार वेलसे हंगेन से उन्होंने कहा था, "शारीरिक परिश्रम के काम करने के अनुभव ने मुझे एक ऐसी जीवन दृष्टि दी है, जो दूसरी कोई चीज नहीं दे पाती। गांधीवाद या मार्क्सवाद का कोरा शास्त्रीय अथवा किताबी ज्ञान यह कभी न कर पाता। मानव मात्र की समानता और श्रम का गौरव, श्रम की प्रतिष्ठा, मेरे लिए कोरे शब्द नहीं रहे, बल्कि वे मेरी प्रत्यक्ष अनुभूति की वस्तु बन गये।"[9]

छात्र के रूप में विशिष्ट पहचान

अमेरिका में पढ़ाई के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी एक विशेष पहचान बनायी। मनोविज्ञान के अध्यापक अल्बर्ट बीस ने कहा था, "आगे चलकर यह विद्यार्थी एक सामाजिक तत्ववेत्ता के रूप में नाम कमाएगा।"[10] उनके अमेरिकी सहपाठी उजर ने कहा, "उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और उनका तर्क निरुत्तर करने वाला होता था। बौद्धिक दृष्टि से इतना जागरूक और जीवंत व्यक्ति मैंने दूसरा देखा नहीं।"[11] समाज शास्त्र के प्रोफेसर ई.एफ.डूमले ने जिनके निर्देशन में जे.पी. ने एम.ए. का निबंध लिखा था, उन्हें अपने विद्यार्थियों में सबसे अधिक योग्यता वाला माना था। उन्होंने लिखा कि जे.पी. में "नेतृत्व के मौलिक लक्षण", "मानव कल्याण के आदर्श" हैं, "विचारों में आक्रामक हैं, लेकिन कार्यों में नहीं" और "ऐसा नहीं लगता है कि उन्होंने जीवन का कोई आधारभूत दर्शन बनाया है।"[12] कैम्पस कम्युनिकेशन के प्रो. रिचर्ड स्टेइनमेत्ज, अर्थशास्त्र के प्रो. ए.बी. वोल्फ, प्रो. एच.ए. मिलर तथा कई अन्य अध्यापकों ने उनकी कुशाग्र बुद्धि, ज्ञान पिपासा, आदर्शवादिता, परहित-चिंता आदि की चर्चा की है।

स्वदेश वापसी

मां की बीमारी का समाचार सुनकर शीघ्र वापस आना था, लेकिन जेब खाली थी। पैसे इकट्ठे करने के लिए काम खोजने न्यूयार्क की ओर चले। पैदल ही निकले, कभी कहीं लिफ्ट मिल जाती तो थोड़ी दूरी तय हो जाती। इस तरह जैसे-तैसे वे फिलाडेल्फिया पहुंचे और वहां से न्यूयार्क के लिए ट्रेन पकड़ी। न्यूयार्क में कोई विशेष काम नहीं मिला, इसलिए जहाज भाड़े की व्यवस्था नहीं हो पायी। अचानक एक दिन उनके एक पुराने दोस्त औरंगाबादकर मिले जो भारत आ रहे थे। उन्होंने जे.पी. को लंदन तक का किराया दे दिया और दूसरे ही दिन दोनों लंदन के लिए रवाना हो गये।

इस तरह सात वर्षों से भी कुछ अधिक समय बिताकर सितंबर, 1929 में अमेरिका से वे वापस चले। लंदन पहुंच कर आगे के किराये के लिए घर पत्र भेजा। 28 दिन बाद घर से पैसे आये। इस बीच वे लंदन में काम करते एवं घूमते रहे। यहां वे डा. राधाकृष्णन, क्लेमेंस दत्त आदि से मिले। वहां कम्युनिस्ट पार्टी के कई सदस्यों से उनका परिचय हुआ। पैसे आने पर आस्ट्रेलिया जाने वाले जहाज से कोलम्बो आये। वहां से मद्रास और कलकत्ता होते हुए पटना पहुंचे।

उद्धरण

1. जयप्रकाश, पृ. 303
2. वही, पृ. 300
3. वही, पृ. 301
4. मिश्र, सुरेशचन्द्र : चिरंतन विद्रोही जयप्रकाश (ज्योत्स्ना), पृ. 32
5. जयप्रकाश, पृ. 304
6. वही, पृ. 305
7. नारायण, जयप्रकाश : संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान (सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी), 1974, पृ. 11
8. वही, पृ. 11-2
9. जयप्रकाश, पृ. 310
10. वही, पृ. 309
11. वही, पृ. 309
12. डूमले, एफ.इ. का पत्र 23 मई, 1929 (कम्मेमोरेशन वॉल्यूम), पृ. 4-5 (जे.पी. ने फाउंडेशन ऑफ मोरल लीडरशिप ऑफ न्यूयार्क सिटी के फेलोशिप के लिए आवेदन किया था। प्रोफेसर डूमले ने उसी आवेदन की अनुशंसा में यह पत्र लिखा था।)

स्वदेश वापसी और ब्रह्मचर्य

जब जयप्रकाश अमेरिका गये तो प्रभावती गांधी जी के साथ रहने साबरमती आश्रम चली गयीं। गांधी जी ने ब्रजकिशोर प्रसाद को पत्र लिखकर आग्रह किया था कि वे अपनी बेटी को आश्रम में रहने की अनुमति दें। जयप्रकाश ने भी अमेरिका से अपने पिताजी को चिट्ठी लिखकर अनुरोध किया कि वे प्रभावती को साबरमती आश्रम जाने दें। इसलिये प्रभावती साबरमती आश्रम चली गयीं और जयप्रकाश के अमेरिका प्रवास के दौरान आश्रम में ही रहीं।

प्रभावती--बापू और बा की बेटी

गांधी जी और कस्तूरबा का अगाध स्नेह प्रभावती जी को मिला। प्रभावती जी के मन में भी बापू और बा के लिए अतिशय सम्मान था। यदि प्रभावती जी थोड़े दिनों के लिए आश्रम से जातीं तो दोनों अपनी 'बेटी' के लिए परेशान हो जाते और आतुरता से उनके पत्र की राह देखते। एक पत्र में गांधी जी ने उन्हें लिखा "तुमने तो इस वक्त सचमुच दुख दिया। दो पंक्तियां लिखने में कितना समय जाता...हफ्ते में एक बार तो तेरा पत्र मुझे मिलना ही चाहिए।"[1] एक अन्य पत्र में गांधी जी ने लिखा, "मैं किसी खास काम के लिए नहीं बुला रहा हूं। कोई खास बात भी नहीं कहनी है। लेकिन जिस तरह बाप अपनी बेटी को बिना कारण भी अपने पास रखना चाहता है, वही स्थिति मेरी समझो।"[2]

आश्रम में गांधी जी स्वयं प्रभावती को पढ़ाते थे। संस्कृत, गुजराती, अंग्रेजी, गणित, शरीर शास्त्र, आहार शास्त्र की शिक्षा स्वयं उन्होंने दी। अंग्रेजी सिखाने के लिए विशेष ध्यान दिया। क्योंकि जयप्रकाश अमेरिका से भेजे अपने पत्रों में प्रभावती को अंग्रेजी ठीक से सीखने की सलाह देते थे। इसके साथ ही उन्होंने प्रभावती जी को चरखा चलाना सिखाया और नियमित रूप से डायरी लिखने को प्रेरित किया। आश्रम में ही प्रभावती को डायरी लिखने की आदत पड़ी और यह आदत अंत तक बनी रही। लगभग 45 वर्षों की उनकी डायरियां उलब्ध हैं। आश्रम में कड़े अनुशासन में सबको रहना होता था और प्रभावती भी सहर्ष उन नियमों का पालन करती थीं। सबके साथ वे 4 बजे सुबह उठकर काम में लग जाती थीं। रसोई में खाना बनाने से लेकर आश्रम में झाड़ू देने और शौचालय साफ

करने तक का काम करती थीं। उसके बाद चरखा कातती थीं। दिन भर के व्यस्त कार्यक्रम के बाद रात्रि भोजन और प्रार्थना के साथ दिनचर्या समाप्त होती थी और 9 बजे सभी लोग सो जाते थे। यहीं उनका परिचय मैडेलीन स्लेड (मीरा बहन), सरोजिनी नायडू एवं कमला देवी चट्टोपाध्याय जैसी जानी-मानी महिलाओं से हुआ।

प्रभावती—ब्रह्मचर्य का संकल्प

प्रभावती जी पर गांधी जी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेने की बात उनके दिमाग में आई। पहले उन्होंने अपनी इच्छा कस्तूरबा को बताई और फिर बाद में गांधी जी से भी इसकी चर्चा की। गांधी जी ने पहले मना कर दिया और उन्हें जयप्रकाश से मशविरा करने को कहा। उन्होंने जयप्रकाश को अमेरिका पत्र लिखा। जवाब में जयप्रकाश ने लिखा कि पत्र में इसका जवाब क्या दूं, वापस आने पर बात करूंगा। लेकिन प्रभावती जी व्रत लेने को उद्विग्न थीं। उन्होंने जयप्रकाश के वापस आने का इंतजार नहीं किया और ब्रह्मचर्य की शपथ ले ली।

प्रभावती ने स्पष्ट किया है कि ब्रह्मचर्य का व्रत उन्होंने स्वेच्छा से लिया, गांधी जी के दबाव में नहीं, "लेकिन मैं यह कहना चाहती हूं कि जो लोग कहते हैं कि गांधी जी ने ऐसा करा दिया,और उनके कहने से मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, तो गांधी जी ने कुछ नहीं कहा था। बल्कि, उन्होंने तो मना ही किया था, और वे बराबर कहते थे कि मुझको जे.पी. के साथ रहना चाहिए, उनकी देखभाल करनी चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए। गांधी जी की मेरे नाम की सब चिट्ठियों में भी उन्होंने ऐसा ही लिखा है। तो मैंने कोई व्रत किसी के कहने से नहीं लिया था। लेकिन बचपन से ही कुछ ऐसी वृत्ति मेरी थी। वहां आश्रम में जाकर सब देखा, तो स्वाभाविक रूप में इस तरफ अग्रसर हुई।"[3]

स्पष्ट है कि महात्मा गांधी ने भले ही सीधे ढंग से प्रभावती को ब्रह्मचर्य का व्रत लेने को न कहा हो, किंतु उनके संस्पर्श में जिस तरह का संस्कार प्रभावती के अंदर विकसित हुआ उसकी यह स्वाभाविक परिणति थी। आध्यात्मिक और चारित्रिक दृष्टि से प्रभावती का व्यक्तित्व अत्यधिक विकसित था और आश्रम का संस्कार उसमें उत्प्रेरक बना। गांधी जी स्वयं सन् 1906 में ब्रह्मचर्य का व्रत ले चुके थे। व्रत लेने के दिन तक उन्होंने अपनी पत्नी के साथ विचार नहीं किया था पर व्रत लेते समय किया। ब्रह्मचर्य की महिमा से वे अभिभूत थे। उन्होंने स्वयं लिखा है, "ब्रह्मचर्य के संपूर्ण पालन का अर्थ है, ब्रह्म-दर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्र द्वारा नहीं हुआ। यह अर्थ मेरे सामने क्रम क्रम से अनुभव सिद्ध होता गया। उससे संबंध रखने वाले शास्त्र वाक्य मैंने बाद में पढ़े। ब्रह्मचर्य में शरीर- रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्मा का रक्षण समाया हुआ है। इसे मैं व्रत लेने के बाद दिनों दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। अब ब्रह्मचर्य को एक घोर तपश्चर्या के रूप में रहने

देने के बदले उसे रसमय बनाना था, उसी के सहारे निभाना था, इसलिए अब उसकी विशेषताओं के मुझे नित नये दर्शन होने लगे।"[4]

पति पत्नी के बीच भी ब्रह्मचर्य का पालन होना चाहिए इसका स्पष्ट बोध गांधी जी को दक्षिण अफ्रीका में हुआ। इसमें रायचंद भाई के प्रभाव की प्रधानता थी। गांधी जी ने इस विचार के उद्‌गम के बारे में लिखा है, "उनके (रायचंद भाई) साथ एक संवाद का मुझे स्मरण है। एक बार मैं ग्लैडस्टन के प्रति मिसेज ग्लैडस्टन के प्रेम की प्रशंसा कर रहा था। मैंने कहीं पढ़ा था कि पार्लियामेंट की सभा में भी मिसेज ग्लैडस्टन अपने पति को चाय बनाकर पिलाती थीं। इस वस्तु का पालन इस नियमबद्ध दंपत्ति के जीवन का एक नियम बन गया था। मैंने कवि को वह प्रसंग पढ़कर सुनाया और उसके संदर्भ में दंपत्ति प्रेम की स्तुति की। रायचंद भाई बोले, 'इसमें तुम्हें महत्व की कौन सी बात मालूम होती है? मिसेज ग्लैडस्टन का पत्नीत्व या उसका सेवाभाव? यदि वे ग्लैडस्टन की बहन होतीं तो? अथवा उनकी वफादार नौकरानी होतीं और उतने ही प्रेम से चाय देतीं तो? ऐसी बहनों, ऐसी नौकरानियों के दृष्टांत क्या आज हमें नहीं मिलते? और, नारी जाति के बदले ऐसा प्रेम यदि तुमने नर जाति में देखा होता, तो क्या तुम्हें सानंद आश्चर्य न होता? मेरे इस कथन पर विचार करना।'

"रायचंद भाई स्वयं अविवाहित थे। याद पड़ता है कि उस समय तो मुझे उनके ये वचन कठोर लगे थे, पर इन वचनों ने मुझे चुंबक की तरह पकड़ लिया।"[5]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि आश्रम में ब्रह्मचर्य की महत्ता पर अवश्य चर्चा होती होगी और इसका गहरा प्रभाव प्रभावती पर पड़ा। लेकिन यह कहना उचित नहीं होगा कि प्रभावती ने भावावेश में ऐसा निर्णय लिया। क्योंकि उन्होंने पूरी जिंदगी इसका निर्वाह बिना किसी परेशानी के किया। इस बात का कहीं कोई संकेत नहीं मिलता है कि कभी उनके मन में व्रत लेने के बाद कोई विकार आया। एक बार गांधी जी ने प्यारे लाल से कहा था कि प्रभावती में जो चीज उन्हें आकृष्ट करती है वह है उनकी शुद्धता और काम वासना की शून्यता।[6]

जे.पी. का द्वंद्व

इस बीच जे.पी. अमेरिका से नवंबर, 1929 में वापस आये तो प्रभावती उनसे पटना में मिलीं। प्रभावती से उन्हें मालूम हुआ कि उन्होंने ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया है। जे.पी. मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं थे। और न ही ब्रह्मचर्य में उन दिनों उनका विश्वास था। इसके अलावा बच्चों से उन्हें बेहद लगाव था और उनकी अपनी इच्छा भी थी कि उनके बच्चे हों। इसलिए प्रभावती का निर्णय सुनकर वे काफी विचलित हुए। किंतु प्रभावती अपने व्रत में अडिग थीं। इससे उनके दांपत्य जीवन में द्वंद्व और आंतरिक संघर्ष की स्थिति

पैदा हो गयी।

दिसंबर में जे.पी. और प्रभावती गांधी जी से मिलने वर्धा गये। यह जे.पी. की महात्मा गांधी से पहली भेंट थी। कस्तूरबा ने आश्रम में जे.पी. का स्वागत एक दामाद की तरह किया। उनकी आत्मीयता से जे.पी. मुग्ध हो गये। ब्रह्मचर्य के बारे में जे.पी. की गांधी जी से चर्चा हुई। गांधी जी ने महसूस किया कि प्रभावती के व्रत से जे.पी. के अंदर आक्रोश है, किंतु वे नैतिक रूप से प्रभावती के साथ थे और उन्हें अपने संकल्प से हटने की सलाह नहीं दे सकते थे। सन् 1929 से 1936 तक इस विषय को लेकर जे.पी. का गांधी जी से काफी पत्राचार होता रहा। जे.पी. ने बहुत कठोर शब्दों में गांधी जी को कई पत्र लिखे, लेकिन उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न कर बड़े स्नेह से उन्हें समझाने का प्रयास किया। एक पत्र में उन्होंने जे.पी. को लिखा, "तुम्हारे दुख को समझ सकता हूं।...तुम्हारे दुख से मुझे दुख हुआ है।...तुम्हारा पत्र मिला है। स्वच्छ है।...प्रभावती के साथ रहने की तुम्हारी इच्छा स्वाभाविक है। इस हालत में मैं उसे वर्धा रखना नहीं चाहता हूं।...तुम्हारा जीवन नीरस बन रहा है; यह मुझे दुख है ही। तुम्हारा मीठा और शुद्ध हृदय से लिखा हुआ खत मिला।...मेरे लिए तुम्हारे दिल में स्थान व मान है, सो तो मैं अच्छी तरह जानता हूं। मिलेंगे तब बातें करेंगे।"[7]

एक अन्य पत्र में गांधी जी ने लिखा, "इसमें मेरी जिम्मेदारी तो है ही। प्रभा मेरे साथ रही, और मेरी बातों ने, मेरे आचार ने, उस पर असर डाला। अब मैं नहीं जानता क्या करना उचित है।...प्रभा मेरे पास आई, ब्रजकिशोर बाबू की और तुम्हारी सम्मति से। मेरा जो कुछ असर प्रभा पर पड़ा, उसके लिए तो क्या किया जाए? लेकिन मेरे संपर्क से प्रभा की पिता-भक्ति और पति-प्रेम में कुछ न्यूनता नहीं आई है।...अब मुझे कहो, मैं क्या करूं? यदि ऐसा चाहोगे कि प्रभा न मेरे पास आये और न मुझको पत्र लिखे, तो तुम्हारे संतोष के कारण मैं ऐसा प्रतिबंध भी स्वीकार कर लूंगा।...तुम दोनों के आदर्श में भेद पाता हूं। प्रभावती के आदर्श बनने में मेरा हाथ है सही। उसका मुझे दुख नहीं है। लेकिन तुम्हारा प्रेम उसे तुम्हारे आदर्श की ओर खींच जाए तो मैं राजी हूंगा, मेरी जिम्मेवारी कम होगी, तुमको संतोष होगा।...मेरे लिए इतनी खेद की बात है सही कि जो शिक्षा प्रभा ने मेरे पास पाई है, उसमें तुम्हारी पूर्ण सम्मति नहीं है।"[8] गांधी जी ने अपनी स्थिति एक दूसरे पत्र में स्पष्ट की, "मेरी यही अभिलाषा है कि तुम्हारा दांपत्य आदर्श बने।...मेरे लिए धर्म संकट है। प्रभा मुझे अथवा आश्रम को छोड़ना नहीं चाहती। मैं कैसे उसको निकाल दूं? मैं चाहता हूं प्रभा तुम्हारे पीछे पीछे घूमे, और तुम दोनों में जो अंतर पड़ गया है, सो दूर हो जाए।...दोनों मिलकर कुछ फैसला करो।...मैं तो जहां कहो वहां सलाह दे सकता हूं। हां, कोई एक दूसरे पर बलात्कार न करे।"[9] अंत में गांधी जी ने एक खत में उन्हें दूसरी शादी करने की सलाह दी, "इसलिए मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि

यदि प्रभावती को विकार नहीं है तो उसको मुक्ति देनी चाहिए। और तुम्हें दूसरी शादी करनी चाहिए। उसमें मैं अधर्म नहीं मानता। क्या किया जाए? तुम्हारी भोगेच्छा को बलात्कार से कैसे रोका जाये। तुम तो भोगेच्छा को आवश्यक और आत्मा के लिए लाभदायी मानते हो। ऐसे अवसर पर दूसरी शादी करने में मैं किसी दृष्टि से बुरी चीज नहीं समझता हूं। मेरा ख्याल है कि तुम्हारे ऐसा करने से समाज को एक ऐसा दृष्टांत मिलेगा। कई नवयुवक अपनी पत्नी पर बलात्कार करते हैं। कई वेश्यागमन करते हैं। कई इससे भी ज्यादा अनीति करते हैं। यहां तो प्रभावती ने कुमारी का जीवन पसंद किया है। तुम्हारे ब्रह्मचर्य की इच्छा नहीं है। इसलिए तुम प्रभावती की इच्छा के रक्षक बनते हो और अपने लिए दूसरी स्त्री को ढूंढ़ते हो, इस योजना में कहीं भी मुझको बुराई प्रतीत नहीं होती है।"[10]

ब्रह्मचर्य का व्रत

गांधी जी के इस पत्र से जे.पी. बुरी तरह आहत हुए थे और डा. हरिदेव शर्मा के साथ बातचीत में उन्होंने इसे गांधी जी का "रुथलेस लॉजिक" कहा था। दूसरे विवाह के विचार तक से उनके आत्म-सम्मान को ठेस लगती थी। चूंकि दूसरा विवाह नहीं करना था इसलिए उन्होंने भी प्रभावती का साथ निभाने के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। गांधी जी के आनंद का ठिकाना न रहा। हर्षातिरेक में उन्होंने आशीर्वाद दिया, "यदि दूसरी स्त्री का ख्याल तक भी तुमको नहीं है, तो प्रभावती के लिए (तुम्हें) ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए और प्रभावती पर तुम्हारा सचमुच ऐसा प्रेम है, तो अनुभव से तुम देखोगे कि तुम्हारे विकार प्रभावती के निकट शांत हो जायेंगे।"[11]

यह एक अद्‌भुत और अनोखी घटना थी। इसके पहले केवल पुरुषों के ब्रह्मचर्य व्रत का उदाहरण मिलता है और स्त्रियों ने अपने पति की अनुगामिनी के रूप में ऐसा संकल्प लिया है। रामकृष्ण परमहंस की साधना के लिए मां शारदा ने ताउम्र ब्रह्मचर्य का पालन किया। महात्मा गांधी की साधना के लिए कस्तूरबा ने ऐसा किया। किंतु जे.पी. और प्रभावती जी के मामले में बिल्कुल उल्टा हुआ। प्रभावती जी की साधना के लिए जे.पी. ने व्रत लिया। सन् 1973 में प्रभावती जी की मृत्यु के बाद एक दिन जे.पी. को पुराने पत्रों का एक पुलिंदा मिल गया जिसमें गांधी जी को उनके द्वारा लिखे गये पत्र थे। जे.पी. एक-एक कर पत्र को पढ़ते गये और फफक फफक कर रोते रहे, "मैंने ऐसे महात्मा को क्या क्या लिख दिया।"

ब्रह्मचर्य का व्रत प्रभावती ने स्वेच्छा से लिया लेकिन उनका वैराग्य गृहस्थ जीवन को त्यागने वाला नहीं था। गृहस्थ जीवन में रहकर उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया। आजीवन जे.पी. के साथ साये की तरह रहीं और एक पतिव्रता नारी की तरह पति की

हर सुविधा का ध्यान रखती रहीं। दोनों एक कमरे में सोते थे परंतु बिस्तर अलग अलग थे। जब तक जीवित रहीं जे.पी. के लिए भोजन या तो स्वयं बनाती थीं या अपनी देख रेख में बनवाती थीं, और हर व्यंजन चखकर देख लेने के बाद ही जे.पी. के लिए परोसती थीं। पटना में कदमकुआं स्थित महिला चरखा समिति, जहां बाद में जे.पी. रहने लगे, में उनके सोने का कमरा पहली मंजिल पर था और रसोईघर दूसरी मंजिल पर। उम्र ढलने के बाद भी प्रभावती जी जे.पी. की देखभाल के लिए दिन भर में कई बार ऊपर–नीचे का चक्कर लगाती थीं ताकि जे.पी. को कोई असुविधा न हो। महिला चरखा समिति के नवल किशोर जी ने, जो सन् 1972 में जे.पी. की सेवा करने आये जब उन्हें दिल का दौरा पड़ा, लेखक को बताया कि वे प्रतिदिन दादा (जे.पी.) को मालिश कर उनको स्पंज (भीगे तौलिये से देह पोंछना) करते थे और दीदी (प्रभावती जी) बाद में सूखे तौलिये से देह पोंछती थीं। एक दिन जे.पी. ने उनसे कहा, "प्रभावती थक जाती हैं देह पोंछने में। इसलिए आप ही देह पोंछ दीजियेगा।" स्पंज के बाद नवल किशोर जी जब सूखे तौलिये से उनकी देह पोंछ रहे थे तो प्रभावती जी वहां पहुंच गयीं और पूछा, ''आप क्यों पोंछ रहे हैं? मुझे क्यों नहीं बुलाया?" नवल जी ने जवाब दिया, ''दादा ने ही कहा था कि आप थक जाती हैं।" ''ठीक है।" और यह बोलते हुए वे कमरे से बाहर चली गयीं। उस समय जे.पी. सिर्फ लंगोट पहने थे। करीब दस मिनट बाद वे फिर आयीं और जे.पी. को कपड़े निकालकर दिये।

अनुपम दांपत्य

उनका दांपत्य जीवन अनुपम था। सन् 1940 में देवली कैंप की घटना के बाद जारी अपने बयान में गांधी जी ने उन्हें 'आदर्श दंपत्ति' कहा था। परिवार में बिल्कुल घरेलू महिला की तरह सबसे मिलती थीं और किसी की शादी में एकदम परंपरागत तरीके से रस्म-रिवाज, गीत-नाद आदि करवाती थीं, और उसमें हिस्सा लेती थीं। महिला चरखा समिति की प्रभा चौधरी ने उनके स्नेह सिक्त व्यवहार की चर्चा करते हुए बताया कि दीदी संत प्रकृति के बावजूद बिलकुल घरेलू थीं। अपने साथ सबका पूरा ख्याल रखती थीं। हम लोग उनके साथ बाहर जाते तो वे सोने तभी जातीं जब हम लोगों को जगह मिल जाती।

ऐसा भी नहीं है कि वे अपने ब्रह्मचर्य को प्रचारित करती थीं। उनकी मां फुलझरी को भी उनके इस संकल्प की जानकारी नहीं थी। वे चिंतित रहती थीं कि प्रभावती को कोई संतान क्यों नहीं हो रही है और बराबर वैद्य से दिखाने के लिए दबाव डालती थीं। इस पर प्रभावती जी उन्हें यह कहकर बहला देती थीं कि बच्चे स्वाधीनता मिलने के बाद होंगे।

प्रभावती जी का व्रत जीवन-पर्यंत निष्कलंक रहा। इसे जे.पी. ने भी माना है, लेकिन

अपने बारे में उन्होंने ऐसा दावा नहीं किया। पवनार आश्रम में जब बहनों ने उनसे ब्रह्मचर्य के अनुभव के बारे में पूछा तो उन्होंने इस बारे में प्रभावती से बात करने को कहा। सन् 1972 में डा. हरिदेव शर्मा के साथ बातचीत में उन्होंने स्वीकारा, "ब्रह्मचर्य की शपथ मैंने नहीं ली थी। वह तो हमको श्रेय मिलता है बेकार ही। वैसे, ब्रह्मचर्य निभाया है, ऐसा भी नहीं है।... अब यह था कि प्रभावती ने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था। हमें तो इसको "ऑनर" करना था।...तो एक तरह से कम्पलसरी ब्रह्मचर्य हुआ। कोई बहुत अधिकांश तो निभाया, लेकिन पूर्ण रूप से नहीं निभा हमारी तरफ से। इन्होंने तो निभाया।"[12] प्रभावती जी की मृत्यु के बाद भी कुछ पत्रिकाओं के साथ भेंटवार्ता में ब्रह्मचर्य से संबंधित प्रश्न का जवाब उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि कह नहीं सकता ब्रह्मचर्य का पालन किया या नहीं।

जो भी हो पत्नी के प्रति वफादारी में कभी कोई कमी नहीं आयी। उनके अमेरिकन सहपाठी उजर के अनुसार जयप्रकाश की सूरत-शक्ल आकर्षक थी और विश्वविद्यालय में लड़कियां उनके चारों ओर घिरी रहती थीं। लेकिन इससे वे कभी विचलित नहीं हुए। बल्कि जब भी कोई इस प्रसंग की बात निकलती तो हमेशा अपनी पत्नी को याद करते।

उद्धरण

1. जयप्रकाश, पृ. 316
2. वही, पृ. 317
3. वही, पृ. 322
4. गांधी, मो.क. : सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद), 1991, पृ. 179
5. वही, पृ. 176
6. स्कार्फ, एलेन एंड वेंडी : जे.पी. : हिज बायोग्राफी (ओरिएंट लौंगमैन, नयी दिल्ली), 1975, पृ. 48
7. जयप्रकाश, पृ. 322
8. वही, पृ. 322-3
9. वही, पृ. 323
10. वही, पृ. 323-4
11. वही, पृ. 324
12. वही, पृ. 324

स्वाधीनता संग्राम, कांग्रेस मजदूर सेल का प्रभार और पहली जेल यात्रा

अमेरिका से लौटकर पटना पहुंचने के एक दिन बाद ही 23 नवंबर, 1929 को जयप्रकाश अपने पैतृक गांव सिताब दियारा पहुंचे। घर पहुंचकर जे.पी. सीधा रसोईघर गये, जहां मां खाना बना रही थीं। सात वर्षों से भी अधिक अंतराल के बाद अपने पुत्र को देखकर मां की खुशी का ठिकाना न रहा। घर की संपत्ति लगभग समाप्त हो चुकी थी, फिर भी उनकी स्वदेश वापसी के उपलक्ष में एक बड़ा जलसा आयोजित किया गया।

कट्टर कम्युनिस्ट बनकर लौटे जे.पी. की आस्था ईश्वर में नहीं थी। इसके बावजूद परिवार वालों की इच्छा को देखते हुए उन्होंने प्रभावती के साथ गंगा मैया से लेकर घर के कुलदेवता तक की पूजा विधिवत रूप से की। इससे उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण का भी पता चलता है। जहां तक संभव हो किसी को दुख न देना उनका मौलिक स्वभाव था और अपने सिद्धांत से समझौता किये बिना दूसरों की इच्छा का सम्मान करने का वे प्रयास करते थे। उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है कि वे कभी कट्टर या दुराग्रही किस्म के व्यक्ति नहीं रहे और अपनी बातों पर कायम रहते हुए दूसरों की बातों को समझना और जहां तक संभव हो उनके साथ एडजस्ट करना उनका स्वभाव रहा।

गांव से ही वे मुंगेर में आयोजित बिहार कांग्रेस के एक सम्मेलन में गये जिसमें ब्रजकिशोर प्रसाद और राजेन्द्र प्रसाद के साथ साथ सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे ख्याति प्राप्त नेता भी शामिल हुए। सन् 1928 में गुजरात में बारडोली सत्याग्रह का सफल नेतृत्व करने के बाद वल्लभभाई पटेल को महात्मा गांधी ने बारडोली का सरदार कहकर सम्मानित किया था और पूरे देश में वे आकर्षण का केंद्र बन गये थे। ऐसे देशभक्त नेताओं के विचारोत्तेजक भाषणों ने उनकी भावना को पूरी तरह जागृत कर दिया और वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने को उद्यत हो उठे।

मार्क्सवादी विचारों से सराबोर होकर स्वदेश लौटे जे.पी. कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल नहीं हुए, क्योंकि कम्युनिस्ट स्वाधीनता संग्राम में शामिल नहीं थे। इस बारे में उन्होंने स्वयं 5 जून, 1974 को पटना के गांधी मैदान में एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए कहा था, "वहां (अमेरिका) से जब लौटा था, प्योर कम्युनिस्ट बनकर लौटा था। लेकिन मैं कांग्रेस में दाखिल हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी में क्यों नहीं दाखिल हुआ? ये कहते थे—महात्मा

गांधी देश के भांडवलशाहों का, भांडवलदारों का, पूंजीपतियों का दलाल है। चौपाटी में बंबई के, भाषण हुआ जोगलेकर का, कि गांधी उनका दलाल है—पूंजीपतियों का, यह कांग्रेस पूंजीपतियों की संस्था है। मैंने जो लेनिन से सीखा था वह यह सीखा था कि जो गुलाम देश हैं, वहां के जो कम्युनिस्ट हैं, उनको हरगिज वहां की आजादी की लड़ाई से अपने को अलग नहीं रखना चाहिये—यद्यपि उस लड़ाई का नेतृत्व, जिसको मार्क्सिस्ट भाषा में "बुर्जुआ क्लास" कहते हैं, उस क्लास के हाथ में हो।...उस समय मेरठ कंसपिरेसी (केस) चल रही थी। बड़े लोग जेल में थे, लेकिन खोज-खोजकर मैंने उनको ढूंढ़ा। घाटे को ढूंढ़ा, मिरजकर को ढूंढ़ा, पी.सी. जोशी को ढूंढ़ा, बहस की इन लोगों से। लंदन में क्लेमेंस दत्त, पामदत्त के भाई—पामदत्त बेल्जियम में थे तो उनसे मुलाकात हुई नहीं—"लेबर मंथली" के संपादक और विद्वान, वहां की कम्युनिस्ट पार्टी के ब्रेन थे। क्लेमेंस से कितनी बातें कीं—गलत रास्ता बता रहे हो आप, स्टालिन के गुलाम हो, रूस के गुलाम हो, लेनिन को भूल गये। इसलिये इनके साथ नहीं गया। आजादी की लड़ाई में गद्दारी की इन्होंने। डांगे साहब ने सी.आई.डी. का काम किया। क्यों? रूस "एलाई" था अमेरिका, इंगलैंड का।"[1]

जवाहरलाल नेहरू से परिचय

गांधी जी के तरीकों से मतभेद होते हुए भी इतना स्पष्ट है कि उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव था जे.पी. के ऊपर। संभव है इसमें प्रभावती की भी भूमिका हो। जब वे वर्धा गये तो उनका परिचय महात्मा गांधी के अतिरिक्त अन्य कई महत्वपूर्ण नेताओं से हुआ। आश्रम के दोमंजिले भवन की निचली मंजिल पर उन्हें एक कमरा पत्नी के साथ रहने को दिया गया। जे.पी. अपने कमरे के सामने खड़े थे और जवाहरलाल नेहरू ने उनके पास जाकर अपना परिचय दिया, "मैं जवाहरलाल हूं। क्या आप प्रभावती के पति हैं?" जे.पी. ने जवाब दिया, "हां, मैं जयप्रकाश हूं।" और दोनों ने हाथ मिलाया। आश्रम में रहने के कारण प्रभावती कांग्रेस के नेताओं के बीच अधिक लोकप्रिय थीं। जवाहरलाल ने जे.पी. से देश की वर्तमान परिस्थिति पर विस्तार से बातचीत की। उस वर्ष जवाहरलाल कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे। सन् 1929 में अधिकतर प्रांत गांधी जी को अध्यक्ष बनाने के पक्ष में थे, किंतु उन्होंने यह कहकर इसे स्वीकार नहीं किया कि अब देश की बागडोर नौजवानों के हाथ में होनी चाहिये। कांग्रेस अध्यक्ष का पदभार जवाहरलाल ने सीधा अपने पिता मोतीलाल नेहरू से ग्रहण किया था। कांग्रेस अध्यक्ष के सामने जे.पी. थोड़ा संकोच का अनुभव कर रहे थे, लेकिन दोनों ने एक दूसरे को पहली मुलाकात में पसंद किया।

लाहौर कांग्रेस में शामिल होने के लिए जयप्रकाश, प्रभावती एवं जवाहरलाल वर्धा से गांधी जी के साथ रवाना हुए। पहले वे लोग ट्रेन से दिल्ली पहुंचे। वहां चांदीवाला परिवार के घर सभी ठहरे। चांदीवाला दो भाई थे—श्री कृष्ण चांदीवाला और बृज कृष्ण

चांदीवाला। श्री कृष्ण चांदीवाला बड़े थे और ख्याति प्राप्त पत्रकार थे। उनका लोगों के बीच काफी सम्मान था। जे.पी. की उनसे धीरे धीरे गहरी दोस्ती हो गयी और जे.पी. उन्हें भाई कहने लगे। आगे भी कई वर्षों तक जे.पी. उन्हीं के यहां ठहरते थे। दिल्ली से वे लोग लाहौर के लिए निकले। रास्ते में भी जे.पी. की जवाहरलाल से विस्तृत बातचीत हुई। जवाहरलाल ने उन्हें डेढ़ वर्ष के अपने कारावास के अनुभवों के बारे में बताया जो उन्होंने अपने पिता मोतीलाल नेहरू के साथ बिताये थे। जेल की सजा उन्हें इलाहाबाद के व्यापारियों द्वारा विदेशी कपड़े के बायकाट का आयोजन कराने के कारण हुई थी। जे.पी. ने उनसे सन् 1926-27 की उनकी यूरोप यात्रा एवं क्रेमलिन के बारे में उनके विचार के संबंध में पूछा। पंडित नेहरू ने समाजवाद की सराहना की, लेकिन उनका रूझान फेबियन समाजवाद की ओर था। दोनों ने महात्मा गांधी की आर्थिक नीति की आलोचना की। बातचीत के क्रम में पंडित नेहरू ने जयप्रकाश से उनकी भावी योजना के बारे में पूछा। उस समय जयप्रकाश के घर की माली हालत अच्छी नहीं थी और 1926 की बाढ़ में उनके गांव का मकान भी टूट गया था। वे एक नौकरी की तलाश में थे। उनकी इच्छा थी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का एक विभाग खोलने की। विश्वविद्यालय के कुलपति महामना मदन मोहन मालवीय इसके लिए तैयार भी थे। अपनी इस योजना के संबंध में उन्होंने पंडित नेहरू को बताया। नेहरू ने उन्हें सलाह दी कि वे वाराणसी न जाकर इलाहाबाद जायें और कांग्रेस के मजदूर-शोध-विभाग की जिम्मेदारी संभालें। जे.पी. ने इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया।

लाहौर कांग्रेस के ऐतिहासिक सत्र में पूर्ण स्वराज्य के ध्येय की घोषणा की गयी। 31 दिसंबर, 1929 की मध्यरात्रि को रावी के तट पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से स्वतंत्रता का झंडा फहराया और पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की शपथ ली गयी। 26 जनवरी, 1930 को पूरे देश में स्वाधीनता दिवस मनाया गया। घोषणा की गयी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही देश की वैध सरकार है और कांग्रेस अध्यक्ष देश के राष्ट्रपति। आगे के वर्षों में भी हर साल 26 जनवरी को स्वाधीनता दिवस मनाया जाने लगा।

कांग्रेस के मजदूर सेल का प्रभार

सन् 1930 के आरंभ में जयप्रकाश प्रभावती के साथ कांग्रेस के मजदूर सेल का कामकाज संभालने इलाहाबाद आ गये। शुरू में उन्होंने किराये का एक छोटा सा मकान लिया। परंतु बाद में जवाहरलाल जी ने उन दोनों को अपने घर पर साथ रहने को ही बुला लिया। जे.पी. और नेहरू के बीच वैचारिक और भावनात्मक साम्य तो था ही। प्रेम का यह बंधन साथ रहने से और भी गहरा हो गया। जे.पी. अंत तक पत्रों में जवाहरलाल जी को "पूज्य

भाई" ही लिखते रहे। जवाहरलाल की पत्नी कमला नेहरू और प्रभावती के बीच भी गहरी आत्मीयता और उत्कट स्नेह का संबंध हो गया। कमला जी ने जे.पी. और प्रभावती जी के कमरे को स्वयं सजाया था। कमला जी और प्रभावती जी का संबंध अंत तक घनिष्ठ बना रहा। प्रभावती को लिखे अपने पत्रों में कमला नेहरू बहुत ही व्यक्तिगत बातें लिखती थीं।

इलाहाबाद में जयप्रकाश ने एक छोटे से कार्यालय में अपना काम शुरू किया। मजदूर आंदोलन के साथ कांग्रेस का संबंध बनाये रखने के उद्देश्य से जवाहरलाल ने यह विभाग शुरू किया था। जयप्रकाश ने ट्रेड यूनियन और कांग्रेस की एकता के लिये काम किया। साथ ही राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन संगठनों से कांग्रेस का संबंध जोड़ने की पहल की। इसके लिये उन्होंने ब्रिटिश लेबर पार्टी और ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस से संपर्क स्थापित किया और उसके साहित्य का गौर से अध्ययन किया। उन्होंने औद्योगिक श्रमिकों की समस्या की भी जांच की और इसे हल करने में कांग्रेस की भूमिका पर विचार किया। इसके अलावा उन्होंने सन् 1930 के सत्याग्रह-आंदोलन का इतिहास भी लिखा, जो दुर्भाग्यवश प्रकाशित नहीं हो पाया।[2]

मां का निधन

इलाहाबाद आने के कुछ ही दिनों बाद उनकी मां सख्त रूप से बीमार पड़ीं। प्रभावती को सिताब दियारा जाना पड़ा। वहां से फूलरानी देवी को इलाज के लिये पटना लाया गया। प्रभावती ने जयप्रकाश को तुरंत आने को लिखा। 5 दिन बाद माता का निधन हो गया और शोकाकुल जयप्रकाश उनकी अंत्येष्टि में ही पहुंच पाये। उन्हें जबर्दस्त आघात लगा। गांधी जी ने जे.पी. को सांत्वना देते हुए लिखा कि सच्ची माता मातृभूमि है और मातृप्रेम का परिवर्तन करके उसे अखंडित बनाने के लिये मातृभूमि को अपना समर्पण किया जाना चाहिये। कुछ ही दिनों बाद उनकी सौतेली दीदी भी गुजर गयीं और इसी बीच, उनके पिता हरसू दयाल जी को पक्षाघात हो गया जिस कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। परिवार के सामने आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। इस स्थिति से उबरने के लिए जे.पी. को नौकरी की आवश्यकता हुई। गांधी जी ने प्रसिद्ध उद्योगपति घनश्याम दास बिड़ला से जयप्रकाश को कोई नौकरी देने की सिफारिश करते हुए पत्र लिखा। गांधी जी का बिड़ला और साराभाई परिवारों से गुरु-शिष्य का संबंध था। बिड़ला गांधी जी से बेहद प्रभावित थे और एक पत्र में उन्होंने गांधी जी को लिखा भी कि उनके (गांधी के) अतिमानव व्यक्तित्व से वे चकाचौंध हैं।[3] बिड़ला ने तुरंत जे.पी. को अपने निजी सहायक के रूप में नियुक्त किया। सन् 1931 में छह महीने तक दिल्ली में उन्होंने यह नौकरी की।

इस बीच देश के राजनीतिक मानचित्र पर कई दूरगामी प्रभाव वाली घटनाएं घट चुकी थीं। सन् 1927 में साइमन कमीशन भारत आया था लेकिन उसमें किसी भारतीय

को शामिल नहीं किया गया था। इसलिए पूरे देश में उसका बहिष्कार किया गया। इसी कमीशन की सिफारिशों के आधार पर अंग्रेजी हुकूमत ने भारत को फेडरल राज्य शासन देने का लक्ष्य स्वीकार करते हुए लंदन में सभी दलों का गोलमेज सम्मेलन आयोजित करने की घोषणा की। गांधी जी अंग्रेजों की चाल अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने सरकार के सम्मुख ग्यारह शर्तें रखीं जिन्हें स्वीकार करना उसके लिए संभव नहीं था। इन्हीं में एक थी नमक-कर रद्द करने की शर्त। 2 मार्च, 1931 को गांधी जी ने साबरमती से लॉर्ड इरविन को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने ब्रिटिश शासन को एक अभिशाप बताया। उन्होंने लिखा कि आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रूप से इस शासन ने हमें निर्धन बनाया है और इसे स्वीकार करना मनुष्य और ईश्वर के खिलाफ अपराध होगा। उन्होंने पत्र में विस्तार से स्पष्ट किया कि किस तरह हमारी आमदनी सात पैसे (दो पेंस से कम) प्रतिदिन है और किस तरह हम भारी कर चुकाते हैं।

12 मार्च, 1931 को उन्होंने अपना प्रसिद्ध दांडी मार्च शुरू किया। साबरमती से 240 मील पैदल चलकर 6 अप्रैल को वे दांडी समुद्र तट पर पहुंचे। इसमें कुल 79 लोग शामिल हुए जिनमें आचार्य विनोबा भावे और कमलादेवी चट्टोपाध्याय भी थीं। इन दोनों से आगे चलकर जे.पी. की काफी आत्मीयता हो गयी। दांडी में इन लोगों ने समुद्र के पानी से नमक बनाकर नमक कानून का उल्लंघन किया।

जयप्रकाश को बहुत अफसोस हुआ कि पारिवारिक कठिनाइयों के कारण वे 1930-31 के आंदोलन में हाथ नहीं बंटा पाये। गांधी जी ने पत्र के द्वारा उनका मार्गदर्शन किया, "जब कमाने का बोझ हल्का हो जाये, तब लड़ाई में फिर आ सकते हो।...जो लड़ाई में पड़ते हैं उनको कौटुम्बिक मोह छोड़ना पड़ता है।...वैसे जयप्रकाश फकीरी लेने को तैयार है, तो लड़ाई में रह सकेगा। सिपाही का यही धर्म है।" जे.पी. तो स्वयं आंदोलन में हिस्सा लेने को बेचैन थे। इसलिए छह महीने बाद जब जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें बुलाया तो बिड़ला की नौकरी छोड़कर तुरंत इलाहाबाद पहुंच गये।

इस वक्त दूसरे गोलमेज सम्मेलन के विफल हो जाने से राजनीतिक स्थिति फिर गंभीर हो गयी थी। नये वायसराय का रुख कड़ा था। स्थिति की समीक्षा करने के लिये कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक जनवरी, 1932 में बंबई में बुलायी गयी। उसमें भाग लेने के लिये जवाहरलाल और जयप्रकाश एक साथ ट्रेन से बंबई के लिये चले। जवाहरलाल ने जे.पी. को अलग डिब्बे में बैठाया और सारे कागजात भी उन्हें ही दे दिये। नेहरू जी को ट्रेन में गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन जे.पी. बच गये और वे सभी कागज-पत्रों के साथ बंबई पहुंचे।

महात्मा गांधी सहित सभी शीर्षस्थ नेताओं को बंदी बना लिया गया। नये वायसराय लॉर्ड विलिंग्डन ने दमन का चक्र शुरू किया। कांग्रेस को गैर कानूनी संगठन घोषित कर दिया गया। उस समय श्रीमती सरोजिनी नायडू कांग्रेस की कार्यकारिणी अध्यक्ष बनायी

गयीं और बंबई उनका मुख्यालय था। जे.पी. बराबर उनसे आवश्यक कागजात के साथ मिलते और राय-मशविरा करते। श्रीमती नायडू ने जे.पी. और लालजी मेहरोत्रा को कांग्रेस के प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। श्री मेहरोत्रा बाद में कराची के मेयर चुने गये। श्री लाल नवरोजी और श्री अच्युत पटवर्धन आदि का भी पूरा सहयोग उन्हें मिला। बड़े नेताओं की अनुपस्थिति में जे.पी. ने मात्र तीस वर्ष की उम्र में आंदोलन को चलाते रहने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले ली। अज्ञातवास में रहकर उन्होंने तितर-बितर हो गये कार्यकर्ताओं को संगठित कर जुलूस, हड़ताल, पिकेटिंग, सत्याग्रह आदि का कार्यक्रम चलाया। वे सारे देश में घूम घूम कर लोगों को संगठित करते रहे। चूंकि अभी तक उन्हें अधिक प्रसिद्धि नहीं मिली थी, इसलिये पुलिस की नजरों से बचते रहे। इसी समय नेतृत्व प्रदान करने की उनकी अद्भुत क्षमता भी सामने आयी।

पहली जेल यात्रा

सारा काम गुप्त रूप से होता रहा और सरकार हैरान थी कि यह सब कैसे हो रहा है। यह सब इतने सुनियोजित ढंग से हुआ कि दिल्ली के चांदनी चौक में जब कांग्रेस का खुला अधिवेशन होने लगा तब जाकर सरकार को अधिवेशन का पता चला। इसमें शामिल होने वाले निहत्थे प्रतिनिधियों पर बेरहमी से लाठियां चलायी गयीं और व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियां भी हुईं। इसमें भी डा. राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और जयप्रकाश पकड़े नहीं जा सके। वे भागकर बनारस गए जहां जुलाई में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक शिव प्रसाद गुप्त के घर पर हुई। इस बैठक में डा. राजेन्द्र प्रसाद, मदन मोहन मालवीय, राजगोपालाचारी और डा. सैफुद्दीन किचलू जैसे नेताओं ने हिस्सा लिया। वहां भी छापा पड़ा जिसमें कुछ लोग गिरफ्तार हुए। गिरफ्तारी के बाद उन्हें निर्मम यातना दी गयी। जे.पी. यहां भी बच निकले। इसी बीच इंग्लैंड की "इंडिया लीग" की ओर से एक शिष्टमंडल स्थिति का अवलोकन करने भारत पहुंचा। जे.पी. ने उसे जगह जगह ले जाकर अंग्रेजी सरकार के अत्याचार और सितम के दृश्य दिखलाये। वे उन्हें मद्रास भी ले गये। सरकार उन्हें गिरफ्तार करने के लिये परेशान थी। आखिर सन् 1932 के सितंबर महीने में मद्रास में जे.पी. गिरफ्तार किये गये। बंबई के अंग्रेजी अखबार "फ्री प्रेस जर्नल" ने समाचार प्रकाशित किया, "कांग्रेस ब्रेन अरेस्टेड"। जे.पी. की गिरफ्तारी को राजा जी ने मद्रास उच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी कि उनकी गिरफ्तारी का आदेश बंबई में जिस अध्यादेश के अंतर्गत निकला था वह मद्रास में लागू नहीं था। किंतु उच्च न्यायालय ने उनकी गिरफ्तारी को वैध ठहराया।

यह जे.पी. की पहली जेल यात्रा थी। उन्हें हथकड़ी लगाकर मद्रास जेल ले जाया गया था। मद्रास से उन्हें बंबई की आर्थर रोड जेल ले जाया गया और वहां से नासिक

रोड की सेंट्रल जेल में भेजा गया। जेल में नीचे फर्श पर सोना होता था, पाखाना-पेशाब के लिये कमरे से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। कमरे में ही एक मिट्टी का बर्तन रखा होता था इसके लिये। खाना भी अति साधारण होता था जो ठीक से पकाया भी नहीं जाता था। इसी समय उन्हें पेट की बीमारी शुरू हुई। ब्रजकिशोर प्रसाद और जे.पी. के छोटे भाई राजेश्वर भी गिरफ्तार हो गये।

प्रभावती की गिरफ्तारी

उधर प्रभावती जी को फरवरी में ही इलाहाबाद में महिलाओं के एक प्रदर्शन में गिरफ्तार कर लखनऊ भेज दिया गया था। उन्हें दो साल की सख्त कैद की सजा हुई थी। उन्हें जेल में कई बार बेहोशी के दौरे पड़े। जे.पी. की गिरफ्तारी प्रभावती के बाद हुई थी, किंतु जे.पी. पत्नी से जेल में मिलने सिर्फ एक बार जा सके क्योंकि उन्हें गुप्त रूप से काम करना होता था। इस तरह पति-पत्नी दोनों देश सेवा में जुट गये। जयप्रकाश के व्यक्तित्व का क्रांतिकारी पक्ष पूरी तरह सामने आ चुका था। उन्हें जेल जाने में गौरव का अनुभव हुआ कि देश की सेवा में उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान, पृ. 12
2. सिन्हा, अनिल : जयप्रकाश : संक्षिप्त जीवन-वृत्त (ज्योत्स्ना) पृ. 43
3. बख्शी, एस.आर : जयप्रकाश नारायण : हिज सोशलिस्टिक आइडियोलॉजी (अनमोल प्रकाशन, नयी दिल्ली), 1992, पृ. 17

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन

समाजवादी विचारधारा में विश्वास रखने वाले कई चिंतनशील लोग राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा ले रहे थे। सन् 1931 में ही बिहार में एक समाजवादी पार्टी का गठन भी हो चुका था जिसमें रामवृक्ष बेनीपुरी, गंगा शरण सिंह, फूलन प्रसाद वर्मा, श्यामनंदन सिंह, अब्दुल बारी एवं अबुल हयात चांद जैसे लोगों की सक्रिय भूमिका थी। उसी समय पंजाब तथा कुछ अन्य प्रांतों में भी सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादियों का कोई संगठन नहीं था।

अमेरिका से लौटने के बाद जे.पी. मार्क्सवाद का इस्तेमाल भारतीय परिप्रेक्ष्य में करना चाहते थे, लेकिन कम्युनिस्टों के स्वतंत्रता संग्राम में शामिल नहीं होने के कारण वे कम्युनिस्ट पार्टी से अलग रहे। सन् 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद स्टालिन के नेतृत्व में रूस की विदेश नीति में व्यापक बदलाव आया। कॉमिनटर्न की नीति रूस की विदेश नीति के अनुरूप होती थी। स्टालिन ब्रिटेन का विरोध नहीं करना चाहते थे क्योंकि रूस चारों ओर से पूंजीवादी व्यवस्था वाले देशों से घिरा था। इसलिए स्टालिन अपने देश में साम्यवादी शक्तियों को मजबूत बनाने में लगे थे और चाहते थे कि अन्य देशों की कम्युनिस्ट पार्टियां भी उनके नियंत्रण में हों। इसके अतिरिक्त कॉमिनटर्न में ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी भारत का प्रतिनिधित्व करती थी। इन्हीं कारणों से कॉमिनटर्न ने ब्रिटेन के विरुद्ध स्वाधीनता की लड़ाई का समर्थन नहीं किया और इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी आंदोलन में शामिल नहीं हुई। जे.पी. महसूस कर रहे थे कि एक ऐसे मंच का गठन होना चाहिए जिसमें ऐसे लोग आ सकें जो मार्क्सवादी विचारधारा के होते हुए भी राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान कर सकें।

भारत में कम्युनिस्टों की छिटपुट गतिविधियां 1920 से ही शुरू हो चुकी थीं किंतु भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का विधिवत गठन 1925 में कानपुर में एक सम्मेलन में हुआ। पार्टी के चार महत्वपूर्ण नेताओं (श्रीपाद अमृत डांगे, शौकत उस्मानी, मुजफ्फर अहमद और दासगुप्ता) को कानुपर कंसपिरेसी केस में चार साल की सजा हुई थी। इसके बाद 1929 में मेरठ कंसपिरेसी केस शुरू हुआ जिसमें कम्युनिस्ट पार्टी के उन चार नेताओं सहित 32 व्यक्तियों पर देशद्रोह का मुकदमा चला। यह मुकदमा 1933 तक चला और पूरे विश्व में इसकी चर्चा हुई। अंत में उन लोगों को काला पानी की सजा हुई। उन्हें बचाने के लिए राष्ट्रीय नेताओं ने "अपील कमेटी" गठित की जिसके अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू बने। इसमें

जवाहरलाल और जयप्रकाश भी सक्रिय थे। इस अपील और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण उन अभियुक्तों की सजा बहुत कम कर दी गयी और उन्हें अंडमान नहीं जाना पड़ा। कानपुर कंसपिरेसी और मेरठ कंसपिरेसी के अतिरिक्त कम्युनिस्टों का राष्ट्रीय आंदोलन से कभी संबंध नहीं बना। यदि जे.पी. के अमेरिका से वापस आने के समय कम्युनिस्टों ने स्वाधीनता की लड़ाई में हिस्सा लिया होता तो शायद वे कम्युनिस्ट पार्टी में ही शमिल होते।

सन् 1928 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की छठी कांग्रेस में सभी राष्ट्रवादी और लोकतांत्रिक समाजवादियों को "सोशल फासिस्ट" कहा गया। उस समय कम्युनिस्ट होते हुए भी जे.पी. ने इसे मानने से इंकार कर दिया। उन्होंने महसूस किया कि कॉमिनटर्न पूरी दुनिया में मजदूर और समाजवादी आंदोलनों में दरारें पैदा कर रहा था और इस कारण सभी गुलाम देशों में यह राष्ट्रीय आंदोलनों से कटता जा रहा था। इसके अतिरिक्त सोवियत संघ में बड़ी संख्या में स्टालिन विरोधियों की गढ़े हुए आरोपों पर की गयी हत्या से भी उनका मन कम्युनिज्म के खिलाफ विद्रोह कर उठा। परंतु यह मोहभंग स्टालिन की नीतियों और सोवियत संघ की तत्कालीन व्यवस्था से था, मार्क्सवाद से नहीं। मार्क्सवादी सिद्धांतों में अभी भी उनकी आस्था थी।

इस परिप्रेक्ष्य में उन्हें और इस विचार से साम्य रखने वालों को एक समाजवादी मंच की आवश्यकता महसूस हुई। उनका मानना था कि कांग्रेस की नीतियों और गांधीवादी फार्मूलों से देश के दबे-कुचले लोगों की तकदीर नहीं बदली जा सकती। समाजवाद का प्रचार जे.पी. गुप्त रूप से घूम घूम कर पूरे देश में करते रहे। इसी क्रम में वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय पहुंचे जहां कुछ छात्रों ने एक समाजवादी गुट का गठन किया था। इनमें विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, देवकांत बरुआ, महाबीर प्रसाद सिन्हा तथा देवेन्द्र प्रसाद सिंह शामिल थे। श्री कोइराला बाद में नेपाल के प्रधानमंत्री बने और श्री बरुआ केंद्रीय मंत्री, बिहार के राज्यपाल और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बने। श्री महाबीर प्रसाद सिन्हा उत्तर प्रदेश के थे, लेकिन बाद में वे बिहार सोशलिस्ट पार्टी के सचिव बनाये गये। देवेन्द्र बाबू आगे चलकर सांसद बने। यहीं से जे.पी. और कोइराला की दोस्ती की शुरुआत हुई और हमेशा के लिए दोनों परम मित्र हो गये।

नासिक जेल में पार्टी के गठन पर विचार-विमर्श

जब गिरफ्तार होकर जे.पी. नासिक जेल गये तो संयोगवश कई प्रतिभावान और समर्पित नेता भी बंदी बनाकर वहीं रखे गये। इनमें राम मनोहर लोहिया, मीनू मसानी, अच्युत पटवर्धन, एन.जी. गोरे, अशोक मेहता एवं युसुफ मेहरअली जैसे समाजवादियों के साथ साथ मोरारजी देसाई और जे.सी. कुमारप्पा जैसे कट्टर गांधीवादी भी थे। इनके अलावा बंबई के तेजस्वी अधिवक्ता भूलाभाई देसाई भी यहां बंद थे। उन्हें ए-क्लास बंदी बनाया

गया था। जे.पी., मेहरअली आदि बी-क्लास बंदी थे। कुछ सी-क्लास अपराधी भी इस जेल में रखे गये थे। समाजवादी विचारधारा से इत्तफाक रखने वाले इन सभी आंदोलनकारियों में उत्कट स्नेह का संबंध स्थापित हो गया। जे.पी. और मसानी के बीच की दोस्ती तो और भी नायाब रही। पूरी जिंदगी दोनों के संबंध में कभी दरार नहीं पड़ी। नासिक जेल में बिताये गये दिनों के बारे में जे.पी. ने एक बार मीनू मसानी से कहा था कि जेल में अब तक गुजारे सभी दिनों में नासिक के दिन मेरे लिए सबसे सुखद थे और मैं वहां बनी दोस्ती को बहुत मूल्यवान मानता हूं।[1]

नासिक जेल में इन लोगों के बीच एक समाजवादी पार्टी की स्थापना की बाबत गहन चर्चा होती थी। दो सवालों पर विशेष रूप से चर्चा होती थी कि आजादी की लड़ाई को किस तरह और मजबूत एवं धारदार बनाया जाये और दूसरा यह कि आजादी के बाद स्वराज्य का स्वरूप कैसा हो? उन लोगों का विचार था कि समाज के कमजोर तथा उपेक्षित तबकों की आकांक्षाओं को स्वतंत्रता संग्राम के उद्देश्यों से जोड़ा जाना चाहिए और तभी आंदोलन का जनाधार भी व्यापक होगा। वे सभी इस बात पर सहमत थे कि पूंजीवादी व्यवस्था अपने अंतर्विरोधों के कारण चरमरा कर गिर जायेगी, क्योंकि यह बार बार पड़ने वाली मंदी और उछाल को नियंत्रित नहीं कर पायेगी, अंतर्राष्ट्रीय युद्ध को नहीं रोक पायेगी और शोषित जनता मुट्ठी भर सुखी-संपन्न लोगों के खिलाफ हिंसात्मक विद्रोह कर देगी। उनका मानना था कि इतिहास वर्ग संघर्ष की कहानियों से भरा है।

जेल में ही उन लोगों ने गहन अध्ययन भी किया। जे.पी. ने अशोक मेहता को कई पुस्तकें पढ़ने को दीं। उन लोगों ने चैम्बरलेन की पुस्तक "रशियाज आयरन एज", आर्थर सॉल्टर की "रिकवरी", रूसी योजना तथा फेबियन समाजवाद पर बिएट्रिस और सिडनी बेब के लेखों का अध्ययन किया। किताबें और पत्रिकाएं प्राप्त करने में उन्हें बहुत कठिनाई होती थी और जेलर उन्हें सभी पुस्तकें पढ़ने नहीं देता था। युसुफ मेहरअली को "बाइबिल" इसलिए नहीं दी गयी क्योंकि वे मुसलमान थे। बाद में अनशन करने पर उन्हें "बाइबिल" एवं अन्य किताबें दी गयीं। मेहरअली का स्वास्थ्य कमजोर था, इसलिए उनके अनशन से अधिकारियों में घबराहट हो गयी और उन्हें पुस्तकें दे दी गयीं।

समाजवादी पार्टी के गठन के लिए आधारशिला नासिक जेल में ही तैयार हो चुकी थी। कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का भी पार्टी के गठन पर प्रभाव पड़ा। मई, 1933 में जब महात्मा गांधी ने पहली बार सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित किया तो सुभाष चन्द्र बोस और विट्ठलभाई पटेल ने यूरोप में वक्तव्य जारी कर महात्मा गांधी के नेतृत्व को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। जवाहरलाल नेहरू भी वामपंथी विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। अपनी रूस यात्रा के बाद से खुलेआम वे समाजवाद का समर्थन करने लगे थे। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उनके भाषण से ही यह बात स्पष्ट हो चुकी थी।

सन् 1933-34 में जेल से अपनी पुत्री को लिखे पत्रों में भी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति उनका लगाव झलकता है। जुलाई, 1933 से फरवरी, 1934 के बीच जब वे थोड़े समय के लिए जेल से बाहर रहे जब उन्होंने गांधी जी के सिद्धांतों से अपनी असहमति साफ तौर पर व्यक्त की। लेकिन नेहरू ने पूरी तरह से गांधी जी से अलग होना पसंद नहीं किया। उन्होंने समाजवादी पार्टी स्थापित करने के प्रस्ताव का भी समर्थन नहीं किया।

सन् 1933 के अंत में जे.पी. जेल से छूटे और जनवरी, 1934 में बिहार में विनाशकारी भूकंप आया। अन्य सभी कामों को छोड़कर जे.पी. राहत कार्यों में जुट गये। उधर प्रभावती भी अनाथ और घायल बच्चों की देखभाल में लग गयीं। उनके साथ कई अन्य महिलाओं ने भी ऐसे बच्चों की सेवा की। इसके बाद फिर जे.पी. समाजवादी पार्टी के गठन में लग गये। महाराष्ट्र में समाजवादी पार्टी के गठन में कमलादेवी चट्टोपाध्याय और पुरुषोत्तम त्रिकमदास सक्रिय रूप से लगे थे। त्रिकमदास सन् 1919 में गांधी जी के निजी सचिव थे और तब से ट्रेड यूनियनों में सक्रिय थे। सन् 1933 में जेल से छूटने के बाद अखिल भारातीय कांग्रेस कमेटी की पुणे में आयोजित बैठक में समाजवादी प्रक्रिया से सामाजिक न्याय और समानता के आदर्शों को प्राप्त करने की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। सम्मेलन में समान विचार वाले लोगों ने कमलादेवी और उनसे संपर्क किया तथा समाजवादी पार्टी के गठन का प्रारूप तैयार किया। इसमें तय हुआ कि पार्टी का नाम अनुशीलन होगा और इसकी विचारधारा "वैज्ञानिक समाजवाद"। वैज्ञानिक समाजवाद में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग संघर्ष एवं अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत को सम्मिलित किया गया। त्रिकमदास ने इस प्रस्ताव की 20 प्रतियां जे.पी. को भेजीं।

सोशलिस्ट पार्टी का गठन

अप्रैल, 1934 में उत्तर प्रदेश कांग्रेस के नेता संपूर्णानन्द ने भारत के लिए समाजवादी कार्यक्रम की एक रूपरेखा तैयार की। 17 मई, 1934 को पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में समाजवादियों का एक सम्मेलन आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में हुआ और उसी में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। पटना में यह सम्मेलन इसलिए आयोजित किया गया क्योंकि पहले से बिहार में एक सोशलिस्ट पार्टी थी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तो कांग्रेस के अंदर ही बनी थी परंतु इसके संस्थापक कांग्रेस नेतृत्व के खिलाफ थे। सम्मेलन में फासिज्म के खतरे के प्रति लोगों को आगाह किया गया और निश्चित हुआ कि कांग्रेस के सदस्य ही इस पार्टी के सदस्य होंगे बशर्ते कि वे किसी सांप्रदायिक संगठन या किसी वैसे संगठन के सदस्य न हों जिसकी नीति इस पार्टी की नीति के विपरीत हो। इसका उद्देश्य था पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना। यह काडर आधारित पार्टी थी

और सबों के लिए इसकी सदस्यता खुली नहीं थी।

पटना सम्मेलन में जयप्रकाश को संगठन मंत्री नियुक्त किया गया। संगठन मंत्री की हैसियत से पार्टी का प्रचार करने के लिए वे पूरा देश घूम गये और अलग-अलग प्रांतों में पार्टी की शाखाएं स्थापित कीं। अक्तूबर, 1934 में संपूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक बड़ा सम्मेलन हुआ जिसमें कांग्रेस सोशलिस्ट की पार्टी की विधिवत स्थापना हुई। आचार्य नरेन्द्र देव इसके अध्यक्ष बनाये गये और जयप्रकाश नारायण महासचिव। यह मुख्य रूप से युवकों की पार्टी थी। पार्टी की पहली कार्यकारिणी के सदस्यों की औसत उम्र 30 वर्ष थी। इस पार्टी में आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण के अतिरिक्त अच्युत पटवर्धन, डाक्टर राम मनोहर लोहिया, मीनू मसानी, युसुफ मेहरअली, अशोक मेहता, सेठ दामोदर स्वरूप, मोहन लाल गौतम, मुंशी अहमद दीन एवं शिवनाथ बनर्जी जैसे कुशाग्र बुद्धि के नेता शामिल हुए। पार्टी की नीतियों और कार्यक्रमों पर जे.पी. के व्यक्तित्व और विचारों की स्पष्ट छाप पड़ी। आचार्य नरेन्द्र देव को भी जे.पी. पर पूरा भरोसा था और हमेशा उनकी सलाह लेते थे। जब जे.पी. जेल में होते और कार्यकर्ता आचार्य जी के पास कोई समस्या लेकर आते तो उनका जवाब होता था, 'जयप्रकाश को जेल से छूटने दो। पार्टी तो वही चलायेगा।'

समाजवादी पक्ष की स्थापना को कांग्रेस के बहुत से नेताओं ने पसंद नहीं किया। पट्टाभि सीतारमय्या ने 21 सितंबर, 1934 को सरदार पटेल को लिखे एक पत्र में समाजवादी पार्टी के संस्थापकों को "स्कम" तक कह दिया।[2] कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने देश की कुछ ज्वलंत समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और इस कारण कांग्रेस के अंदर भी इन विषयों पर गहन विचार-विमर्श होने लगा। कृषि क्षेत्र में व्यापक सुधार, औद्योगिक मजदूरों की समस्याएं, रजवाड़ों का भविष्य, संघर्ष और जनता को गोलबंद करने के गैर-गांधीवादी तरीके जैसे विषय इनमें शामिल थे। (नरेन्द्र देव ने अगस्त, 1934 में किसानों और मजदूरों की आम हड़ताल का आयोजन किया था, जिसे गांधी जी ने "अत्यंत खतरनाक" माना था।)

समाजवादियों ने विभिन्न प्रांतों, विशेषकर बिहार और आंध्र प्रदेश में किसान सभा के अंदोलनों से निकट के संबंध बना लिये। सन् 1933-34 में आंध्र प्रदेश के तटीय जिलों में कई किसान मार्च आयोजित किये गये। सन् 1933 में एलोर जमींदारी रैयत सम्मेलन में जमींदारी प्रथा समाप्त करने की मांग की गयी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता एन. जी. रंगा ने निदुब्रोलु में किसान काडरों के प्रशिक्षण के लिए 'इंडियन पीजेंट इंस्टीट्यूट' शुरू किया। बिहार में समाजवादी किसान सभा में बहुत लोकप्रिय थे। किसान सभा का गठन सन् 1923 में ही हो चुका था, किंतु सविनय अवज्ञा के दरम्यान यह एकदम निष्क्रिय हो गयी थी। जमींदारों के वर्चस्व वाली यूनाइटेड पार्टी ने किसानों के मत प्राप्त करने के

लिए मामूली रियायतें दी थीं। लेकिन बड़े मुद्दों पर पार्टी तटस्थ थी। स्वामी सहजानंद सरस्वती ने मध्य और उत्तर बिहार में किसानों को गोलबंद किया और सन् 1935 तक किसान सभा की सदस्य संख्या 80 हजार हो गयी। आंरभ में सहजानंद जमींदारी उन्मूलन या सीधे वर्ग संघर्ष के विरुद्ध थे, परंतु कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने इसका समर्थन किया और इसके पक्ष में जोरदार प्रचार किया। इस कारण नवंबर, 1935 में बिहार प्रदेश किसान सभा की हाजीपुर में हुई बैठक में सहजानंद ने जमींदारी उन्मूलन और वर्ग संघर्ष को अपनी नीति और कार्यक्रमों में समाविष्ट कर लिया।

किसान सभा में सक्रियता

जयप्रकाश किसान सभा में बहुत सक्रिय थे और स्वामी सहजानंद से उनके आत्मीय सबंध थे। दोनों एक-दूसरे का सम्मान करते थे। मार्क्सवादी चिंतन के कारण जे.पी. किसान और मजदूर आंदोलनों को प्रधानता देते थे। भारत की परिस्थिति के अनुसार वे मार्क्सवादी विचारों में थोड़ा बहुत फेरबदल करते थे। माओ की तरह उनकी भी मान्यता थी कि भारत में क्रांति का सिपाही मजदूर नहीं किसान बनेगा। उस समय तक माओ का यह प्रतिपादन सामने नहीं आया था। जे.पी. ने महसूस किया कि किसी भी आंदोलन का जनाधार तभी मजबूत होगा जब बड़ी संख्या में लोग उसमें शरीक होंगे। इसके लिए किसानों की सहभागिता आवश्यक है क्योंकि मजदूरों की संख्या बहुत कम है और शहरों में सिमटे हुए हैं। इसलिए उन्होंने किसानों के लिए संघर्ष किया। मोकामा-टाल के किसान आंदोलन में उनकी अग्रणी भूमिका थी।

उन्होंने सहकारी और सामूहिक खेती की वकालत की तथा गांवों के उत्थान और विकेंद्रीकरण पर जोर दिया। उनका मानना था कि प्राकृतिक संसाधनों का व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं हो सकता है और सामाजिक विषमता का मूल कारण व्यक्तिगत स्वामित्व ही है। इसलिए प्राकृतिक संपदा पर पूरे समाज का आधिपत्य होना चाहिए। यही विचारधारा आगे चलकर उनका दर्शन बन गयी। सन् 1936 में उनकी चर्चित पुस्तक "व्हाय सोशलिज्म" (समाजवाद क्यों) प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने समाजवाद की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला। अब तक जयप्रकाश बहुत लोकप्रिय हो चुके थे और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का भी अच्छा प्रभाव हो गया था। सन् 1936 में लखनऊ और फैजपुर में अपने भाषणों में जवाहरलाल नेहरू ने भी समाजवाद की बहुत सराहना की। कांग्रेस के लखनऊ सत्र के बाद उन्होंने कांग्रेस की जो कार्यकारिणी बनायी उसमें तीन समाजवादियों (जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव और अच्युत पटवर्धन) को शामिल किया। अच्युत उस समय कांग्रेस कार्यकारिणी के सबसे कम उम्र के सदस्य थे। उस समय जे.पी. भी नेहरू जी से बेहद प्रभावित थे। मीनू मसानी ने अप्रैल, 1936 के लखनऊ कांग्रेस के बारे में एक घटना

का जिक्र किया है। जवाहरलाल नेहरू का अध्यक्षीय भाषण मार्क्सवादी विचारों से सराबोर था। इसके बाद राजेन्द्र प्रसाद ने नेहरू की कुछ बातों की आलोचना की और व्यंग्य भरे लहजे में कहा कि मैं तो एक सीधा-सादा किसान हूं जिसने न तो विदेशों की यात्राएं की हैं और न ही विदेशी पुस्तकों से विचार ग्रहण किये हैं। उनके भाषण के बाद श्रोताओं ने "महात्मा गांधी की जय" के नारे लगाये। जबाब में कुछ लोगों ने "जवाहरलाल नेहरू की जय" के नारे लगाये। जे.पी. राजेन्द्र बाबू के भाषण से बहुत विचलित हुए हालांकि वे राजेन्द्र बाबू के बहुत बड़े प्रशंसक थे। जैसे ही वे पंडाल से बाहर आये राजेन्द्र बाबू के एक प्रबल समर्थक मथुरा बाबू ने व्यंग्यपूर्ण अंदाज में जे.पी. से कहा, "कहिए जयप्रकाश जी, सुनी?" इससे जे.पी. बेतरह उत्तेजित हो गये और बोले, राजेन्द्र बाबू तो जवाहरलाल के जूते साफ करने की भी योग्यता नहीं रखते हैं। लेकिन बाद में जे.पी. इसके लिए बहुत दुखी हुए और आत्मग्लानि के कारण भोजन भी नहीं कर पाये। उन्होंने राजेन्द्र बाबू से जाकर माफी मांगी। राजेन्द्र बाबू ने इसे सहजता से लिया और उन्हें सब भूल जाने को कहा। किंतु उस रात राजेन्द्र बाबू खुद नहीं सो पाये। उन्हें लगा कि यदि एक छोटी सी टिप्पणी के लिए जयप्रकाश इतने व्यथित हैं तो उन्हें स्वयं भी जवाहरलाल के खिलाफ ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए था। अगले दिन सुबह चार बजे जब गांधी जी प्रार्थना कर रहे थे तो राजेन्द्र बाबू उनके पास पहुंचे। गांधी जी ने उनसे पूछा कि दमे की बीमारी के बावजूद इतनी सुबह वे क्यों आये तो राजेन्द्र बाबू ने उनसे पूरी बात बताकर उनका मार्गदर्शन चाहा। गांधी जी ने हंसी-विनोद में यह कहकर मामला खत्म कर दिया कि उनके (राजेन्द्र बाबू के) भाषण में कुछ भी गलत नहीं था।[5]

इसके साथ ही जे.पी. सभी समाजवादी शक्तियों की एकता के लिए भी प्रयासरत थे। शुरू में एम.एन.राय के अनुयायी समाजवादी पक्ष में सम्मिलित हो गए, किंतु सन् 1936 में एम.एन. राय के जेल में छूटने के बाद आपसी मतभेद बढ़ता गया और वे लोग सन् 1937 में फिर समाजवादी पार्टी से अलग हो गये।

कम्युनिस्ट–समाजवादी पार्टी में शामिल

कम्युनिस्टों ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन की तीखी आलोचना की थी। लेकिन जर्मनी में हिटलर और नाजीवाद के प्रादुर्भाव के बाद स्टालिन और कॉमिनटर्न को अपनी नीति बदलनी पड़ी। सन् 1935 में कॉमिनटर्न की 7वीं कांग्रेस में सभी साम्यवादी पार्टियों को निर्देश दिया गया कि वे राष्ट्रीय शक्तियों से जुड़कर संयुक्त मोर्चा (युनाइटेड फ्रंट) बनाएं और मिलकर काम करें। इस कारण भारत में भी कम्युनिस्टों के रुख में परिवर्तन आया। इस बीच भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी सन् 1934 में 23 जुलाई को प्रतिबंधित हो गयी थी। इसलिए भी कम्युनिस्टों को एक राजनीतिक मंच की जरूरत थी। जे.पी. उन्हें कांग्रेस

समाजवादी पार्टी में शामिल करने के पक्ष में थे। अन्य समाजवादी इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे थे। मीनू मसानी ने चेतावनी दी थी कि इन कम्युनिस्टों पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। सन् 1936 में मेरठ में कमलादेवी चट्टोपाध्याय के सभापतित्व में पार्टी का अधिवेशन हुआ। इसमें साम्यवादियों को शामिल करने के जे.पी. के प्रस्ताव का सबने विरोध किया, लेकिन नरेन्द्र देव ने जे.पी. का समर्थन किया। अंत में उनके आग्रह पर कांग्रेस समाजवादी पार्टियों का दरवाजा कम्युनिस्टों के लिए खोल दिया गया। कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव पी.सी. जोशी से जे.पी. की अच्छी दोस्ती हो गयी। साम्यवादी जे.पी. को "भारत का लेनिन" और "हिंदुस्तान का क्रांतिकारी नंबर वन" कहकर प्रशंसा करते थे, लेकिन अन्य समाजवादियों की आलोचना करते थे। जे.पी. ने कम्युनिस्टों पर विश्वास कर उन्हें महत्वपूर्ण पदों पर बैठाया। कई महत्वपूर्ण कम्युनिस्ट नेता समाजवादी पार्टी में शामिल हुए और इसके जरिये न सिर्फ समाजवादी पार्टी में, बल्कि कांग्रेस में भी बड़े बड़े पदों पर चले गये। केरल में ई.एम.एस. नम्बूदिरिपाद, ए.के.गोपालन तथा कृष्णा पिल्लै, तमिलनाडु में जीवानन्दन, आंध्र प्रदेश में सुंदरय्या और पंजाब में सोहन सिंह जोश जैसे साम्यवादी नेता इनमें शामिल थे। वे लोग समाजवादी पार्टी के सदस्य तो हो गये, परंतु अपने पुराने संगठन का अस्तित्व उन्होंने चुपचाप बनाये रखा। बाद में उनके गुप्त दस्तावेज मिले जिनसे उनके षड्यंत्र का पता चला। उनकी योजना थी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर कब्जा करने और अंदर घुसकर तोड़-फोड़ करने की।[4] इसमें वे सफल भी हुए और दक्षिण भारत के सभी प्रांतों में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की बागडोर साम्यवादियों के चंगुल में चली गयी। स्थिति यह हो गयी कि मीनू मसानी, लोहिया, अच्युत एवं अशोक मेहता ने पार्टी की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। जे.पी. को साम्यवादियों के छल का अहसास बहुत देर से हुआ। अंततोगत्वा सन् 1940 के रामगढ़ अधिवेशन में साम्यवादियों को निकालने का फैसला किया गया। जे.पी. ने इस सब की नैतिक जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए अपनी गलती स्वीकारी।

सन् 1941 में आल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन के नागपुर सत्र में समाजवादी और साम्यवादी छात्र भी दो गुटों में बंट गये। समाजवादी छात्रों का नेतृत्व किया एम.एल.शाह ने तथा साम्यवादियों का नेतृत्व किया एम.फारूकी ने।

उद्धरण

1. मसानी, मीनू : हू वाज दिस मैन (स्मारिका, 26 जून, 1987, पटना में जे.पी. की प्रतिमा अनावरण के अवसर पर प्रकाशित), पृ. 11
2. सरकार, सुमित : मॉडर्न इंडिया : 1885-1947 (मैकमिलन इंडिया लि., नयी दिल्ली), 1983, पृ. 332

3. मसानी, मीनू : हू वाज दिस मैन, पृ. 8-9
4. नारायण, जयप्रकाश : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया (संपादन : ब्रह्मानन्द, नवचेतना प्रकाशन), 1989, पृ. 31

द्वितीय विश्वयुद्ध का विरोध

समाजवादी अंग्रेजों के साथ किसी तरह का समझौता या सहयोग करने के खिलाफ थे। सन् 1934 में कांग्रेस ने विधानसभा चुनावों में शामिल होने का निर्णय लिया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने इसका कड़ा विरोध किया और एक प्रस्ताव पारित कर अपने सदस्यों के चुनाव में खड़े होने पर रोक लगा दी। इस आदेश का उल्लंघन करने के कारण ही प्रो. एन.जी.रंगा को पार्टी से निष्कासित कर दिया गया।

सन् 1937 के चुनावों में कांग्रेस को उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई। 1585 विधान सभा सीटों में 711 पर उसकी विजय हुई। बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, मध्य भारत एवं मद्रास में उसे स्पष्ट बहुमत मिला। अब कांग्रेस की दुविधा यह थी कि नये विधान के तहत मंत्रिमंडल बनाये या नहीं। नये विधान में राज्यपाल को सीटों का अधिकार दिया गया था। मार्च में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में डा. राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटेल का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया कि कांग्रेस इस शर्त के साथ सरकार बनाये कि कांग्रेस विधान मंडल दल के नेता सार्वजनिक रूप से यह कह सकें कि राज्यपाल अपने विशेषाधिकार का इस्तेमाल नहीं करेंगे। जे.पी. ने सरकार के गठन के प्रस्ताव का डटकर विरोध किया, लेकिन उनका प्रस्ताव 78 के मुकाबले 135 वोटों से खारिज हो गया। पांचों प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बन गयी और कुछ महीने बाद नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस में भी कांग्रेस का मंत्रिमंडल बन गया। कांग्रेस मंत्रिमंडल बनने के बाद भी जब राजनीतिक कैदियों की रिहाई नहीं हुई तो जे.पी. ने इसके विरोध में नारा दिया "रिलीज और रिजाइन"–"या तो बंदियों को रिहा करो या इस्तीफा दो।"

सितंबर, 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया। वायसराय लिनलिथगो ने प्रांतीय सरकारों से बातचीत किये बिना ही जर्मनी के खिलाफ ब्रिटेन द्वारा युद्ध की घोषणा में भारत को भी शामिल कर लिया। युद्ध को लेकर भारतीय राजनेताओं के तीन तरह के विचार थे। कुछ लोग ब्रिटेन को बिना शर्त समर्थन देने के पक्ष में थे जब कि कुछ लोग शर्त के साथ ही समर्थन देने पर सहमत थे। एक तीसरा वर्ग भी था जो किसी रूप में युद्ध में भारत के शामिल होने के विरुद्ध था। कांग्रेस के अंदर भी इसको लेकर विवाद बढ़ता गया। सुभाष चंद्र बोस ने अंग्रेजों के साथ किसी भी तरह के समझौते के खिलाफ आवाज उठायी। कांग्रेस के त्रिपुरा सत्र में उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव फिर से लड़ने

की घोषणा की। अन्य उम्मीदवार थे मौलाना आजाद और पट्टाभि सितारमय्या। मौलाना ने अपना नामांकन वापस ले लिया और गांधी जी ने सितारमय्या को अपना उम्मीदवार घोषित कर दिया। 29 जनवरी, 1939 को मतदान हुआ जिसमें सितारमय्या के 1377 मतों के मुकाबले सुभाष बोस 1580 मतों से विजयी हुए। उनकी जीत से स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस के अंदर साम्राज्यवाद-विरोधी वर्ग बहुत मजबूत था। समाजवादियों ने भी चुनाव में सुभाष बोस का ही समर्थन किया था।

बाद में कांग्रेस के अंदर विवाद इतना बढ़ गया कि सुभाष बोस ने इस्तीफा दे दिया और डा. राजेन्द्र प्रसाद नये कांग्रेस अध्यक्ष हो गये। 3 मई, 1939 को सुभाष बोस ने फारवर्ड ब्लाक का गठन किया। शुरू में उनका विचार था कि ब्लाक कांग्रेस के अंदर काम करेगा। सभी वामपंथी गुटों को एक साथ लाने के लिए उन्होंने जून, 1939 में ब्लाक के अंदर लेफ्ट कोन्सालिडेशन कमेटी बनायी।

कांग्रेस की एकता के लिए कड़ी मेहनत

साम्यवादियों ने सुभाष बोस का साथ दिया लेकिन एम.एन.राय के समर्थकों और जयप्रकाश ने फारवर्ड ब्लाक के गठन का विरोध किया। उनकी और अन्य समाजवादियों की मान्यता थी कि गांधी जी को दरकिनार नहीं किया जा सकता है तथा किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए कांग्रेस का नाम रहना जरूरी है। जे.पी. ने कांग्रेस की एकता के लिए काफी मेहनत की क्योंकि वे महसूस करते थे कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने में सबसे सक्षम कांग्रेस ही है। इस कारण बहुत से लोगों ने उनकी आलोचना भी की कि समाजवादी पक्ष ने गांधीवाद के सामने घुटने टेक दिये हैं। किंतु जे.पी. ने स्पष्ट किया कि समाजवादी पक्ष का गठन कांग्रेस के प्रतिद्वंद्वी के रूप में नहीं किया गया था, बल्कि कांग्रेस के अंदर उसे मजबूत बनाने एवं उसकी नीतियों को सही दिशा देने के लिए किया गया था। उन्होंने सुभाष बोस को भी अध्यक्ष पद से इस्तीफा न देने की सलाह दी थी ताकि कांग्रेस के अंदर वामपंथी विचारों को प्रधानता मिले और तब इस विचारधारा के अधिक लोग इसकी कार्यकारिणी में होते। किंतु दूसरे वामपंथियों और साम्यवादियों ने उन्हें ऐसी सलाह नहीं दी। जे.पी. कांग्रेस के नाम पर साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ना चाहते थे।

जयप्रकाश नारायण भी युद्ध में शामिल होने के बिल्कुल विरुद्ध थे। 31 दिसंबर, 1939 को उन्होंने अपना प्रसिद्ध 'वार सर्कुलर नं. 2' जारी किया जिसमें उन्होंने लिखा, "यह युद्ध एक साम्राज्यवादी युद्ध है और भारतीय ब्रिटेन के लिए इसलिए नहीं लड़ेंगे कि ब्रिटेन उनके देश पर अपनी पकड़ और मजबूत बनाये। स्वतंत्र भारत को भी साम्राज्यवादी युद्ध से कुछ लेना-देना नहीं होता सिवाय इसके कि वह इसका इस्तेमाल अन्य जगहों पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को खत्म करने में करता।"[1] जे.पी. ने स्कूल और कालेजों के छात्रों का आह्वान

किया कि युद्ध के विरोध में वे 26 जनवरी, 1940 को हड़ताल रखें। गांधी जी जे.पी. के इस आह्वान से सहमत नहीं थे। उन्होंने हड़ताल का विरोध नहीं किया लेकिन कहा कि छात्रों को अपने अपने प्रिंसिपलों की अनुमति लेने के बाद ही हड़ताल पर जाना चाहिए। पटना में एक संगठन था "गांधियन स्टुडेंट्स लीग"। लीग ने परचे बांटे कि गांधी जी छात्रों की हड़ताल के विरुद्ध थे। समाजवादियों ने दूसरा परचा निकालकर स्पष्ट किया कि गांधी जी हड़ताल के विरोध में नहीं थे। बिहार में हड़ताल पूरी तरह सफल रही। पटना के बिहार नेशनल कालेज के 1200 छात्रों में केवल 45 विद्यार्थी उस दिन आये। पटना की एक आम सभा में भी उन्होंने ऐलान किया कि यह युद्ध साम्राज्यवादी है और इस अवसर से लाभ उठाकर हम अपने देश को आजाद करने की कोशिश करेंगे। इसके बाद सरकार के युद्ध कार्य से पूरी तरह असहयोग करने का संदेश प्रचारित करने के लिए उन्होंने पूरे देश में यात्राएं की।

ब्रिटिश सरकार को उलटने का आह्वान, गिरफ्तारी

इस सिलसिले में 18 फरवरी, 1940 को जमशेदपुर में उन्होंने अपना पहला भाषण दिया। इसमें उन्होंने अंग्रेज सरकार को उलट देने और अंग्रेजों की अदालत, पुलिस आदि का बहिष्कार कर जनता का अपना शासन बनाने की बात कही। उन्होंने टिस्को के मजदूरों का आह्वान किया कि वे हड़ताल पर चले जायें ताकि युद्ध के लिए सरकार को फौलाद न मिले। इस भाषण के लिए उन्हें डी.आई.आर. के तहत गिरफ्तार कर लिया गया।

उनकी गिरफ्तारी पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गांधी जी ने 16 मार्च, 1940 के "हरिजन" में लिखा, "जयप्रकाश की गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई मामूली कार्यकर्ता नहीं हैं। वे तो समाजवाद के एक आधिकाधिक प्रवक्ता हैं। कहा जा सकता है कि समाजवाद के विषय में जयप्रकाश जो नहीं जानते उसे इस देश में कोई नहीं जानता। देश की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। वे एक फक्कड़ लड़वैया हैं। उनका उद्यम जानता ही नहीं कि थकावट किसे कहते हैं। सहन करने की उनकी शक्ति की कोई मिसाल नहीं है। जयप्रकाश को गिरफ्तार करके सरकार कोई संकट करना चाहती हो तो भले करे। इस गिरफ्तारी से लोग यह महसूस करने लगे हैं कि सरकार लड़ ही लेना चाहती है।" नेहरू जी ने भी आक्रोश व्यक्त करते हुए बयान दिया कि उन्हें गिरफ्तार कर सरकार ने कांग्रेस के खिलाफ लड़ लेने का ऐलान कर दिया है। गिरफ्तारी के बाद अदालत के सामने 15 मार्च को जे.पी. ने बड़ा साहसिक लिखित बयान दिया। इस लंबे बयान में उन्होंने कहा, "मेरा देश इस लड़ाई में किसी भी रूप में शामिल नहीं है क्योंकि वह जर्मन नाजीवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद दोनों को बुरा मानता है और

उन्हें अपना शत्रु समझता है। ...साफ बात है कि ऐसी लड़ाई के साथ हिंदुस्तान का कोई रिश्ता-नाता हो नहीं सकता। कोई भी हिंदुस्तानी अपने देश की साधन-सामग्री का उपयोग साम्राज्यवादी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने और लड़ाई के जरिये स्वदेश की गुलामी की जंजीरों को मजबूत बनाने के लिए नहीं करने दे सकता।...ब्रिटिश सरकार ने हिंदुस्तान के लोकमत की पूरी अवमानना करके उसे लड़ाई में सम्मिलित एक देश के रूप में घोषित किया है। इससे हिंदुस्तान पर जिस तरह का आक्रमण हुआ है वह अपनी परिस्थितियों की गंभीरता में पोलैंड पर किये गये जर्मनी के आक्रमण से किसी भी कदर कम नहीं है।...जो गुलाम है उसका यह कर्तव्य नहीं हो सकता कि वह अपनी गुलामी की रक्षा करे। उसका तो एकमात्र कर्तव्य अपनी जंजीरों को तोड़ देने का ही हो सकता है। मुझे विश्वास है कि जिस दिन हम अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगे, उस दिन के बाद हम अपनी आत्मरक्षा भी कर ही लेंगे।...मैं न तो साम्राज्यवाद की जीत चाहता हूं और न नाजीवाद की। ब्रिटिश जनता और जर्मन जनता के लिए मेरे मन में सद्भाव के सिवाय और कुछ है ही नहीं।"[2] इस तरह अपना अपराध (?) कबूल कर उन्होंने सजा को निमंत्रण दिया और उन्हें नौ महीने के सश्रम कारावास की सजा हुई।

गांधी जी ने इस पूरे बयान को "हरिजन बंधु" के पहले पृष्ठ पर "बहादुर योद्धा का बयान" शीर्षक से छापा। उसमें उन्होंने लिखा, "यह भी एक दैवदूर्विलास ही है कि जयप्रकाश को उनके स्वदेश-प्रेम के लिए दंडित किया जा रहा है। जयप्रकाश के बयान का आखिरी हिस्सा उनकी उत्कट मानवता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उसमें लेशमात्र भी द्वेष नहीं है।..." गांधी जी भी युद्ध के विरुद्ध थे, किंतु उनके विरोध का कारण था अहिंसा की उपादेयता में उनका अडिग विश्वास। जबकि जे.पी. के विरोध का कारण था साम्राज्यवाद का विरोध।

युद्ध में मित्र राष्ट्रों की स्थिति कमजोर होती जा रही थी। जापान जर्मनी की तरफ से युद्ध में शामिल हो गया था। उसने दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों पर कब्जा करना शुरू किया। इससे भारत में सनसनी फैल गयी। जापान के आक्रमण के डर से ब्रिटेन ने भारत में विदेशी फौजों को भेजना शुरू कर दिया। उन फौजों को बसाने के लिए गांव के गांव उजाड़ दिये गये और तरह तरह के जुल्म ढाये गये। स्वाधीनता संग्राम के नेताओं ने जब इसका विरोध किया तो उन्हें बंदी बनाकर जेल में रख दिया गया। गांधी जी ने अंग्रेज सरकार के युद्ध प्रयत्नों के खिलाफ "व्यक्तिगत सत्याग्रह" का ऐलान किया जो 16 अक्तूबर 1940 से शुरू हुआ। इस सत्याग्रह का नारा था—"न एक पाई, न एक भाई, साम्राज्यवादी यह लड़ाई।" इसनें पहले सत्याग्रही थे विनोबा भावे। जवाहरलाल दूसरे सत्याग्रही थे, परंतु वे पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। इसलिए उनकी जगह दूसरे सत्याग्रही हुए सरदार पटेल।

सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर चिंतन

आंदोलन के साथ साथ जे.पी. चिंतन में भी लगे रहते थे। स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था कैसी हो, इस प्रश्न पर वे मनन करते रहते थे। युद्ध विरोधी भाषण के लिए जब पुलिस उन्हें गिरफ्तार कर पटना से जमशेदपुर ले जा रही थी तो रास्ते में ही उन्होंने इस विषय पर एक मसविदा तैयार कर उसे गांधी जी के पास भेज दिया। गांधी जी ने उसे कांग्रेस कार्यकारिणी के सम्मुख रखा, लेकिन कार्यकारिणी ने उसे पारित नहीं किया। बाद में गांधी जी ने इसे "हरिजन बंधु" में "श्री जयप्रकाश का मनोराज्य" शीर्षक से उसे प्रकाशित किया। उन्होंने जे.पी. के विचारों से अपनी सहमति भी व्यक्त की।

इसमें जे.पी. ने गांवों के पूरे जीवन की संरचना नये सिरे से करने, जमीन का स्वामित्व उसे जोतने वाले को देने, लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देने, सामुदायिक उत्पादनों को सामुदायिक स्वामित्व के अधीन लाने और प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार देने की बात कही थी। उन्होंने यह भी लिखा कि स्वतंत्र भारत भिन्न भिन्न देशों की प्रजाओं के बीच आपसी सुलह और एकता के लिए, संपूर्ण शस्त्र संन्यास के लिए और अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों के शांतिपूर्ण निपटारे के लिए कार्य करेगा। इसके साथ ही उन्होंने सामाजिक न्याय पर बल दिया और व्यवस्था की रक्षा के लिए जनता के समर्थन और सम्मति को आवश्यक माना।

जेल से रिहा, फिर देवली कैंप में बंद

सन् 1940 के अंत में जे.पी. जेल से रिहा हो गये। उन्होंने पूरे देश की यात्रा शुरू की और बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात तथा कलकत्ता एवं बंबई में गुप्त संस्थाएं स्थापित कीं। कुछ ही दिनों बाद फिर उन्हें बंबई में गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया और 23 अप्रैल, 1941 को उन्हें राजस्थान के देवली कैंप में भेजा गया। अंग्रेज सरकार ने युद्ध बंदियों के लिए वहां एक कासेंट्रेशन कैंप बनवाया था। बाद में उसमें राजनीतिक बंदी रखे जाने लगे। देवली कैंप में 104 लोग रखे गये थे जो अलग अलग राजनीतिक पार्टियों के थे। वहीं जे.पी. को अजय घोष और एस.एस. मिरजकर जैसे पुराने कम्युनिस्ट दोस्त भी मिल गये।

अक्तूबर, 1941 में देवली कैंप में एक उल्लेखनीय घटना घटी। जे.पी. को लग रहा था कि वे कैंप में सड़ रहे हैं और बाहर के साथियों से संपर्क स्थापित करने को वे बेचैन हो उठे। जेल से बाहर के अपने मित्रों को वे कुछ संदेश भेजना चाहते थे। उन्होंने उस कैंप के एक कनिष्ठ अधिकारी को किसी तरह वशीभूत कर इसके लिए राजी कर लिया कि वे उनके पत्रों को बाहर पहुंचा दें ताकि क्रांति का काम फिर शुरू हो सके। जे.पी. मुंशी अहमद दीन और मास्टर मोटा सिंह आनंदपुरी ने एक बड़े लिफाफे में पत्रों को डालकर

उस अधिकारी को दे दिया कि वे उसे बाहर प्रभावती जी को दे दें। उस समय कैदियों के संबंधियों को लगातार दो दिन मिलने की इजाजत दी जाती थी। प्रभावती जी एक दिन पहले मिल चुकी थीं और दूसरे दिन बाहर इंतजार कर रही थीं। जे.पी. को पता चला कि प्रभावती को वह लिफाफा नहीं दिया गया तो उन लोगों ने उस अधिकारी से पूछा और उसे धमकी दी। इस पर उसने बताया कि सी.आई.डी. की कड़ी निगरानी के कारण लिफाफा उन्हें नहीं दे पाया और उसने इसे जे.पी. को वापस कर दिया।

जे.पी. ने तार भेजकर प्रभावती जी को फिर मिलने के लिए बुलाया। प्रभावती भी नहीं समझ पायीं कि इतनी जल्दी उन्हें क्यों बुलाया गया, लेकिन वे मिलने चली गयीं। थोड़ी देर बातचीत करने के बाद जे.पी. ने एक कागज पर अपने पैर की नाप देते हुए कहा कि इस नाप की चप्पल मेरे लिए खरीद लाना और पुलिस अधिकारी को भी वह कागज दिखा दिया कि उसमें कुछ आपत्तिजनक बात नहीं है। इसके बाद उन्होंने टेबुल के नीचे से एक लिफाफा प्रभावती की ओर बढ़ा दिया। गांधीवादी विचारों से सराबोर प्रभावती झिझकीं, लेकिन जे.पी. ने लिफाफा उन्हें दे दिया। एक सी.आई.डी. सब-इंस्पेक्टर बैनर्जी वहां पर खड़ा था। प्रभावती को पत्र लेने में जो उधेड़बुन हुई तो सब-इंस्पेक्टर की नजर उस पर पड़ गयी और उसने लिफाफे को झपटना चाहा, लेकिन सफल नहीं हो सका। जे.पी. भी लिफाफे को फाड़ नहीं पाये। जे.पी. और बैनर्जी में झड़प हुई। इसी बीच दूसरे संतरी भी वहां आ गये और लिफाफा छीन लिया गया।

जे.पी. का पत्र लगभग 30 पृष्ठ का था और इसमें उन्होंने अपने साथियों का आह्वान किया था कि वे हिंसक तरीके से अंग्रेज सरकार का मुकाबला करें। इसमें उन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह को फार्स तक कह दिया था। जे.पी. को देवली कैंप के अधीक्षक ले. कर्नल क्रिस्टोफर के समक्ष पेश किया गया। उसने जे.पी. को डांटा और आदेश दिया कि कुछ महीने तक उन्हें किसी से नहीं मिलने दिया जायेगा और न उनकी चिट्ठियां बाहर भेजी जायेंगी। उसने कहा कि यदि वे अपनी हरकत न दुहराने का वचन दें तो उन्हें कोई सजा नहीं दी जायेगी। इस पर जे.पी. ने जवाब दिया, "मैं एक पेशेवर कानून तोड़नेवाला व्यक्ति हूं। मैं आपके कानून का सम्मान नहीं करता हूं। इसी कारण मैं जेल में हूं। जेल के बाहर मैं कानूनों को तोड़ता रहा हूं और जब कभी मौका आयेगा उन कानूनों को दुबारा तोड़ने में नहीं हिचकिचाऊंगा। मैं नतीजे के लिए तैयार हूं।"[3]

सरकार ने उस पत्र के कुछ हिस्सों को अखबारों में छपवा दिया और गांधी जी को चुनौती दी कि यदि उनकी (गांधी की) आस्था अहिंसा में अडिग है तो वे इस पत्र के लिए जयप्रकाश की भर्त्सना करें। "हिन्दू" ने इसे इस आधार पर प्रकाशित नहीं किया कि उस पत्र की प्रामाणिकता पक्की नहीं है और यह भी स्पष्ट नहीं है कि किस परिस्थिति में यह लिखा गया। गांधी जी ने इस घटना पर अपना बयान जारी किया, "जयप्रकाश

नारायण के विरुद्ध लगाये गये आरोप की सत्यता यदि मान ली जाये तो उनके द्वारा बताये गये तरीके कांग्रेस की सत्य और अहिंसा की नीति के विपरीत हैं और उनकी कठोरतम आलोचना होनी चाहिए। लेकिन सरकार किस मुंह से उनकी निंदा करती है? यह साफ है कि सभी राष्ट्रवादी शक्तियों, चाहे जिस किसी भी नाम से वे जानी जायें, ने सरकार के खिलाफ जंग छेड़ दी है और युद्ध के स्वीकृत नियमों के अनुसार, जयप्रकाश नारायण द्वारा अपनाया गया रास्ता पूरी तरह ठीक है। सात सालों तक अमेरिका में उनकी शिक्षा हुई है और उन्होंने इस बात का भी अध्ययन किया है कि पश्चिम के देशों ने आजादी की अपनी लड़ाई किस तरह लड़ी है। छल करना, ऐसे तरीकों का इस्तेमाल करना और यहां तक कि हत्या का षड्यंत्र करना सम्मानजनक है एवं ऐसा करने वालों को राष्ट्रीय नायक बना दिया जाता है। क्या क्लाइव और वारेन हैस्टिंग्स ब्रिटिश नायक नहीं हैं? अगर जयप्रकाश नारायण ब्रिटिश कूटनीतिक सेवा में होते और गुप्त कूटनीति से उन्होंने महत्व का कोई काम पूरा किया होता तो मान-सम्मान से उनका अभिनंदन किया गया होता।... इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना में उनकी गरीबिनी पत्नी को व्यर्थ ही फंसाया गया है। वे तो इस विषय में कुछ भी जानती नहीं थीं।...मैं यह घोषित करना चाहता हूं कि प्रभावती के विचार जयप्रकाश से भिन्न हैं। पति-पत्नी के रूप में ये दोनों आदर्श दंपत्ति हैं। किंतु राजनीति की दृष्टि से प्रभावती संपूर्ण रूप से मेरे विचारों को मानती हैं, और वह मेरे सबसे ज्यादा वफादार साथियों में एक हैं।"[4]

शुरू में गांधी जी ने अपना बयान और भी कड़ा लिखा था, परंतु कुछ मित्रों की सलाह पर उन्होंने उसे थोड़ा नरम बनाकर जारी किया। जे.पी. ने गांधी जी के इस बयान पर उन्हें 28 अक्तूबर को लिखे पत्र में लिखा, "आपका वक्तव्य देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। उससे तो अपनी महानता ही साबित होती है।...प्रभावती का हाल जानकर मुझे आश्चर्य और दुख दोनों ही हुए। हम लोगों का जीवन-संबंध तो कभी विचारों की समता या एकता पर आधारित नहीं था। फिर उसे हमारे ख्यालात पर इतना परेशान होने की क्या आवश्यकता? आप उसे कृपया समझा देंगे।"[5]

पटना के सर्चलाइट को छोड़कर लगभग सभी समाचार पत्रों ने जे.पी. की प्रशंसा में संपादकीय लिखे। सर्चलाइट के संपादक मुरली बाबू ने जे.पी. की आलोचना की थी। इस पर गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू को फोन किया और राजेन्द्र बाबू ने मुरली बाबू से बात की। दूसरे ही दिन मुरली बाबू ने सर्चलाइट में जे.पी. की काफी तारीफ छापी।

देवली कैंप में बंदियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। उनकी शिकायतों पर कोई कार्रवाई नहीं होती थी। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न कोनों से कैदी लाकर वहां रखे गये थे और उनके संबंधियों को बहुत खर्च कर दूर दूर से मिलने के लिए आना पड़ता था। इसलिए उनकी एक मांग यह थी कि उन्हें अपने अपने प्रांतों की जेलों में रखा

जाये। अपनी मांगों के समर्थन में उन लोगों ने 22 अक्तूबर को उपवास शुरू किया जिसमें जे.पी. भी शामिल हुए। 10 दिन के उपवास के बाद जे.पी. ने गांधी जी को पत्र लिखकर आग्रह किया कि वे राजेन्द्र प्रसाद या गोविंद वल्लभ पंत को भेजकर देवली कैंप के हालात की जांच करवायें। गांधी जी ने अपने सचिव महादेव देसाई को उनसे मिलने भेजा और जे.पी. को स्वयं लिखा कि यदि सरकार अपने अपने प्रांतों में भेजने की मांग स्वीकार कर लेती है तो उन्हें भूख हड़ताल समाप्त कर देनी चाहिए। जे.पी. ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। आखिर 31 दिनों के उपवास के बाद महादेव देसाई की सलाह पर उन्होंने उपवास तोड़ा। गांधी जी ने 17 नवंबर को बयान जारी कर उनके उपवास और उनकी मांगों का समर्थन किया। अंत में सरकार को कैदियों की मांग माननी पड़ी। उन्हें अपने अपने प्रांतों में भेज दिया गया और देवली कैंप उठा लिया गया। जे.पी. को भी बिहार की हजारीबाग जेल में भेज दिया गया।

उद्धरण

1. वार सर्कुलर नं. 2, अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, लखनऊ, 31 दिसंबर 1939
2. जयप्रकाश, पृ. 333
3. बख्शी, एस.आर. : जयप्रकाश नारायण : हिज सोशलिस्ट आइडियोलाजी, पृ. 234
4. द हिंदू, अक्तूबर 23, 1941
5. जयप्रकाश, पृ. 335

"भारत छोड़ो" आंदोलन का नायकत्व

कांग्रेस के अंदर विश्वयुद्ध को लेकर विवाद बढ़ता जा रहा था। मई, 1942 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक इलाहाबाद में हुई। कहा जाता है कि इसमें मूल मसविदा गांधी जी ने तैयार किया था, जो जवाहरलाल नेहरू के बनाये मसविदे से ज्यादा क्रांतिकारी था। नेहरू, राजगोपालाचारी, सरोजिनी नायडू और भूलाभाई देसाई ने विचार व्यक्त किया कि इस नाजुक वक्त पर ब्रिटिश शासन की समाप्ति का अर्थ होगा जापान द्वारा भारत पर कब्जा। अच्युत पटवर्धन ने बैठक में सलाह दी कि यह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है और हमारी नीति किसी का साथ नहीं देने की होनी चाहिए। आचार्य नरेंद्र देव ने भी नेहरू के विचारों से अपनी असहमति व्यक्त की। राजेन्द्र प्रसाद, कृपलानी एवं वल्लभभाई पटेल ने गांधी जी के मसविदे के समर्थन में मत दिया।[1] नेहरू का प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने महात्मा गांधी से अनुरोध किया कि कांग्रेस का नेतृत्व स्वीकार करें और आवश्यकता पड़ने पर अहिंसक असहयोग का कार्यक्रम चलायें। इसके बाद सरकार के साथ किसी तरह की बातचीत सफल नहीं हो पाई। सेक्रेटरी ऑव स्टेट फॉर इंडिया, लियोपोल्ड एमरी ने "फूट डालो और शासन करो" की नीति के तहत कांग्रेस को हिंदू पार्टी कहा। बाद में स्टैफॉर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में ब्रिटिश मिशन 23 मार्च, 1942 को भारत आया। क्रिप्स के साथ भी कांग्रेस नेताओं की वार्ता असफल रही और 2 अप्रैल, 1942 को कांग्रेस-कार्यकारिणी ने क्रिप्स के प्रस्तावों से असहमति व्यक्त करते हुए अपना प्रस्ताव पारित किया। अंत में 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस के बंबई अधिवेशन में "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पारित हुआ और अहिंसक तरीके से व्यापक से व्यापक जन-संघर्ष करने के लिए जनता का आह्वान किया गया। उसी दिन गांधी जी ने अपने भावोत्तेजक भाषण में "करो या मरो" का नारा दिया और लोगों को आगाह किया कि यदि सभी कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये जायें तो हर व्यक्ति अपना नेतृत्व स्वयं करे।

हजारीबाग जेल से पलायन

इसके साथ ही पूरे देश में भीषण आंदोलन छिड़ गया। इस समय जे.पी. हजारीबाग जेल के सींखचों के भीतर थे। वहां वे जेल में क्लास लेते थे और लोगों को पढ़ने-लिखने को प्रेरित करते थे। उन्होंने जेल में ही "सोशलिस्ट कान्सोलिडेशन" का गठन किया। आंदोलन

के दौरान कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बिखर गई थी। उसे फिर से संगठित करने के लिए उन्होंने "सोशलिस्ट कान्सोलिडेशन" का गठन किया। "भारत छोड़ो" के नारे से वे रोमांचित हो उठे और उनका मन इस अंग्रेजी हुकूमत को उलटने के लिए तड़प उठा। बंदियों ने जेल में ही असहयोग आंदोलन शुरू किया। कैदियों ने तय किया कि वे जेल में किसी से नहीं मिलेंगे, न किसी को पत्र लिखेंगे, न ही अपने नाम आने वाले पत्र लेंगे। इस तरह पूरा असहयोग शुरू हुआ। किंतु जे.पी. के अंदर धधकती हुई ज्वाला का शमन इस प्रतीकात्मक असहयोग से नहीं हुआ। बाहर से पुलिस-दमन और बर्बरता के समाचार आते रहते थे और उन्हें पढ़कर कैदियों का खून खौल रहा था। जे.पी. ने अपने अन्य साथियों के साथ तय किया कि किसी तरह आंदोलन में उन लोगों का सक्रिय योगदान होना चाहिए और इसमें जेल की दीवार आड़े नहीं आनी चाहिए। इसलिए जे.पी. ने अपने कुछ मित्रों के साथ जेल से भागने का निश्चय किया।

इन लोगों ने 8 नवंबर, 1942 को जेल से भागने के निर्णय को अंजाम दिया। यह दीपावली का दिन था। धूमधाम से दीवाली मनाने की तैयारी की गई। खेल-कूद और गाने-बजाने के कार्यक्रम तय हुए और उसके लिए आवश्यक साज-सामान जुटाया गया। शाम को दीवाली का जुलूस निकाला गया। उस समय एक फिल्मी गाना बड़ा लोकप्रिय था जिसके बोल थे, "दीवाली फिर आ गई सजनी !" जुलूस में यही गीत गाया जा रहा था। श्री मुकुटधारी सिंह तथा रामवृक्ष बेनीपुरी उस जुलूस के संयोजक और संचालक थे। एक कैदी थे त्रिवेदी परमानंद, जो क्रांतिकारी होने के साथ साथ एक कलाकार भी थे। उनके हाथ में एक थाली थी जिसमें मिट्टी के छोटे छोटे जलते दीपक सजाये गये थे। वह थाली लेकर नाचते गाते हुए जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। जुलूस में कैदियों के साथ वार्डर और जमादार भी शरीक हो गये।

जिस समय सभी लोग जुलूस में नाचने गाने में व्यस्त थे, उसी समय जेल की 17 फुट ऊंची दीवार फांदने की व्यूह रचना अमल में लाई जा रही थी। उन लोगों ने "छोकड़ा किता" की ओर से भागने की योजना बनाई थी और जुलूस निकालने का एकमात्र उद्देश्य यह था कि किसी जेल अधिकारी या कर्मचारी की नजर "छोकड़ा किता" की ओर न जाये। संभवतः उन लोगों का जेल के बाहर के साथियों से कोई संपर्क नहीं हो पाया था। इसी कारण हजारीबाग के निवासी शालिग्राम सिंह को पथ प्रदर्शक के रूप में भागने वालों के गुट में शामिल होना पड़ा था। जे.पी. और शालिग्राम सिंह के अतिरिक्त भागने वालों में योगेंद्र शुक्ल, सूर्य नारायण सिंह, रामनंदन मिश्र और गुलाब चंद्र गुप्त उर्फ गुलाली सोनार शामिल थे। जे.पी. ने अपने पटना के मित्र ए.पी. सिन्हा को भी साथ भागने के लिए मनाया, लेकिन अहिंसक क्रांति में उन्हें यह मार्ग स्वीकार्य नहीं था।

जब लोग जुलूस में मगन हो गये तो जेल के सबसे अंधेरे कोने में एक मेज रखी

गई। धोतियां बांधकर एक लंबी रस्सी तैयार की गई और उसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गांठ लगाकर उसे सीढ़ीनुमा बना दिया गया। टेबुल पर सबसे पहले योगेंद्र शुक्ल घुटने के सहारे बैठे। वह शरीर से बलिष्ठ थे और दीवार पर चढ़ने का काफी अभ्यास कर चुके थे। उनके कंधे पर सूर्य नारायण सिंह खड़े हो गये और धोती की दूसरी गांठ पकड़कर उन्होंने धोती को कसकर पकड़ लिया और रस्सी के सहारे एक एक कर छहों कैदी भाग निकले। कुछ ही मिनटों में यह सारा काम संपन्न हो गया। भागने की अफरा-तफरी में एक का कोट अंदर छूट गया जिसमें सारे पैसे थे। कपड़े वाली गठरी भी छूट गई। कुछ विशेष कपड़े इसलिए इकट्ठे किये गये थे कि बाहर बचने के लिए सूरत शक्ल बदलनी पड़ेगी। सबके जूते भी उसी गठरी में थे।

भागने में सफल होने के पीछे उन लोगों की रणनीति तो थी ही, किंतु एक कारण जेल अधिकारियों का बंदियों पर विश्वास भी था। श्री मुकुटधारी सिंह ने इस बारे में लिखा है, "उन दिनों जेल अधिकारी और अधिकांश कर्मचारी हम राजनीतिक बंदियों को प्रायः देवता समझते थे, हममें श्रद्धा और विश्वास रखते थे और इस बात को सोच ही नहीं सकते थे कि हममें से कोई जेल से भाग भी सकता है।...जेलों का यह साधारण नियम है कि संध्या छह बजे से सुबह छह बजे तक, और जाड़े के दिनों में संध्या पांच बजे से सुबह के सात बजे तक कैदी अपने वार्डों या सेलों में बंद रखे जाते हैं। परंतु, बहुत दिनों तक हजारीबाग जेल के हम राजबंदी इसके अपवाद थे। हजारीबाग जेल में तो हम सभी गर्मियों में खुले मैदान में सोते थे। दीवाली के कुछ दिन पहले से ही जाड़ा शुरू हो जाता था और हम लोग सेलों में बंद होने लगते थे। फिर भी वह बंदी रात के दस बजे से पहले नहीं होती थी और जो वार्डर राजबंदियों के सेलों को बंद करने के लिए आते थे, वे बिना किसी छानबीन के जिस सेल में मसहरी को गिरा हुआ और लालटेन बुझा हुआ देखते थे, उसको बाहर से बंद कर, ताला लगाकर चलते बनते थे, बिना अच्छी तरह देखे कि राजबंदी अपनी मसहरियों के भीतर हैं या नहीं।"[2]

छह बंदियों के भागने के बाद भी अंदर सारा नाटक चलता रहा ताकि वे लोग दूर निकल जायें। जुलूस लगभग दो घंटे तक चला। दूसरी ओर वार्ड नं. एक में कृष्ण वल्लभ सहाय के कमरे में दूसरे नाटक, ताश के खेल में शामिल थे कृष्ण वल्लभ सहाय, यदुवंश सहाय, शार्गधर सिंह और अवधेश्वर प्रसाद सिंह। उन लोगों को आशा थी कि जब तक ताश का खेल चलता रहेगा तब तक वार्डर सेलों को बंद करने का काम शुरू नहीं करेंगे। उससे जे.पी. एवं अन्य को काफी आगे निकल जाने का अवसर मिलेगा। समय काटने के लिए वे लोग स्वामी सच्चिदानंद संन्यासी के कमरे की ओर गये क्योंकि स्वामी जी ने उस जुलूस में भाग नहीं लिया था। लोग उनके कमरे के सामने जाकर गाने लगे—"दीवाली फिर आ गयी सजनी !" स्वामी जी को ऐसी हरकत पसंद नहीं थी और उन्हें गुस्सा भी

ज्यादा आता था। दो-चार मिनट में ही उन्होंने मसहरी का लोहे का डंडा निकाला और टूट पड़े प्रदर्शनकारियों पर। इससे कई लोगों के सिर फूट गये। इसके बाद जो भाग-दौड़ हुई तो एक-डेढ़ घंटा उसमें भी निकल गया। इस प्रकार रात्रि के ग्यारह बज गये। उन लोगों ने भागने वालों के कमरों की मसहरी गिरा दी और लालटेन बुझा दी। मसहरी गिरी देखकर वार्डर को कोई संदेह नहीं हुआ और सब लोग सो गये।

बाहर जे.पी. और सभी साथी भागते रहे। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी और वह अमावस की रात थी। रास्ता भटक जाने के कारण सारी रात बियाबान जंगल में भागते रहे, किंतु कोई गांव नहीं मिला जबकि जेल से सात मील की दूरी पर ही एक गांव था आदिवासियों का। अलस्सुबह एक पेड़ के नीचे थोड़ी देर रुके और लकड़ियां इकट्ठा कर अलाव जलाया। थोड़ा-सा आराम कर वे लोग फिर भागने लगे और दस-ग्यारह बजे तक भागते ही रहे। उन लोगों को तेज भूख लग गयी थी। एक के पास सौ रुपये का एक नोट था, लेकिन उसे तोड़ना मुश्किल था। जेब टटोलने पर एक चवन्नी निकल आयी जिसके सहारे छह लोगों ने पूरे दो दिन बिताये। पैरों की हालत दयनीय हो चुकी थी। उनमें पड़े फफोलों से खून टपकने लगा था। धोतियों को फाड़कर पैरों में लपेटकर ये क्रांतिकारी आगे बढ़ते रहे। जे.पी. के लिए चलना एकदम मुश्किल हो गया था। उनके पैर में साईटिका की तकलीफ थी और उससे वे परेशान हो उठे। अन्य साथी कुछ दूर उन्हें अपने हाथों पर उठा कर ले गये। पूरे दो दिनों तक भागते रहने के बाद जंगल में एक छोटा सा गांव मिला। वहां एक परिचित शिक्षक निकल आये और पूरे 45 घंटे के बाद उन लोगों को भर पेट भोजन प्राप्त हुआ। वहां उन लोगों को कुछ पुराने कपड़े और जूते भी मिल गये जिससे आगे की यात्रा थोड़ी कम कष्टप्रद हो गयी। बीच-बीच में बैलगाड़ी से भी थोड़ी दूरी तय की। चार दिनों तक भागते रहने के बाद उन लोगों ने जंगल पार कर जिले में प्रवेश किया।

जे.पी. को पकड़ने के लिए इनाम

उधर दूसरे दिन जेल में सुबह सब कुछ सामान्य था। किंतु जिस दिन वे लोग भागे थे उसी दिन सरकार का कोई ऐसा आदेश आया था कि "भारत छोड़ो" आंदोलन के पहले से नजरबंद लोगों को अन्य लोगों से न मिलने दिया जाये। दूसरे दिन जेल अधीक्षक ने उसी आदेश के सिलसिले में जे.पी. को बुलाने के लिए एक वार्डर को भेजा। वार्डर ने लौटकर बताया कि जे.पी. नहीं मिले। इस पर भी अधीक्षक को कोई संदेह नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद वह खुद अंदर गया, लेकिन जे.पी. को अपने वार्ड में नहीं पाया। फिर उसने एक वार्डर को उन्हें खोजने का आदेश दिया। जब वे कहीं नहीं पाये गये तो जेल की पगली घंटी बजायी गयी। चारों ओर हड़कंप मच गया। हल्ला हुआ कि जे.पी. फरार हैं। दोपहर तक सारा जेल आला पुलिस अधिकारियों से भर गया। सभी भागे हुए कैदियों

को जिन्दा या मुर्दा पकड़ कर लाने के लिए पांच पांच हजार रुपये के इनाम की घोषणा की गयी। जे.पी. के लिए यह राशि बाद में बढ़ाकर 10 हजार रुपये कर दी गयी।

इधर गया जिले में जे.पी. शोखोदेवरा गांव पहुंचे जहां उनके एक परिचित कांग्रेसी के मित्र का मिट्टी का मकान था। वहां उनका जोरदार स्वागत हुआ। उन्हें वहां भोजन के साथ कुछ पैसे, कपड़े और पुराने जूते भी दिये गये। इसके बाद वे सभी रामनंदन मिश्र के ससुर के दफ्तर में तीन दिन ठहरे। वे गया जिले के एक बड़े जमींदार थे। बाद में नवादा में छहों साथी अलग हो गये। गया में जे.पी. कुछ समय बुनियादगंज के जाने-माने जमींदार बेनी बिहारी प्रसाद भूप के यहां भी छुपे। गया से ट्रेन पकड़कर तीसरी श्रेणी में वे बनारस पहुंचे। दाढ़ी बढ़ जाने से उनकी शक्ल थोड़ी बदल गयी थी और बीमार होने का बहाना कर एक कपड़े से अपना मुंह ढंककर वे बनारस आये। बनारस में विश्वविद्यालय के एक शिक्षक ने उन्हें रात भर के लिए शरण दी। इसके बाद विश्वविद्यालय के लॉन में वे रात काटते थे। यहां से वे अच्युत पटवर्धन एवं अन्य साथियों को गुप्त रूप से आंदोलन को आगे बढ़ाने की सलाह लिखकर भेजते थे। बनारस से फिर वे दिल्ली गये और वहां सेतिया परिवार के यहां ठहरे। उन लोगों का जूट का व्यापार था। अंग्रेजों के विरुद्ध परचे छपवाने के लिए उन्होंने जे.पी. को आर्थिक सहायता भी दी। पुलिस से बचने के लिए जे.पी. ने तरह-तरह की वेशभूषा बनायी और नाम बदले। पहले से कुछ अन्य साथी जो गुप्त रूप से आंदोलन चला रहे थे उनमें अच्युत पटवर्धन, राम मनोहर लोहिया, अरुणा आसफअली और दिवाकर प्रमुख थे। इनका एक संचालक मंडल था। बाद में इसका नेतृत्व जे.पी. करने लगे। जनवरी, 1943 में उन्होंने 26 तारीख (स्वाधीनता दिवस) से नये कार्यक्रम शुरू करने की घोषणा की।

क्रांतिकारियों के नाम खुले पत्र

फरवरी के अंत में उन्होंने किसानों, विद्यार्थियों और स्वतंत्रता सैनिकों के नाम खुले पत्र लिखकर उन्हें अतिम सांस तक स्वतंत्रता के इस अंतिम युद्ध में लड़ने को ललकारा। ऐसे तीन पत्र उन्होंने लिखे। अपने पत्रों में उन्होंने स्पष्ट किया कि क्रांति का अर्थ केवल संहार नहीं है। क्रांति के साथ निर्माण की महान शक्ति भी जुड़ी हुई है।...जहां जहां विदेशी राज्य को समाप्त कर दिया गया हो, वहां वहां जनता की अपनी क्रांतिकारी सरकारों को अपना काम शुरू कर देना चाहिए। जे.पी.ने हिंसा के जरिये अंग्रेजी हुकूमत को ध्वस्त करने पर बल अवश्य दिया लेकिन यह भी हिदायत दी कि इसमें किसी की हत्या नहीं हो। उन्होंने लिखा, "मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि यदि काफी बड़े पैमाने पर वीरों की अहिंसा का आचरण किया जा सके तो हिंसा अनावश्यक हो जाए। लेकिन जहां ऐसी अहिंसा न हो, वहां सात्विक वितंडावाद की आड़ में कायरता को क्रांति

के मार्ग का रोड़ा नहीं बनने दिया जा सकता।"[3] उन्होंने अमेरिकी सैनिकों को भी पत्र लिखा जो द्वितीय विश्वयुद्ध में लड़ने के लिए भेजे गये थे। जे.पी. का पत्र गुप्त रूप से उन सैनिकों के बैरेक में पहुंचा दिया गया। उस पत्र में उन्होंने लिखा, "मैंने देशभक्ति आपके देश से सीखी है। आप लोग इस समय क्या कर रहे हैं? आपके यहां स्वतंत्रता के लिए लड़ने की ऐसी शानदार परंपरा है। हम लोग भी अपने देश की स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं।"

देश के सभी चोटी के नेता जेल के अंदर थे। इसलिए जेल से भागने के बाद जे.पी. स्वाधीनता संग्राम के नायक के रूप में उभरे। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी अपनी विज्ञप्ति (गड़बड़ियों के लिए कांग्रेस की जिम्मेदारी) में उन्हें आंदोलन का नेता माना। गांधी जी ने कड़े शब्दों में इसका जवाब दिया। उन्होंने जे.पी. के विचारों से अपने कुछ मौलिक भेद स्पष्ट करते हुए उनके दुर्दम्य साहस, त्याग एवं अपरिमित राष्ट्रभक्ति की सराहना की और लिखा कि कोई भी देश ऐसे गुणों के लिए गौरवान्वित महसूस करेगा।

आजाद दस्ते का गठन

तोड़फोड़ कर जे.पी. सारी व्यवस्था को ठप कर देना चाहते थे। इसके लिए उन्हें एक सशस्त्र संगठन की आवश्यकता महसूस हुई। इसी उद्देश्य से उन्होंने "आजाद दस्ते" के गठन की योजना बनायी। उनका विचार था कि दस दस की ऐसी टुकड़ियां बनायी जायें जिनका एक नायक हो। उन सबों को हथियार चलाने और तोड़फोड़ करने का प्रशिक्षण दिया जाये और ये टुकड़ियां छापे मारकर अंग्रेजों को परेशान करें। यह निश्चित किया गया कि नेपाल में इसके लिए एक थाना खोला जाये और वहीं लोगों को इस तरह का प्रशिक्षण दिया जाये। इसी समय समाचार आया कि आगा खान महल में गांधी जी ने उपवास शुरू कर दिया है। उनकी हालत नाजुक होती जा रही थी। अच्युत ने जे.पी. को गांधी जी के ऊपर एक पत्रिका तैयार करने को कहा कि यदि कोई अनहोनी हो जाये तो उसकी प्रतियां बंटवायी जायेंगी। बुरी तरह रोते थे गांधी जी के बारे में सोचकर जे.पी. और किसी तरह रो रो कर उन्होंने पत्रिका पूरी की, परंतु सौभाग्य से गांधी जी ठीक हो गये।

बंबई में मद्रास और कलकत्ता होते हुए वे बिहार आये जहां से सहरसा जिले को पार कर नेपाल पहुंचे। पुलिस को धोखा देने के लिए नाटक किया गया—शादी के बाद दुल्हन के साथ वापस घर लौटने का। हाथी पर सज-धज कर जे.पी. आगे आगे चले और पीछे पीछे पालकी में चली अच्युत पटवर्धन की छोटी बहन विजया पटवर्धन।

इस तरह सन् 1943 में नेपाल में आजाद दस्ते का गठन हुआ। हनुमान नगर के निकट लोगों को प्रशिक्षण दिया जाता था। उस समय वहां बिल्कुल जंगल था। प्रशिक्षण में परेड के साथ साथ गोली चलाने, बम फेंकने आदि के बारे में बताया जाता था। साथ

ही साथ प्रशिक्षणार्थियों के बौद्धिक विकास पर भी ध्यान दिया जाता था। भारतीय सेना के कई अवकाश प्राप्त जवान "आजाद दस्ते" में शामिल हो गये और वे युवकों को प्रशिक्षण देते थे। सूरज नारायण सिंह कैप्टेन थे। योगेन्द्र शुक्ल इसके सेनाध्यक्ष (कमांडर-इन-चीफ) थे।

नरसिंह नारायण सिंह, मुरलीधर सिंह, अमीर सिंह, कुलदीप झा, मुनीश्वर प्रसाद सिंह आदि इसके सक्रिय सेनानी थे। भारत के सभी प्रांतों के युवक इसमें शामिल हुए थे। जे.पी. ने आजाद हिंद फौज से भी संपर्क स्थापित किया था और इंडोनेशिया से शस्त्र मंगवाये थे। लखनलाल कपूर अमजोरा, जमालपुर से हथियार ले जाते थे। काफी मात्रा में हथियार एवं गोलाबारूद जमा किया गया था। कुलदीप झा गुरिल्ला युद्ध के तरीकों के बारे में बतलाते थे। उन लोगों ने अपना रेडियो स्टेशन भी स्थापित कर लिया था जिससे प्रसारण होता था। उषा मेहता प्रसारण के काम को देखती थीं। मुजफ्फरपुर, दरभंगा, पूर्णिया आदि जगहों पर परचे छापे जाते थे जिनमें इन गतिविधियों की जानकारी रहती थी। जे. पी. आजाद दस्ते के अध्यक्ष थे और उनके बाद अरुणा आसफअली इस पद पर आयीं।[4]

नेपाल में आंदोलन की गतिविधियां

नेपाल में आजाद दस्ते का काम विधिवत रूप से चलता रहा। वहां के राणा को इसकी पूरी जानकारी थी, किंतु भारत के स्वाधीनता संग्राम से सहानुभूति होने के कारण वह शुरू में तटस्थ रहे। बाद में नेपाल सरकार पर दबाव बढ़ता गया और अंत में जे.पी., लोहिया तथा अन्य चार पांच लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन लोगों को बैलगाड़ी पर बिठाकर हनुमान नगर ले जाया गया। जाते समय जे.पी. एक जगह सुबह सुबह शौच के लिए खुले मैदान में गये। पुलिस वाले उनकी हर गतिविधि पर निगरानी रखे हुए थे। लौटते समय उनकी नजर अपने दल के एक नवयुवक पर पड़ी जो इन लोगों की गिरफ्तारी से दुखी होकर रो रहा था। जे.पी. ने उसे सूरज बाबू के लिए संदेश दिया कि आजाद दस्ते लेकर वे हनुमान नगर आयें और सबों को छुड़ा लें। उस नवयुवक ने संदेश फौरन सूरज बाबू को पहुंचा दिया। हनुमान नगर में उन्हें पुलिस के जवानों के साथ रखा गया। उन पर बंदूकधारी पुलिस का कड़ा पहरा रहता था। दो दिन बाद आजाद दस्ते के करीब 50 जवानों ने बंदूकों तथा हथियारों के साथ वहां पर छापा डाला। एक पहरेदार वहीं पर मारा गया और एक अन्य घायल हो गया। बाकी जवान सोये हुए थे। आंगन में आग लगा दी गयी। सोये हुए सिपाही जागे और आजाद दस्ते के जवानों ने उनकी बंदूकें छीन लीं। इसी बीच जे.पी. और लोहिया भाग निकले। चांदनी रात थी। लगभग 8 मील भागने के बाद हिंदुस्तान में प्रवेश किया। वेश बदल बदल कर कई दिनों बाद कलकत्ता पहुंचे।

जे.पी. महसूस करते थे कि आजादी प्राप्त करने के लिए देशवासियों को स्वयं लड़ना

होगा। जापान इसमें कोई मदद नहीं कर सकता है। उनका स्पष्ट मत था कि विश्वयुद्ध आम लोगों के हित में नहीं है और इसे खत्म करने के लिए दुनिया के आम लोगों को ही संगठित होना पड़ेगा। उन्होंने सुभाष चंद्र बोस से संपर्क करने का अथक प्रयास किया ताकि आजाद दस्ते और आजाद हिंद फौज के बीच संबंध जोड़ा जा सके। सुभाष से संपर्क करने के लिए शीलभद्र याजी को ब्रह्म देश की ओर भेजा गया। लेकिन संपर्क नहीं हो पाया। दरअसल, जे.पी. की छटपटाहट का एक मुख्य कारण यह था कि जनता पूरी तरह नेतृत्वहीन थी। उन्हें इस बात का गुस्सा भी था कि नेतागण बड़े बड़े आह्वान कर दिया करते हैं, लेकिन उसके लिए समुचित तैयारी नहीं करते।

ट्रेन में गिरफ्तारी, लाहौर किले में भीषण यातना

इसके बाद उन्हें विचार आया कि अफगानिस्तान के लोगों से संपर्क किया जाये। इसके लिए सितंबर में वे दिल्ली से रेल द्वारा रावलपिंडी के लिए रवाना हुए। इस बार वे इतने सतर्क नहीं थे और पहली श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। दाढ़ी भी बनवा ली थी और अंग्रेजी लिबास पहन रखा था। पुलिस अधिकारी दिल्ली से ही उन पर नजर रखे हुए थे। 18 सितंबर, 1943 को अमृतसर स्टेशन पर दो सिख और एक अंग्रेज सादी पोशाक में उनके डिब्बे में सवार हुए। उस अंग्रेज ने जे.पी. से टिकट दिखाने को कहा। फिर उसने पूछा, ''क्या आप जयप्रकाश नारायण हैं?'' ''बिल्कुल नहीं। मुझे नहीं मालूम आप किसके बारे में बात कर रहे हैं। मेरा नाम मेहराज मेहता है।''

इस पर उसने पिस्तौल निकाल ली और बोला, 'मिस्टर नारायण यह न तो नेपाल है और न ही बिहार। यह पंजाब है। मुझे आपको मारने का आदेश मिला है। इसलिए कोई गलती न करें। अगर आपने थोड़ी भी चालाकी की तो मैं गोली चला दूंगा।'

उनके सामान की तालाशी ली गयी। जो कागजात मिले उनसे पक्का हो गया कि वे जे.पी. ही हैं। उन्हें हथकड़ी पहनाकर लाहौर के निकट मुगलपुरा स्टेशन पर उतारा गया। वहां उन्हें लाहौर किले में रखा गया जो पहले "शाही किला" के रूप में विख्यात था। वहां जे.पी. को इतनी यातना दी गयी कि बाद में उन्होंने असोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया के साथ एक साक्षात्कार में उसे भारत सरकार का "यातनागृह" (टार्चर हाउस)[5] कहा था।

एक महीने तक उन्हें एकांत अंधेरी कोठरी में रखा गया। उसी में सोने से लेकर खाना-पीना, पेशाब-पाखाना सब। किसी से मिलना जुलना नहीं। एक महीने तक सबसे अलग मौन की स्थिति में रहे। न कोई किताब, न अखबार, न कागज-कलम। ऐसी सख्त हिदायत कि पहरेदार भी कोई जवाब न देता था। दरवाजे के नीचे से भोजन की थाली खिसका दी जाती थी। मेहतर आकर सफाई कर जाता। भिश्ती घड़े में पानी रख जाता। किंतु किसी के साथ एक शब्द भी बोलना मना था।

महीने भर बाद उन्हें रोज जेल के कार्यालय में ले जाया जाता था और उनसे घंटों पूछताछ की जाती थी। शुरू में कुछ दिनों तक पूछताछ की अवधि ज्यादा लंबी नहीं थी, परंतु धीरे धीरे यह समय बढ़ता गया। पहले 8 बजे सुबह से 5 बजे शाम तक हुआ, फिर दस बजे रात तक, और अंत में दिन-रात लगातार पूछताछ होने लगी। कभी कभी थोड़े समय के लिए उन्हें अपने सेल में वापस लाया जाता था, लेकिन जैसे ही वे ऊंघने लगते थे उन्हें फिर कार्यालय ले जाया जाता था। उनसे तरह तरह के सवाल पूछे जाते थे : जेल से कैसे भागे? कहां-कहां रहे? किन लोगों ने मदद की? नेपाल कैसे गये? रावलपिंडी क्यों जा रहे थे? आदि। उन्हें उत्तेजित करने के लिए पुलिस अधिकारी गांधी जी एवं अन्य नेताओं को भद्दी भद्दी गालियां देते थे।

कभी कभी पुलिस वाले खुशामद भी करते कि आप तो महान हैं। गांधी और नेहरू के बाद आपका ही सम्मान है देश में। आप यदि मदद न करेंगे तो हमारी नौकरी चली जायेगी और बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे। इस सबका भी जब कोई असर नहीं हुआ तो यातना और बढ़ा दी गयी। अंत के दस दिनों तक तो पूरे चौबीस घंटे एक ही जगह कुर्सी पर बैठाकर रखा गया। दोनों हाथ पीछे मोड़कर बांध दिये गये और थोड़ी भी झपकी लगती तो गाल पर कसकर तमाचा जड़ दिया जाता।

इन सारी यातनाओं के बावजूद उनका मनोबल नहीं टूटा। उन्होंने लिखा है, "मैं वैसे किन्हीं प्रश्नों का जबाब देने के लिए तैयार था जिनका संबंध मेरी गुप्त गतिविधियों से नहीं था, और जहां तक बयान का सवाल था मुझे इससे ज्यादा कुछ नहीं कहना था कि मैं भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का दुश्मन था (ब्रिटेन या ब्रिटिश राष्ट्रकुल का नहीं), कि मैं अपने देश की स्वाधीनता के लिए काम कर रहा था और यह कि मैं ऐसा करता रहूंगा, जब तक मेरे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती या मेरी मौत नहीं हो जाती।"[6] वे इस बात के प्रति पूरी तरह सचेत थे कि उनकी तरह हिंसा को राजनीतिक हथियार बनाने वालों को इसके लिए तैयार रहना होगा कि उन्हें बलपूर्वक दबाया जायेगा।

अंत में थककर पुलिस ने उनसे पूछताछ बंद कर दी। एक दिन पंजाब सरकार के गृह सचिव ए.ए. मैकडोनाल्ड उनके पास आये और बोले, "आपसे पूछताछ अब समाप्त हो गयी।" उन्हें एक बेहतर कमरे में स्थानांतरित कर दिया गया। उनके आग्रह पर उन्हें अखबार और कागज-कलम दिये गये। पुस्तकें भी दी गयीं। 18 फरवरी, 1944 को उन्हें पहली बार नोट-बुक मिली। अपने एकांत को दूर करने के लिए एक साथी कैदी को साथ रहने देने का भी अनुरोध उन्होंने किया था। उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया गया और राम मनोहर लोहिया को उनके पास भेज दिया गया। पहली बार लोहिया को देखकर उन्हें इतनी खुशी हुई कि सहसा विश्वास नहीं हुआ कि यह हकीकत है या सपना।

इधर पूरे देश में आम चर्चा थी कि लाहौर किले में जे.पी. को बुरी तरह सताया जा

रहा है। इसलिए होमी पारडीवाला, पुरुषोत्तम त्रिकमदास, पूर्णिमा बैनर्जी आदि ने लाहौर उच्च न्यायालय में एक अर्जी दायर की। यहां भी जे.पी. की नैतिकता का एक अन्यतम उदाहरण देखने को मिलता है। वे नहीं चाहते थे कि उनके कार्यकलापों से कांग्रेस की कोई बदनामी हो क्योंकि वे हिंसा का समर्थन करते थे। इसलिए लाहौर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को उन्होंने पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि वे कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य नहीं हैं, और न ही हजारीबाग जेल से भागने के समय वे सदस्य थे।[7] उन्होंने आगे लिखा कि मैं नहीं चाहता हूं कि कार्यकारिणी समिति को किसी भी तरह मेरी हाल की गतिविधियों या विचारों से जोड़ा जाये।

लाहौर किले से आगरा जेल में स्थानांतरण

मित्रों द्वारा दायर अर्जी के परिणामस्वरूप जनवरी, 1945 में 16 महीने बाद उन्हें लाहौर से आगरा के केंद्रीय जेल में ले जाया गया। लोहिया को भी साथ ही आगरा भेज दिया गया। लाहौर किले में उन्हें किस तरह पीड़ा दी गयी, इस बारे में जे.पी. ने स्वयं लिखा, "मैं महसूस करता हूं कि कहीं मैं खूंखार जानवर में न बदल जाऊं। ऐसा मालूम होता है, मानो मेरे अंदर बैर की और बदला लेने की धधकती पाशविक ज्वालाएं उठ रही हैं। अपनी मानवता को बनाये रखने के लिए मुझे अपने आप के साथ बहुत ही जूझना पड़ रहा है। यह काम मुश्किल है, बहुत ही मुश्किल। और, मुझे भरोसा नहीं है कि मैं इसमें पूरी तरह सफल हो पाऊंगा।"[8] लेकिन उन्होंने इस रिपोर्ट का भी खंडन किया कि उन्हें कभी बर्फ की सिल्ली पर बैठाया या सुलाया गया। लोहिया ने किसी तरह जेल में स्वयं तथा जे.पी. को दी जाने वाली यातनाओं की खबर ब्रिटिश लेबर पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष हैरोल्ड जे.लास्की के पास भिजवायी।

उन दिनों अंग्रेज जे.पी. से किस तरह डरते थे इसका जिक्र उनके एक अमेरिकी सहपाठी उजर ने किया है, "दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। अमेरिका के स्टेट डिपार्टमेंट की तरफ से मुझे जर्मनी जाने का आदेश मिला। मैं समुद्र के रास्ते सफर कर रहा था। मेरे केबिन में एक अंग्रेज थे जो हिंदुस्तान से इंग्लैंड जा रहे थे। उन दिनों वे हिंदुस्तान में "टाइम्स आफ इंडिया" के संवाददाता थे। जैसे ही मुझको इसका पता चला, मैंने तुरंत ही बड़ी जिज्ञासा के साथ उनसे पूछा, "मेरे एक हिंदुस्तानी मित्र थे। अमेरिका में मेरे साथ पढ़े थे। काफी लंबे समय से मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिला है। क्या आप उनके बारे में कुछ जानते हैं?" वे भाई उस समय अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे। उन्होंने लेटे लेटे ही मुझसे पूछा कि उनका नाम क्या है? मैंने कहा 'जयप्रकाश नारायण'। मेरे मुंह से यह नाम सुनते ही वे भाई ऐसे चौंके कि हड़बड़ा कर अपने बिस्तर से नीचे आ गिरे। और फिर संभलते संभलते मुझसे पूछने लगे, "क्या वे आपके मित्र हैं? वे तो बहुत ही

खतरनाक आदमी हैं। उन्होंने अकेले ही हिंदुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य की बुनियाद को हिला दिया है। वे आजकल ब्रिटिश जेल में हैं।"[9]

लाहौर किले से लेकर आगरा के केंद्रीय कारागार तक वे समकालीन प्रश्नों से जूझते रहे। दो समस्याओं के प्रति विशेष रूप से चिंतित थे : पहला, युद्ध के प्रति कांग्रेस का रुख और दूसरा, देश का प्रस्तावित विभाजन। विभाजन के बारे में राजगोपालाचारी का वक्तव्य पढ़कर उन्हें गहरा सदमा लगा। उन्होंने लिखा कि भारतीय इतिहास का उच्च विद्यालय स्तर का ज्ञान भी जिसे होगा उसे यह समझने में दिक्कत नहीं होगी कि ऐसे बंटवारे का क्या नतीजा होगा। अगर ऐसा हुआ तो देश की वही स्थिति होगी जो बड़े बड़े साम्राज्यों के समाप्त होने के समय थी। वे देश के किसी भी हिस्से के पृथक होने के अधिकार को मान्यता दिये जाने के विरुद्ध नहीं थे, लेकिन उन्होंने आगे कहा कि इस अधिकार और सीधा सीधा अलग हो जाने में अंतर है। उन्होंने इसके लिए तत्कालीन सोवियत संघ का उदाहरण दिया जहां लेनिन के जमाने से संघों को पृथक होने का अधिकार संविधान में सुनिश्चित किया गया है। उनका विरोध इस बात से था कि हिंदुस्तान में इस अधिकार को नहीं बल्कि सीधा सीधा बंटवारे की मांग की जा रही है। वे मुसलमानों के इस डर को स्वाभाविक मानते थे कि केंद्र सरकार में हिंदुओं का वर्चस्व रहेगा। इसे दूर करने के लिए उन्होंने दो उपाय सुझाये। पहला यह कि केंद्र सरकार के अधिकारों को ठीक से परिभाषित एवं सीमित किया जाये और बाकी शक्ति प्रांतीय सरकारों में निहित हो। यदि केंद्र के पास कम से कम शक्ति होगी तो वह विभिन्न प्रांतों के कार्यकलापों में कम दखलांदाजी कर पायेगी। दूसरा यह सुनिश्चित किया जाये कि केंद्र सरकार में निहित शक्तियों का इस्तेमाल इस प्रकार हो कि मुस्लिम समुदाय के प्रति कोई अन्याय नहीं हो। इसके साथ ही पृथक होने के अधिकार का संविधान में समावेश हो ताकि बहुमत संप्रदाय पर एक अंकुश रहे।

इस बीच 8 मई, 1944 को गांधी जी को तबीयत खराब होने के कारण रिहा कर दिया गया। जून, 1945 में अन्य नेताओं को भी छोड़ दिया गया। किंतु जे.पी. और लोहिया अभी भी आगरा में बंद थे। गांधी जी ने उन दोनों की रिहाई की जोरदार मांग की। कैबिनेट मिशन पर भी दबाव डाला गया और अंततः सरकार को झुकना पड़ा। वायसराय वावेल ने यह कहते हुए मांग मान ली कि अब बहुत सारे ब्लैक गार्ड्स (दुष्टों) को मुक्त करना पड़ रहा है तो एक को और छोड़ने से ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। सिवाय इसके कि जे.पी. एक समझदार और बुद्धिमान दुष्ट हैं।

जेल से रिहाई

11 अप्रैल, 1946 को 31 महीने के कारावास के बाद जे.पी. रिहा हुए। दूसरे दिन जब

वे नयी दिल्ली पहुंचे तो स्टेशन पर उनके स्वागत में जबर्दस्त भीड़ थी। पत्नी प्रभावती भी उनकी अगवानी में पहुंची हुई थीं। अगस्त, 1942 में प्रभावती जी को भी पटना में गिरफ्तार कर भागलपुर भेज दिया गया था। जब आगा खान महल में कस्तूरबा बीमार पड़ीं तो उन्होंने मांग की कि 'मेरी बेटी प्रभावती को मेरे पास बुला दो।' उनके स्वास्थ्य को देखते हुए सरकार ने उनकी मांग मान ली और प्रभावती जी को पुणे ले जाया गया। वहां उन्होंने पूरी तन्मयता से बा की मृत्युपर्यंत सेवा की। सन् 1945 में जब तमाम नेताओं को रिहा किया गया तो प्रभावती को भी भागलपुर जेल से छोड़ा गया। छूटने के बाद वे कभी कभी आगरा जेल मिलने जाती थीं जे.पी. से। जे.पी. के जेल से छूटने के बाद गांधी जी ने फिर उनकी राष्ट्रभक्ति और बहादुरी की सराहना की। लेकिन गांधी जी के एक वक्तव्य से उन्हें गहरा धक्का भी लगा था। सन् 1944 में आगा खान महल से रिहाई के बाद उन्होंने कहा था कि गुप्तता का अहिंसा में कोई स्थान नहीं है। उनकी मान्यता थी कि यदि करोड़ों लोगों की स्वतंत्रता हमारा ध्येय हो, तो हमें गुप्तता का पूरी तरह निषेध करना होगा। उन्होंने यहां तक कह दिया कि कांग्रेस ने ऐसा आंदोलन चलाने की कोई घोषणा कभी की ही नहीं थी। इससे जे.पी. बहुत व्यथित हुए। उन्हें लगा जैसे उनका अपना परिवार उन्हें अस्वीकार कर रहा है। गांधी जी के सिद्धांत पर प्रभावती जी बिल्कुल खरी उतरती थीं और गांधी जी ने एक बार कहा था, "यदि मुझे सच्ची वीरता के लिए किसी को कोई पदक देना हो, तो वह पदक मैं जे.पी. को नहीं बल्कि उनकी बहादुर पत्नी को ही दूंगा।"

अब तक जे.पी. अत्यधिक लोकप्रिय हो चुके थे और अगस्त क्रांति के 'हीरो' के रूप में उनकी चर्चा होती थी। जेल से छूटने के बाद वे दिल्ली और बनारस होते हुए पटना पहुंचे। सबसे पहले पटना के कृष्णाघाट पर उनका भव्य स्वागत हुआ। उसके बाद 21 अप्रैल को बांकीपुर मैदान (वर्तमान गांधी मैदान) में उनका शानदार अभिनंदन किया गया। यह एक ऐतिहासिक सभा थी जिसमें एक लाख से भी ज्यादा लोग जमा हुए। पांच-सात दिनों में इकट्ठा की गयी 16 हजार रुपये की थैली उन्हें भेंट की गयी। इसके अलावा अनेक व्यक्तियों ने वहीं पर उन्हें जेवर आदि भेंट किये। सभा की अध्यक्षता बिहार के प्रथम प्रधानमंत्री डा. श्रीकृष्ण सिंह ने की। सभा की शुरुआत में राष्ट्रकवि दिनकर ने जे.पी. पर लिखी अपनी सुप्रसिद्ध कविता "कहते हैं उसको जयप्रकाश" का पाठ किया जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

झंझा सोई, तूफान रुका
प्लावन जा रहा कगारों में,
जीवित है सबका तेज किंतु
अब भी तेरे हुंकारों में।...

सेनानी करो प्रयाण अभय,
भावी इतिहास तुम्हारा है,
ये नरवत अमां के बुझते हैं,
सारा आकाश तुम्हारा है।...

लौटे तुम रूपक बन स्वदेश को,
आग भरी कुरबानी का,
अब जयप्रकाश है नाम देश की
आतुर, हठी जवानी का।
कहते हैं उसको जयप्रकाश,
जो नहीं मरण से डरता है,
ज्वाला को बुझते देख कुंड में
स्वयं कूद जो पड़ता है।...

वह सुनो, भविष्य पुकार रहा,
वह दलित देश का त्राता है,
स्वप्नों का द्रष्टा जयप्रकाश
भारत का भाग्य-विधाता है।

डा. श्रीकृष्ण सिंह ने उन्हें युवकों का हृदय सम्राट कहते हुए प्रदेश की जनता की ओर से उनका अभिनंदन किया। उन्होंने जे.पी. को लोगों के स्वप्नों और इच्छाओं का प्रतीक बताया और उम्र में बड़े होने के नाते आशीर्वाद दिया कि उनकी आयु लंबी हो ताकि वे अपने सपनों को पूरा होता देख लें।

छात्र कांग्रेस, मोमिन स्टुडेंट्स कांग्रेस, कई महाविद्यालयों तथा कई अन्य संस्थाओं की ओर से उनका अभिनंदन भाषण पढ़ा गया। अंत में जे.पी. स्वयं बोलने उठे। इस भाषण में उन्होंने कांग्रेस नेतृत्व की कड़ी टीका की :

"यह सम्मान मेरा नहीं, 1942 की लोक चेतना का सम्मान है।...अगर हमसे कोई गलतियां हुई हैं तो हम उन्हें जरूर दुरुस्त करेंगे। एक आह्वान तो किया गया, मगर उसके साथ कोई कार्यक्रम नहीं दिया गया। क्या यह नेताओं की भूल नहीं थी?...हिंसा-अहिंसा की बातें की जाती हैं। हम पर हिंसाचार का दोष लगाया जाता है। महात्मा जी की अहिंसा को मैं समझता हूं। उनके सामने मेरा सिर झुकता है। फिर भी चूंकि मेरे पास उनका-सा आत्मबल नहीं है, इसलिए मुझे बंदूक की मदद से लड़ लेना आसान मालूम होता है। और कांग्रेस के नेताओं का भी रुख इससे अलग कहां है? क्या उन्होंने हमें यह नहीं कहा था कि अगर अंग्रेज हमें सत्ता सौंप देंगे, तो हम जापानियों के खिलाफ हथियार लेकर लड़ेंगे?

क्या जापानी इंसान नहीं हैं? अकेले अंग्रेज ही इंसान हैं कि उनके खिलाफ हथियार उठा लेने से हिंसा हो जाती है? इसलिए ये सारी वाहियात बातें हैं। गांधी जी की बात निराली है। उन्हें छोड़कर कांग्रेस के दूसरे नेताओं का अहिंसा में जितना विश्वास है, उतना ही मुझे भी है, और मुझे हिंसा में जितना विश्वास है, उतना ही कांग्रेस के नेताओं को है। इसलिए मेरी राय तो यह है कि सत्ता की राजनीति के लिए अहिंसा की बात का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है।...क्या स्वराज्य कभी बातचीत से आ सकता है? उसके लिए जनता को तैयार करना पड़ता है। मैं महसूस करता हूं कि पूर्ण स्वराज्य इस समय संभव नहीं है, क्योंकि हिंदुस्तान ने उतनी ताकत अभी हासिल नहीं की है।"

उद्धरण

1. ट्रांस्फर ऑफ पावर, भाग-2, पृ. 164
2. सिंह, मुकुटधारी : जयप्रकाश जी का जेल से पलायन (ज्योत्स्ना), पृ. 130
3. जयप्रकाश, पृ. 342
4. श्री शिशिर कुमार एवं श्री मुनीश्वर प्रसाद सिंह से बातचीत के आधार पर
5. बख्शी, एस.आर. : जयप्रकाश नारायण : हिज सोशिलिस्टिक आइडियोलाजी, पृ. 238
6. नारायण, जयप्रकाश : इन द लाहौर फोर्ट, पृ. 169 (देखें—जयप्रकाश नारायण : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 53)
7. नारायण, जयप्रकाश : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 55
8. वही, पृ. 345
9. वही, पृ. 345-6

अंतिम संघर्ष की तैयारी, बंटवारे का विरोध

अप्रैल, 1946 में जेल से छूटने के समय जे.पी. का कई मामलों में कांग्रेस से सैद्धांतिक मतभेद था। पटना में उन्होंने "समाज अध्ययन शिविर" प्रारंभ किया जिसमें साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु एवं जे.पी. के भांजे भक्तमाल सहित अनेक लोग शामिल थे। इसी समय अपने भाषणों में वे दूसरी क्रांति की बात भी करते थे। एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया के साथ एक भेंट में उन्होंने कहा था कि यदि कैबिनेट मिशन के साथ बातचीत टूट जाती है तो दूसरे संघर्ष को रोका नहीं जा सकता है।[1]

संविधान सभा का विरोध

16 मई, 1946 को नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष बने और एक महीने के बाद वायसराय ने उन्हें अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। मिशन की योजना पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक जुलाई में बंबई में हुई जिसमें कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव को 51 के मुकाबले 204 मतों से स्वीकार कर लिया गया। समाजवादियों ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिया था। कांग्रेस संविधान सभा में भी शामिल होने को तैयार थी जिसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा होना था। जे.पी. संविधान सभा में कांग्रेस के शामिल होने के विरुद्ध थे, क्योंकि उसमें सीधे जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि नहीं थे। सन् 1935 के अधिनियम के तहत प्रांतीय सभाओं के सदस्यों का चुनाव 15 प्रतिशत लोग करते थे। इसलिए जयप्रकाश का मत था कि संविधान सभा में 85 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व नहीं हो पा रहा था। इसके अतिरिक्त रजवाड़ों का प्रतिनिधित्व इस तरह का था कि उनके 69 सदस्यों में से 28 उन राजाओं के मनोनीत प्रतिनिधि थे।

जे.पी. ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि समाजवादी पार्टी के सदस्य संविधान सभा का चुनाव नहीं लड़ेंगे। उनका मानना था कि संविधान सभा का गठन ब्रिटिश सरकार ने किया है और यह हमें कभी स्वतंत्रता नहीं दे सकती, जिसके लिए हम वर्षो से लड़ते रहे हैं। कैबिनेट मिशन भारत को स्वतंत्रता देने नहीं आया था, बल्कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच बिचौलिये का काम करने आया था।[2] अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में उन्होंने सुझाव दिया कि कांग्रेस को स्वाधीनता के दूसरे संग्राम के लिए देश को तैयार करना चाहिए।

दूसरी क्रांति

दरअसल, उन दिनों वे दूसरी क्रांति की चर्चा बराबर किया करते थे और इस क्रांति का स्वरूप उनकी नजरों में बिलकुल भिन्न था। वे अपने भाषणों में कहते थे, "इस संघर्ष में हम लोग गिरफ्तार नहीं होंगे, बल्कि हम लोग गिरफ्तार करेंगे। कलक्टर, कमिश्नर, गवर्नर, वायसराय आदि सबकी गिरफ्तारी इसमें होगी। समाजवादी नेता और पूर्व सांसद श्री शिशिर कुमार ने बताया कि जे.पी. इसके लिए पूरी तैयारी शुरू कर चुके थे। आजाद दस्ते के सैनिक हथियार भी जमा कर रहे थे ताकि हथियारबंद लड़ाई लड़ी जा सके। इस समय सत्याग्रह उनके दिमाग में नहीं था। वे स्वाधीनता की लड़ाई के साथ साथ वर्ग संघर्ष भी चलाना चाहते थे। इसके लिए उनकी योजना गांवों में कोई कर नहीं देने का अभियान और किसानों के बीच बकाश्त आंदोलन चलाने की थी।

जे.पी. ने दूसरा संघर्ष शुरू करने की बात इसलिए की क्योंकि दूसरे युद्ध के बाद देश की आर्थिक हालत चरमरा गयी थी। सैनिक बेरोजगार होकर अपने अपने गांवों की ओर लौट रहे थे, युद्ध फैक्टरियां बंद हो रही थीं और चारों ओर असंतोष व्याप्त था। इसलिए उन्हें लगा कि क्रांति के लिए यह सबसे उपयुक्त अवसर है। जे.पी. के अतिरिक्त युद्ध के बाद के हालात के बारे में सिर्फ वायसराय वावेल ने सोचा था। वावेल सेना के आदमी थे और अन्य वायसरायों की तुलना में ज्यादा बुद्धिमान और व्यवहार कुशल थे। उन्हें पता था कि युद्ध के बाद स्थितियां विपरीत होंगी और इससे असंतोष बढ़ेगा। इसी कारण उन्होंने महात्मा गांधी की रिहाई के लिए भी प्रयास किया था। युद्ध के बाद की भयावह स्थिति का सबसे स्पष्ट पूर्वावलोकन जे.पी. और वावेल ने ही किया था।

कर्मचारी संघों का नेतृत्व

इसी समय सरकारी कर्मचारियों के तीन संगठनों की ओर से जे.पी. को अध्यक्ष पद स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा गया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। ये संघ थे--ऑल इंडिया रेवले मेन्स फेडरेशन, ऑल इंडिया पोस्टल इम्प्लाईज एंड ग्रेड-4 स्टाफ यूनियन तथा आल इंडिया आर्डनेंस फैक्टरीज यूनियन एंड डिफेन्स इम्प्लाईज यूनियन। इन संघों का नेतृत्व स्वीकार करने के बाद वे विश्व के एक अतिशक्तिशाली और प्रभावशाली मजदूर नेता के रूप में उभरे। ये सभी इतने बड़े संघ थे कि जे.पी. ब्रिटिश राज को पूरी तरह पंगु बनाने की स्थिति में थे। जब कभी वे ट्रेन से यात्रा करते तो सभी स्टेशनों पर बड़ी संख्या में रेल कर्मचारी उनका स्वागत करने के लिए खड़े रहते। उन्होंने कई प्रांतों की यात्राएं कीं और विभिन्न जगहों पर सभाओं को संबोधित किया। बड़ी संख्या में लोग उन्हें सुनने आते और जगह जगह पर रुपयों की थैलियां भी उन्हें भेंट की जातीं।

अपने भाषणों में उन्होंने लोगों को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अंतिम रूप से लड़ने

को ललकारा। उन्होंने जनता का आह्वान किया कि वे पूरी तरह औद्योगिक हड़ताल कर दें, सन् 1942 की तरह अंग्रेजी प्रशासन को पंगु बना कर अपनी "स्वतंत्र सरकारों" का गठन करें, सचिवालयों में घुसकर दफ्तरों पर कब्जा करें और तमाम सरकारी अधिकारियों को जेल में बंद कर दें। डाक कर्मचारियों की हड़ताल वे सफल ढंग से करवा चुके थे और उन्होंने रेल हड़ताल करवाने की भी चेतावनी दे दी थी।

पूर्ण स्वराज्य से कम वे कोई भी चीज स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। इसी समय जब कांग्रेस अध्यक्ष के नाते जवाहरलाल जी ने उन्हें कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्यता दोबारा ग्रहण करने और लोहिया को पार्टी का महासचिव बनने का निमंत्रण दिया तो दोनों ने प्रस्ताव ठुकरा दिया। जे.पी. ने पंडित नेहरू से पूछा कि क्या संविधान सभा भारत को पूरी तरह स्वतंत्र घोषित कर सकती है?

उनका स्पष्ट मत था कि क्रांति की आग ही साम्राज्यवाद की इमारत को जला कर राख कर सकती है। उन्हें संदेह था कि संविधान सभा एक के बाद दूसरा समझौता करेगी और अंत में न तो स्वाधीनता मिलेगी, न लोकतंत्र और न ही राष्ट्रीय एकता। जब संविधान तैयार किया जाने लगा उस समय भी समाजवादियों का कई महत्वपूर्ण विषयों पर कांग्रेस से गहरा मतभेद था। उदाहरणार्थ जे.पी. ने संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाये जाने का विरोध किया था। इससे भी उनकी सूझ-बूझ और दूरदृष्टि का आभास मिलता है। संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने का परिणाम यह हुआ कि केशवानंद भारती के मामले में उच्चतम न्यायालय ने फैसला दिया कि मौलिक अधिकारों में भी संशोधन किया जा सकता है। 13 न्यायाधीशों की अब तक की सबसे बड़ी पीठ में 6 ने फैसला दिया कि मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता है। छह ने फैसला सुनाया कि संशोधन हो सकता है। एच.आर खन्ना का निर्णय महत्वपूर्ण रहा। उन्होंने निर्णय दिया कि मौलिक अधिकारों में वैसे तो संशोधन नहीं किया जा सकता है, परंतु चूंकि संपत्ति का अधिकार भी मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में शामिल है और उसमें संशोधन किया जा सकता है, इसलिए इस पूरे चैप्टर में संशोधन हो सकता है। चवालीसवें संविधान संशोधन में संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से बदल कर कानूनी अधिकार बना दिया गया। इसलिए लेखक के विचार से केशवानंद भारती के फैसले की समीक्षा होनी चाहिए।

इस तरह के और भी कई मसले थे जिन पर समाजवादियों का रुख भिन्न था। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल ने समाजवादियों की ओर एक वैकल्पिक संविधान की रचना भी की थी। जयप्रकाश चाहते थे कि संविधान ऐसा बने जिसमें राज्य बहुत शक्तिशाली नहीं हो। इस प्रश्न पर वे मार्क्सवादी विचारधारा से इत्तफाक रखते थे कि समय के अंतराल के साथ राज्य इतना कमजोर हो जायेगा कि उसकी कोई दबंग भूमिका नहीं रह जायेगी। नौकरशाही के भी प्रभाव को वे कम से कम

करना चाहते थे। उस समय यूगोस्लाविया में नौकरशाही की भूमिका पर काफी बहस छिड़ी थी और सरकार के कामकाज में नौकरशाही की भूमिका को कम किया जा रहा था। उसी के आसपास यूगोस्लाव ट्रेड यूनियन के उपाध्यक्ष भारत आए थे। जे.पी. ने उनसे भी इस विषय पर विस्तृत बातचीत की।

देश के बंटवारे का विरोध

इसके अतिरिक्त हिंदू-मुस्लिम एकता की समस्या से वे जूझते रहे। देश का बंटवारा उन्हें किसी कीमत पर स्वीकार्य नहीं था। उन्हें आशा भी थी कि बंटवारे की कीमत पर देश के नेता स्वाधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। लाहौर किले की अपनी जेल-डायरी में उन्होंने लिखा है, "स्वतंत्र और अखंड हिंदुस्तान में एक साथ रहने की भरपूर कोशिश करने के पहले ही बंटवारा कबूल कर लेने के खिलाफ मेरा घोर विरोध है। देश के ऐसे बंटवारे से हमारी आज की एक भी समस्या का कोई हल निकलेगा नहीं, बल्कि बंटवारे की वजह से दूसरी बहुत-सी गंभीर समस्याएं उठ खड़ी होंगी।...मेरे मन में मुसलमानों के लिए थोड़ा भी पूर्वाग्रह नहीं है। यदि अपने देश की एकता सुरक्षित रहती हो तो हिंदुओं के प्रभुत्व-संबंधी मुसलमानों के डर को दूर करने के लिए मैं आखिरी हद तक ढील देने और गम खाने को तैयार हूं।"

गांधी जी भी बंटवारे के बारे में ऐसी ही राय रखते थे। उनका स्पष्ट मत था कि कांग्रेस को किसी भी परिस्थिति में देश के विभाजन का समर्थन नहीं करना चाहिए। उन्होंने साफ कहा था कि अंग्रेजों को हिंदुस्तान बिना किसी शर्त के छोड़ना होगा और यदि बंटवारा होना ही है तो अंग्रेजों के जाने के बाद होना चाहिए। उन्होंने विचार रखा कि वायसराय को जिन्ना को निमंत्रण देना चाहिए कि वह मुस्लिम लीग की ओर से सरकार बनायें। अगर वे देश के सभी लोगों के हित में काम करते हैं तो कांग्रेस को उनका समर्थन करना चाहिए। यदि लीग यह प्रस्ताव ठुकरा दे तो कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए। सरदार पटेल और जवाहरलाल ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। गांधी जी को नजरअंदाज कर कांग्रेस कार्यकारिणी ने कैबिनेट मिशन की योजना स्वीकार कर ली। स्थिति ऐसी हो गयी कि माउंटबेटन ने गांधी जी से यहां तक कह दिया, "कांग्रेस आपके साथ नहीं, बल्कि मेरे साथ है।"[3]

हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दरार पैदा करने के लिए उन्होंने अंग्रेजों को भी खूब कोसा। उन्होंने इस प्रचार का जोरदार खंडन किया कि अंग्रेजी हुकूमत के कारण इस देश में एकता आयी। जे.पी. ने इस प्रचार को गोयेबल के झूठ से भी बड़ा करार देते हुए कहा कि ब्रिटेन ने दुनिया को दो बड़े भयावह झूठ कहे हैं। पहला यह कि वह भारतवासियों को शिक्षित करने के लिए भारत पर शासन कर रहा है और दूसरा यह कि भारतवासियों

में जैसे ही एकता आयेगी वैसे ही देश को स्वतंत्र कर दिया जायेगा। उन्होंने कहा कि यदि ब्रिटिश सरकार ने कोई काम किया है तो उसने भारत को तोड़ने का काम किया है।

सांप्रदायिक एकता के लिए प्रयास

विभाजन पर जिस तरह गांधी जी और जे.पी. के विचारों में साम्य था उसी तरह सांप्रदायिक दंगों को भी दफनाने में उनकी भूमिका गांधी जी से मिलती-जुलती थी। सन् 1946 में बिहार में भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए। वे उन दिनों बिहार में नहीं थे, परंतु समाचार पाते ही देश का दौरा रद्द कर बीच में ही पटना वापस आ गये। आते ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के साथियों को बुलाकर विचार-विमर्श किया कि किस तरह इस आग को दबाया जाये। कहां-कहां दंगे हुए, इसकी विस्तृत जानकारी प्राप्त कर स्वयं निकल पड़े कुछ दोस्तों के साथ प्रभावित क्षेत्रों की ओर। पटना, सिटी, फतुहा होते हुए वे हिलसा थाना क्षेत्र में तेलहाड़ा गांव गये। वहां पहुंचते पहुंचते शाम हो गयी, लेकिन लालटेन लेकर मियां-बस्ती देखने गये। एस.एच. रजी, जो उनके साथ गये थे, ने उनकी तेलहाड़ा यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है :

''करीब एक घंटे बाद जे.पी. लौटे। मैंने लालटेन की हल्की रोशनी में देखा, उनकी आंखों से आंसू जारी थे जिन्हें वे रूमाल से बार बार पोंछ रहे थे और रिसती हुई नाक साफ करते जाते थे। आकर चुपचाप दरी पर बैठ गये। जब जरा आंसू थमे तो बोले, अब चलना चाहिए।

''बूढ़ा हाथ जोड़कर बोला, 'सरकार गांव के लोग आपका प्रवचन सुनने आये हैं, दो मिनट कहा जाये।' 'मुझे कुछ नहीं कहना है। आप लोगों ने यहां जो रक्तपात किया है, उसके बाद क्या मुझसे शाबाशी लेना चाहते हैं?' फिर अचानक ही कुछ सोचकर खड़े हो गये और बोले :

''आप लोगों ने भारत माता के चेहरे पर कालिख पोत दिया है। मैं अभी अपनी आंखों से आप लोगों की बर्बरता देखकर आ रहा हूं। मैंने अपने जीवन में ऐसा भयंकर दृश्य कभी नहीं देखा। शायद आपने भी नहीं देखा होगा। ये लोग आपके साथ सदा से रहते आये थे। जिन्हें आप कल तक शायद काका, मामू, भाई, बेटा, बेटी कहते होंगे, उन्हीं को काटकर रख दिया आपने। कैसे हाथ उठा आपका इन निर्दोष निहत्थे बच्चों, औरतों, मर्दों, बूढ़ों पर? यह कैसा पागलपन सवार हो गया आप पर अचानक, मनुष्य से पशु बन गये। मानव से दावन बन गये आप? मुझे सिपाही जी ने बताया, गांव में कोई भी मुसलमान जीवित नहीं बचा... उन्होंने बताया कि घरों, गलियों और मस्जिद तक में लाशें ही लाशें थीं, जिन्हें कल ही हटाया गया है। मैंने एक कुएं में टॉर्च से देखा। उसमें

अभी तक बहुत सी लाशें दिखायी दीं। दुर्गंध उठ रही थी, उनमें से। मैं पूछता हूं यह क्या किया आपने, क्यों किया आपने?

'नोआखाली में...' एक कोने से आवाज आयी।

'नोआखाली।' जे.पी. का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। बीच ही में उसकी बात काटकर बोले, ''नोआखाली की बात करते हैं आप! बड़े बहादुर थे तो क्यों नहीं गये वहां, भाइयों को बचाने? बहादुरी दिखाई भी तो इन निहत्थों पर। क्या बिगाड़ा था आपका इन्होंने? नोआखाली का बदला लिया है आपने, यही न? इनमें से कौन गया था, नोआखाली हिंदुओं को कत्ल करने? वहां का बदला आपने यहां लिया, बेकसूरों से! तो, यहां का बदला पंजाब में लिया जाये, पंजाब का यू.पी. में! याद रखिए, अगर बदले का यही सिलसिला चलता रहा, तो पूरे देश के शहर शहर में, गांव गांव में लोग मारे जायेंगे, घर जलाये जायेंगे, पूरा देश जल जायेगा, भारत तबाह हो जायेगा।....

''जे.पी. जिस प्रकार अचानक खड़े हुए थे, उसी प्रकार अचानक बैठ गये। सबके सिर झुके हुए थे।

'माफ कर दिया जाये, सरकार', बूढ़ा हाथ जोड़कर बोला, 'नौजवानों का खून गरम होता है। भूल हो गयी।'

''नौजवानों का खून गरम होता है। आप तो नौजवान नहीं हैं, आपका खून तो ठंडा है। क्यों नहीं आप खड़े हो गये बीच में? पहले मेरी जान ले लो, तो आगे बढ़ो। किया आपने ऐसा? माफी मांगते हैं, भूल हो गयी। मैं कौन होता हूं माफ करने वाला। आपने तो माफ करने वालों को जान से मारकर माफी का दरवाजा भी बंद कर लिया, अपने पर।

जे.पी. खड़े हो गये चलने को। बूढ़े ने फिर हाथ जोड़ा, 'सरकार, कुछ जलपान तैयार किया है। निराश मत कीजिए।'

''मैं एक चुल्लू पानी भी नहीं पीऊंगा यहां का। उसमें भी पानी के बदले खून दिखायी देगा।

''और काफिला हिलसा के लिए चल पड़ा। रात वहीं बितानी थी।

''उस रात न तो जे.पी. ने कुछ खाया, न वे सो ही सके। वे कभी बिस्तर पर करवटें बदलते, कभी उठकर बैठ जाते और कभी डाक बंगले के बरामदे में जाकर टहलने लगते। इसी प्रकार कई अन्य दंगाग्रस्त क्षेत्रों का भी उन्होंने दौरा किया।''[4]

भारत-पाकिस्तान मित्रता की हिमायत

हिंदू-मुस्लिम एकता के इतने बड़े हिमायती थे कि विभाजन के बाद भी इस दिशा में प्रयासरत रहे और भारत-पाकिस्तान संबंधों को बेहतर बनाने की कोशिश में संलग्न रहे। इसके लिए

उन्होंने गांधी जी की हत्या के बाद ''इंडो-पाक रिकंसिलिएशन कमेटी'' का गठन किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि दोनों देशों का विकास तब तक संभव नहीं है जब तक कि दोनों के आपसी संबंध ठीक न हों। वे ऐसा नहीं मानते थे कि पाकिस्तान के साथ भारत के विवाद सुलझ नहीं सकते क्योंकि पाकिस्तान का अस्तित्व ही भारत विरोध पर टिका है। श्री जे.जे. सिंह इस समिति के अध्यक्ष थे। श्री सिंह ने स्वाधीनता संग्राम के दौरान अमेरिका में ''इंडिया लीग'' का गठन किया था। इसलिए जे.पी. से उनकी निकटता हो गयी। बाद में दिल्ली जाने पर वे जे.जे. सिंह के यहां ही ठहरते थे।

कश्मीर के प्रश्न पर भी उनके विचार औरों से भिन्न थे। शुरू में उन्होंने इस पर जनमत संग्रह का समर्थन किया, परंतु बाद में उन्होंने अपना दृष्टिकोण बदला। जब शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी हुई तो उसका भी उन्होंने विरोध किया। उनकी ऐसी मान्यता थी कि शेख अब्दुल्ला को अलग-थलग कर कश्मीर समस्या का हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता।

अंत तक उनके इस विचार में कोई परिवर्तन नहीं आया कि देश का विभाजन एक गलत निर्णय था और बंटवारे के बाद दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध के बिना किसी तरह का विकास संभव नहीं है। सन् 1964 में पश्चिम बंगाल गांधी स्मारक निधि के वार्षिक सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि स्वाधीनता के बाद 17 वर्षों के अनुभव से यदि कोई बात प्रमाणित हुई है तो वह यह कि बंटवारे से किसी भी समस्या का हल नहीं हुआ है। उन्होंने सलाह दी कि भारत और पाकिस्तान के नेताओं को एक साथ बैठकर कश्मीर सहित सभी विवादों का समाधान ढूंढ़ना चाहिए। जे.पी. के इस अथक प्रयास को देखते हुए ही पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खान ने कहा था, ''काश! पाकिस्तान में भी एक जयप्रकाश नारायण होता।'' अयूब खान ने ''संयुक्त प्रतिरक्षा'' की नीति अपनाये जाने का भी सुझाव दिया था और पंडित नेहरू ने दोनों राष्ट्रों के बीच कोई युद्ध न करने की आवश्यकता पर बल दिया था। अयूब खान ने जब ''मौलिक लोकतंत्र'' की अवधारणा का प्रतिपादन किया तो जे.पी. ने मुक्त कंठ से उसकी सराहना की। इसमें श्री खान ने सत्ता के विकेंद्रीकरण और विकासशील देशों के बीच एकता का समर्थन किया था। जे.पी. ने विचार व्यक्त किया कि मौलिक लोकतंत्र की अवधारणा सर्वोदय से मिलती जुलती है। उन्होंने पाकिस्तान की यात्रा भी की ताकि इसे एक ठोस स्वरूप दिया जा सके।

उद्धरण

1. बख्शी, एस.आर. : जयप्रकाश नारायण : हिज सोशलिस्टिक आइडियोलाजी, पृ. 239
2. दि एनुअल रजिस्टर, भाग-2, 1946 (देखें—जयप्रकाश नारायण : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 63)

3. कृपलानी, जे.बी : गांधी : हिज लाइफ एंड थाट (पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1970, पृ. 281)
4. रजी, स.अ. : महामानव : जयप्रकाश (स्मारिका, 26 जून 1987) पृ. 24-5

●

राजसत्ता से दूर, गांधी की ओर आकृष्ट

गांधी जी के विचारों के प्रबल विरोधी होते हुए भी कई मायनों में जे.पी. पूर्णतः गांधीवादी थे। बाद में तो वह धीरे धीरे गांधी जी की ओर खिंचते गये और अंत में पूरी तरह उनकी विचारधारा से सराबोर हो गये। लेकिन उनके विचारों को आत्मसात करने के पहले भी जिन मुद्दों पर गांधी जी और जे.पी. की सोच में साम्य है वह है लोकनीति में दोनों की अटूट आस्था। गांधी जी हमेशा लोकसत्ता को मजबूत बनाने के पक्षधर रहे क्योंकि उनका मत था कि मात्र राजसत्ता के जरिये कोई व्यापक परिवर्तन समाज में नहीं लाया जा सकता है। इसी कारण आजादी प्राप्त होने के बाद उन्होंने कांग्रेस को भंग कर 'लोकसेवक संघ' बनाने की सलाह दी थी। अपनी हत्या के एक दिन पहले 29 जनवरी, 1948 को गांधी जी ने कांग्रेस के संविधान में सुधार करने के लिये एक मसविदा तैयार किया था। इसमें उन्होंने लिखा, "कांग्रेस ने देश को स्वाधीनता दिलाकर एक बहुत बड़ा काम किया है। किंतु अभी उसे बहुत बड़े बड़े काम करने हैं। देश को राजकीय स्वतंत्रता मिली है किंतु अभी जनता की और खासकर गांवों की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनी बाकी है। भारत लोकतंत्र की दिशा में जैसे जैसे आगे बढ़ता जायेगा, वैसे वैसे नागरिक शक्ति और सैनिक शक्ति के बीच संघर्ष खड़ा होने की संभावना है। इसलिए सैनिक शक्ति नागरिक शक्ति के नियंत्रण में रहे, ऐसी समाज रचना हमें करनी है।"[1]

लोकनीति में विश्वास

जे.पी. ने भी शुरू से अपने को सत्ता की राजनीति से अलग रखा। संविधान सभा का भी उन्होंने विरोध किया और जीवन में कभी कोई चुनाव नहीं लड़ा। इस बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है, "दुनिया में बड़ी बड़ी क्रांतियां हुईं, इंकलाब हुए। फ्रांस में क्रांति हुई, रूस में क्रांति हुई, अमेरिका स्वतंत्र हुआ, वह भी एक क्रांति हुई, चीन में क्रांति हुई। दुनिया की ये सभी क्रांतियां सफल हुईं, उसके बाद क्या हुआ? हर एक क्रांति में हमें यह देखने को मिलता है कि उस क्रांति का सबसे बड़ा नेता अपने देश के सर्वोच्च सिंहासन पर जा बैठा, उसने सरकार की बागडोर अपने हाथ में ले ली। क्रांति का उद्देश्य पूरा करने के लिए, परिवर्तन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, नये समाज का निर्माण करने के लिए

हर एक ने सत्ता ग्रहण की। अमेरिका में जार्ज वाशिंगटन ने ऐसा किया। फ्रांस में एक के बाद एक नेता सत्ता अपने हाथ में लेते रहे। रूस में लेनिन ने भी सत्ता ग्रहण की। चीन, तुर्की, अल्जीरिया, क्यूबा सभी जगह ऐसा ही हुआ। केवल गांधी जी ही एक ऐसे नेता निकले, जिन्होंने अपने हाथ में सत्ता नहीं ली। ... उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनके उद्देश्यों की पूर्ति सत्ता द्वारा नहीं हो सकेगी। यह उनके चिंतन का सार था। ... भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन एक सर्वोत्तम जन-आंदोलन था। वह राजनीति यानी राज्य की राजनीति नहीं थी, बल्कि लोकनीति यानी जनता की राजनीति थी।"[2]

जे.पी. के इस विचार और निष्ठा से गांधी जी बेहद प्रभावित थे। लोकसत्ता को संगठित करने में वे जे.पी. एवं उनके मित्रों की मदद चाहते थे। जब कांग्रेस ने सरकार का गठन कर लिया तो गांधी जी ने सलाह दी कि संगठन समाजवादियों के हाथ में सौंप दिया जाना चाहिए। सन् 1947 में एक बार उन्होंने जे.पी. से कहा था, "मैं तुम्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहता हूं। तुम्हारी वीरता और तुम्हारी बहादुरी का लाभ उठा लेना चाहता हूं।"[3] उन्होंने नेहरू जी के समक्ष भी यह प्रस्ताव रखा, लेकिन नेहरू जी ने आचार्य नरेन्द्र देव का नाम यह कहते हुए सुझाया कि वे जे.पी. से सीनियर हैं। अंत में वह भी नहीं हो पाया और डा. राजेन्द्र प्रसाद अध्यक्ष बनाये गये।

वैचारिक मतभेदों के बावजूद शुरू से ही जे.पी. के मन में गांधी जी के लिए सम्मान था। मार्क्सवादी होते हुए भी वे हमेशा गांधी जी को चरण छूकर प्रणाम करते थे। उनके मित्रों को इससे हैरानी भी होती थी। कहीं न कहीं गांधी जी के व्यक्तित्व का जादू उनके ऊपर था। जिन दिनों हिंसक तरीकों से वे सत्ता को उखाड़ फेंकना चाहते थे उन दिनों भी गांधी जी की आलोचना वे बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। इसका एक उदाहरण उनकी जेल-डायरी में मिलता है जब वे लाहौर किले में बंद थे। उन दिनों अखबारों में महात्मा गांधी की अहिंसा के बारे में कड़ी टिप्पणी छपी थी और जिन्ना का यह विचार भी प्रकाशित हुआ था कि गांधी जी के गलत कार्यक्रम के कारण सारा देश तबाह हो गया। जे.पी. ने लिखा, "जिन्ना वगैरा अहिंसा के सिद्धांत के बारे में कुछ भी क्यों न कहते हों, लेकिन अगर कभी भी उनके अंदर पाकिस्तान या और कुछ पाने के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने की हिम्मत पैदा होगी, तो उस समय वे तलवार या रायफल का सहारा नहीं लेंगे, बल्कि, किसी-न-किसी तरह के नागरिक प्रचार का सहारा ही उन्हें लेना पड़ेगा। यदि आम मुसलमानों के बीच में जाकर उन्हें कोई काम करना होगा, तो वे बम बनाने का काम लेकर नहीं जा सकेंगे। उन्हें किसी-न-किसी प्रकार का रचनात्मक काम लेकर ही जाना पड़ेगा। मैं खुद अहिंसा में विश्वास रखता हूं ऐसी कोई बात नहीं है। इसके बावजूद, मैं निश्चित रूप से यह मानता हूं कि भारत के निहत्थे लोगों को शांत प्रतिकार की पद्धति सिखाकर गांधीजी ने देश की सबसे बड़ी सेवा की है।"

साध्य और साधन

धीरे धीरे जे.पी. के मन में अहिंसा के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा था। रूस की क्रांति और उसके बाद घटी घटनाओं का उनकी विचारधारा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। रूस में हिंसा के जरिये सत्ता में परिवर्तन लाया गया, किंतु बाद में उसी हिंसा का इस्तेमाल कर उसी क्रांति के प्रणेताओं को खत्म किया गया और दमन एवं आतंक का साम्राज्य शुरू हुआ। इसके विरुद्ध उनके मन में भीषण प्रतिक्रिया हुई और वे साधन और साध्य के संबंध पर गहन चिंतन करने लगे। उन्होंने महसूस किया कि शुद्ध साध्य तक पहुंचने के लिए साधन का शुद्ध होना अत्यावश्यक है। गांधी जी की हत्या के बाद हिंसा से उनका विश्वास पूरी तरह हिल गया। सन् 1948 में नासिक में आयोजित समाजवादी पार्टी के छठे राष्ट्रीय सम्मेलन में पार्टी के महामंत्री की हैसियत से पेश अपनी रिपोर्ट में उन्होंने दो टूक शब्दों में लिखा कि शुद्ध साधन के बिना समाजवाद की स्थापना नहीं की जा सकती है, "महात्मा गांधी ने हमें बहुत बातें सिखायी हैं, परंतु उनकी सबसे बड़ी सिखावन यह है कि साधन ही साध्य हैं, यह कि बुरे साधनों से कभी अच्छे परिणाम नहीं निकल सकते, और यह कि अच्छे साध्यों की प्राप्ति के लिए साधन भी अच्छे होने चाहिए। हममें से कुछ लोग इस सत्य के प्रति शंकालु रहे होंगे। परंतु हाल की जागतिक घटनाओं ने तथा अपने देश की घटनाओं ने मुझे यह प्रतीति करा दी है कि अच्छे साधनों के सहारे ही अच्छे समाज के लक्ष्य पर, जिसे समाजवाद कहा जाता है, हम पहुंच सकते हैं।"[5]

गांधी जी की हत्या ने उन्हें बुरी तरह झकझोर दिया था। इस हत्या के बाद उन्होंने एक वक्तव्य जारी कर श्री रमण महर्षि और श्री अरविंद जैसे आध्यात्मिक पुरुषों से अपील की, कि वे अपना एकांत छोड़कर बाहर आएं और समाज को नयी दिशा दिखाएं क्योंकि अभी आध्यात्मिक पुनरुत्थान की आवश्यकता है। उनके इस वक्तव्य से लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक मार्क्सवादी को आध्यात्मिक पुनरुत्थान की जरूरत महसूस होने लगी है। नासिक अधिवेशन में ही उन्होंने इसकी भी चर्चा की, "उस दिन जब मैंने अपने एक वक्तव्य में आध्यात्मिक पुनर्जीवन की बात कही तो आप में से कुछ लोगों ने शायद सोचा होगा कि मैं हाल की घटनाओं से अत्यंत विचलित होकर जीवन की कठोर वास्तविकताओं से भागने की कोशिश कर रहा हूं। आप में से जिन लोगों ने यह सोचा होगा, वे पूरे भ्रम में हैं।...मैं अचानक आत्मा या ब्रह्म जैसी किसी वस्तु में विश्वास नहीं करने लगा हूं। मेरा जो दर्शन है, वह पार्थिव है, मानवीय है। समाज में जैसे लोगों के साथ मैं जीना चाहता हूं, उनका रूप क्या हो, यही मेरी चिंता का विषय है। स्पष्टतः मैं ऐसे समाज में जीना नहीं चाहता जो मिथ्याभाषियों और हत्यारों का समाज है जिसमें सज्जनता, सहिष्णुता और बंधुत्व-भावना न हो।"[6]

जे.पी. चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में समाज की संरचना का आधार समता के साथ साथ नैतिकता भी हो। उनका दृढ़ मत था कि यह काम जनसाधारण के सहयोग से ही संभव है, राज्य के द्वारा नहीं। नासिक अधिवेशन में उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया, "कोई मनुष्य जन्म से ही अच्छा नहीं होता। वह प्रशिक्षण से अच्छा बनता है। इसलिए, यदि हमारे दल का लक्ष्य केवल सुप्रबंधित भोजन, वस्त्र एवं आवासयुक्त पशु पैदा करना नहीं है, बल्कि अच्छे मनुष्य भी पैदा करना है, तो मैं कहूंगा कि हमारा समस्त राजनीतिक कार्य कुछ नैतिक मूल्यों से अवश्यमेव प्रेरित होना चाहिए। ... कुछ लोग यह विचार रखते हैं कि सब राजनीति सत्ता की राजनीति है। मैं इसे एक विनाशकारी दृष्टिकोण मानता हूं। ... सब राजनीति सत्ता की राजनीति है, इस सिद्धांत का मूल आधार यह है... कि राज्य ही सामाजिक हित का एकमात्र साधन है। ... मैं इस दृष्टिकोण को पूरी तरह अस्वीकार करता हूं। आज कांग्रेस ने तो राज्य को अधिकृत कर लिया है, परंतु हर चिंतनशील कांग्रेसजन यह स्वीकार करेगा कि यदि कांग्रेस सामाजिक परिवर्तन एवं विकास की दिशा में हर कदम के लिए राज्य पर ही निर्भर करेगी तो वह अपनी ही जड़ काटेगी।...लोकतंत्र के लिए आवश्यक है कि राज्य पर जनता की निर्भरता यथासंभव कम-से-कम हो। और, महात्मा गांधी तथा कार्ल मार्क्स दोनों के अनुसार, लोकतंत्र की सर्वोच्च स्थिति वह होगी जिसमें राज्य का लोप हो जायेगा।"[7]

जे.पी. की विचारधारा गढ़ने में एरिक फ्राम का बहुत प्रभाव पड़ा। लाहौर किले में उन्होंने उनकी पुस्तक "फियर ऑफ फ्रीडम" पढ़ी थी और उससे बहुत प्रभावित हुए थे। इसमें उन्होंने मानवतावादी समाजवाद की अवधारणा का प्रतिपादन किया है जिसमें व्यक्ति को केंद्र में रखा गया है। एरिक फ्रॉम ने इसे "डिमोक्रेटिक सोशलिज्म" (लोकतांत्रिक समाजवाद) नाम दिया। जे.पी. को यह पूरी तरह स्वीकार्य था। मार्क्सवाद में थोड़ा फेरबदल कर वह जिस विचारधारा को आगे बढ़ाना चाहते उसे उन्होंने भी 'लोकतांत्रिक समाजवाद' ही कहा।

कांग्रेस से अलग होने का फैसला

जे.पी. के विचारों की छाप समाजवादी पार्टी पर भी पड़ रही थी। उनका कांग्रेस की नीतियों से मोहभंग हो रहा था। इसलिए फरवरी, 1947 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कानपुर अधिवेशन में पार्टी के नाम से 'कांग्रेस' हटाने का निर्णय किया गया। इस फैसले के पीछे भी जे.पी. के विचारों का महत्वपूर्ण योगदान था। यह भी तय हुआ कि समाजवादी पार्टी की सदस्यता के लिए कांग्रेस का सदस्य होना अनिवार्य नहीं होगा। जे.पी. समाजवादी पक्ष को कांग्रेस से पूरी तरह अलग करने के हिमायती थे। अंततः सन् 1948 के नासिक अधिवेशन में कांग्रेस छोड़ने का सर्वसम्मति से निर्णय किया गया। हालांकि आचार्य नरेन्द्र

देव, डा. राम मनोहर लोहिया आदि कांग्रेस से पूरी तरह अलग होने के पक्ष में नहीं थे, लेकिन उन लोगों ने जे.पी. का विरोध नहीं किया। आचार्य जी का विचार था कि अभी स्थिति इतनी परिपक्व नहीं हुई है कि कांग्रेस से संबंध बिलकुल तोड़ लिया जाये। इसके अलावा वे यह भी मानते थे कि स्थिति ऐसी बनती जा रही है कि अपने आप ही समाजवादियों को कांग्रेस से निकाल दिया जायेगा।

जे.पी. ने कांग्रेस छोड़ने के बारे में गांधी जी से भी परामर्श किया। गांधी जी ने इसका सैद्धांतिक विरोध नहीं किया, लेकिन कहा कि इससे समाजवादियों को कठिनाई होगी। जे.पी. ने गांधी जी से स्पष्ट किया कि लोकतंत्र में सत्ता पक्ष के साथ साथ एक विरोधी पक्ष का होना भी आवश्यक है। गांधी जी ने विश्वास व्यक्त किया, "ठीक है। मैं जानता हूं कि तुम जहां रहोगे, वहां देश की सेवा करोगे। बहादुर हो।"[8] नेहरू जी से भी जे.पी. की इस बारे में चर्चा हुई। नेहरू जी ने उन्हें पत्र लिखा, "यदि हम लोग अलग ही हो रहे हैं तो हम दोस्त की तरह अलग हों, दुश्मन की तरह नहीं।"

कांग्रेस से अलग होने के बाद आचार्य नरेन्द्र देव ने अपने 13 समर्थकों के साथ उत्तर प्रदेश विधान सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। बिहार में फूलन प्रसाद वर्मा और दो अन्य विधायकों ने त्यागपत्र दिया। उस समय कोई दल बदल विरोधी अधिनियम नहीं था। नेहरू जी ने भी उन लोगों से कहा कि इस्तीफे की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन आचार्य नरेन्द्र देव ने राजनीतिक नैतिकता के आधार पर ऐसा किया कि जिस दल के टिकट पर लोग निर्वाचित हुए हैं उसे छोड़ने के बाद उन्हें फिर से जनादेश प्राप्त करना चाहिए। सन् 1946 के विधान सभा चुनाव के समय नरेन्द्र देव उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, इसलिए बहुत सारे समाजवादियों को टिकट मिला था। इस कारण आचार्य जी अपनी जिम्मेदारी और भी ज्यादा समझते थे। जे.पी. भी उनके इस विचार से पूरी तरह सहमत थे। यह बात दीगर है कि बाद में उपचुनाव में वे सभी पराजित हो गये। उपचुनाव में जे.पी. ने भी समाजवादियों के पक्ष में जोरदार प्रचार किया। आचार्य नरेन्द्र देव को फैजाबाद से कांग्रेस के बाबा राघवदास ने हराया। लेकिन इस हार के बावजूद समाजवादियों को इस्तीफा देने के अपने फैसले पर कोई अफसोस नहीं हुआ।

जे.पी. अपनी पार्टी के तथा अन्य लोगों को यही समझाते रहे कि राजनीति का मतलब सिर्फ सत्ता पर कब्जा करना नहीं है। उन्होंने समाजवादियों को यह भी सलाह दी कि वे लोगों को समझाएं कि कांग्रेस का विरोध करना देश का विरोध करना नहीं है। वैसे बाद में जे.पी. को यह अहसास हुआ कि कांग्रेस छोड़ने के बजाय यदि समाजवादी विचारधारा के लोग कांग्रेस के अंदर रहते तो कांग्रेस की नीति को प्रभावित कर समाजवादी व्यवस्था जल्द लायी जा सकती थी। जीवन के अंतिम वर्षों में व्यक्तिगत बातचीत में अपनी इस भावना का वह इजहार करते थे।

बापू की हत्या–सरकार की कड़ी आलोचना

कांग्रेस के प्रति उनका विरोध तब और मुखर हो गया जब गांधी जी की हत्या हो गयी। बापू की निर्मम हत्या से जे.पी. बहुत विचलित हुए और उन्होंने वक्तव्य जारी किया कि जो सरकार राष्ट्रपिता की रक्षा कर पाने में भी अक्षम है उसे सत्ता में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने मांग की, कि या तो केंद्र सरकार इस्तीफा दे या नहीं तो कम-से-कम गृहमंत्री, सरदार वल्लभभाई पटेल इस्तीफा दें। जे.पी. की इस मांग पर देश-विदेश में काफी चर्चा हुई। उन दिनों उनके संवाददाता सम्मेलनों में अंतर्राष्ट्रीय अखबारों एवं एजेंसियों के प्रतिनिधि आते थे। एक ऐसे ही संवाददाता सम्मेलन में उनसे पूछा गया कि वे गृहमंत्री की इतनी आलोचना कर रहे हैं तो क्या वे स्वयं गृहमंत्री का पद स्वीकार करेंगे यदि पटेल इस्तीफा दे दें और उन्हें इस पद के लिए आमंत्रित किया जाय? जे.पी. ने उत्तर दिया कि वैसे सत्ता की राजनीति में उनका विश्वास नहीं है, परंतु समय की ऐसी मांग यदि हुई तो वे पीछे नहीं हटेंगे। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश की जनता को दो बार आकाशवाणी से संबोधित किया। इसमें उन्होंने गृहमंत्री से इस्तीफा मांगने का यह कहकर विरोध किया कि इसमें सिर्फ गृहमंत्री नहीं वरन् पूरी सरकार की जिम्मेदारी है। इसी संबोधन में उन्होंने जे.पी. के बारे में कहा कि एक दिन वे (जे.पी.) देश की तकदीर गढ़ेंगे। नेहरू जी के मन में जे.पी. के लिए उत्कट स्नेह था और वे जे.पी. को साथ लेकर चलना चाहते थे, लेकिन जे.पी. हमेशा सत्ता से बचंते रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जे.पी. धीरे धीरे गांधी जी के काफी नजदीक आ चुके थे। उनकी हत्या के ठीक एक दिन पहले 29 जनवरी, 1948 को जे.पी. और प्रभावती जी बापू से अलग हुए। जे.पी. बंबई गये और प्रभावती जी पटना। बापू की हत्या का समाचार सुनकर जे.पी. फौरन दिल्ली वापस हो गये और उनकी शवयात्रा में शामिल हो पाये। किंतु प्रभावती जी अथक प्रयास के बाद भी समय से दिल्ली नहीं पहुंच पायीं। हवाई जहाज में उन्हें जगह नहीं मिली और किसी प्रकार रेलगाड़ी से तीसरे दिन दिल्ली पहुंचीं जब उनका पार्थिक शरीर पंचतत्व में विलीन हो चुका था। प्रभावती जी को हमेशा इस बात का पछतावा रहा कि केवल एक दिन के लिए उन्हें बापू से अलग होना पड़ा। यह भी एक विडंबना ही है कि जिन्हें बापू ने बतौर दत्तक पुत्री हमेशा साथ रखा वह उनकी अंतिम घड़ी में उनके पास न रह पायीं। दो वर्ष पहले पिता ब्रजकिशोर प्रसाद का देहावसान हुआ था और अब उनके दूसरे पिता भी गुजर चुके थे।

11 फरवरी, 1948 को जे.पी. और प्रभावती जी गांधी जी की अस्थि के साथ एक विशेष ट्रेन से, जिसमें तृतीय श्रेणी के पांच डिब्बे लगाये गये थे, इलाहाबाद के लिए रवाना हुए। गांधी जी के सादगी के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए ट्रेन में तृतीय श्रेणी के डिब्बे

लगाये गये थे। इलाहाबाद में लाखों लोगों के बीच गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम पर बापू की अस्थियां प्रवाहित की गयीं। वहां से वे दोनों पटना लौट गये।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार-यात्रा (सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी), 1974, पृ. 34
2. वही, पृ. 32-4
3. जयप्रकाश, पृ. 354
4. वही, पृ. 355-6
5. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र (अनुवाद सच्चिदानंद, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना), 1973, पृ. 69
6. वही, पृ. 69
7. वही, पृ. 69-71
8. जयप्रकाश, पृ. 358

ग्राम निर्माण का काम और पहला आम चुनाव

कांग्रेस पार्टी से संबंध विच्छेद होने के बाद जे.पी. अपने समाजवादी मित्रों के साथ लोकशक्ति को मजबूत बनाने और ग्राम निर्माण के काम में जुट गये क्योंकि उन्होंने कई बार जोर देकर कहा था कि लोकतंत्र के स्वस्थ विकास के लिए राज्य पर निर्भरता कम से कम की जानी चाहिए। जन-जागरण और पार्टी के संगठन का काम करने के लिए उन्होंने देश व्यापी यात्राएं शुरू कीं। इसी क्रम में अप्रैल, 1949 में बिहार में एक मोटर दुर्घटना में वे घायल हो गये। उनके दाहिने हाथ की हड्डी टूट गयी और प्रभावती जी को सिर में चोट लगी। उनके हाथ पर तीन महीने तक प्लास्टर चढ़ा रहा।

इस दुर्घटना से भी उन्हें सीख मिली। तीन महीने बाद प्लास्टर खोलने पर उन्होंने देखा कि हाथ एकदम सूख गया है। फिर उन्हें महीनों तक उसकी सेवा करनी पड़ी। डाक्टर ने कुछ कसरत बतायी और तब खून का बहाव शुरू हुआ और हाथ में पुनः चेतना लौट आयी। जे.पी. ने लिखा है, "इसी तरह हमारे देश में जो लोकशक्ति थी, उसकी शक्ति आज कपूर की तरह उड़ गयी लगती है। कारण यह है कि वह शक्ति सौ-डेढ़ सौ वर्षों तक गुलामी के प्लास्टर में बंद थी।"[1]

जनता के सहयोग से ग्राम निर्माण का काम करने के लिए सोशलिस्ट पार्टी ने 'राष्ट्र के लिए रोज का एक घंटा' के नाम से एक कार्यक्रम शुरू किया। इसके अंतर्गत शिविरों, सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामोद्योग, भूमि-सुधार जैसे विषयों पर लोगों का मार्गदर्शन किया जाता था। जे.पी. विनोबा भावे और जे.सी. कुमारप्पा जैसे लोगों से सलाह लेते रहते थे और रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अपने शिविरों में बुलाते थे। फरवरी, 1951 में ही उन्होंने विनोबा से भी इस काम में पूरा सहयोग देने का अनुरोध किया था।

संविधान के कई प्रावधानों का विरोध

हमेशा उनकी कोशिश होती थी कि आम जनता की ताकत बढ़े। सन् 1950 में जब नया संविधान लागू हुआ तो सोशलिस्ट पार्टी ने उसके कई प्रावधानों पर आपत्ति की। उसी वर्ष 10 जुलाई को पार्टी का अधिवेशन मद्रास में हुआ। इसमें प्रतिनिधियों ने राष्ट्रपति के आपातकालीन अधिकार, दो सदनों वाले विधान मंडल, राज्यों के बनिस्बत केंद्र को

अधिक शक्ति देने, राज्यों की सीमाएं निर्धारित करने की नीति आदि की कठोर शब्दों में आलोचना की। कुछ लोग दूसरी संविधान सभा के गठन की मांग कर रहे थे ताकि एक बेहतर संविधान की रचना की जा सके। जे.पी. ने विचार व्यक्त किया कि देश के लोग एक नयी संविधान सभा के गठन का समर्थन नहीं करेंगे, किंतु उनका पक्का मत था कि विभिन्न स्थितियों से निपटने के लिए वर्तमान संविधान में व्यापक फेरबदल आवश्यक होगा।[2]

संविधान लागू होने के पहले से वह इस बात की वकालत कर रहे थे कि राज्य व्यवस्था को स्वच्छ बनाये रखने के लिए ठोस इंतजाम किये जाने चाहिए। भ्रष्टाचार रोकने के लिए उन्होंने एक ट्रिब्यूनल के गठन का सुझाव दिया ताकि कोई व्यक्ति भ्रष्टाचार से संबंधित कोई भी शिकायत दर्ज करा सके और ट्रिब्यूनल को दोषी व्यक्ति को सख्त सजा देने का अधिकार हो। कांग्रेस में रहते हुए भी उन्होंने यह सलाह दी थी कि कांग्रेस के किसी पद पर निर्वाचित कोई सदस्य अपने लिए किसी लाइसेंस या परमिट की मांग न करे और न ही ऐसी समितियों (जैसे—खाद्य सलाहकार समिति) का सदस्य हो।

नेहरू जी को सादगी से रहने की सलाह

जे.पी. की इच्छा थी कि उच्च पदस्थ व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन में भी समाजवाद की झलक मिलनी चाहिए। इसके लिए भी शुरू से ही वे प्रयासरत थे। अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष बनने पर जवाहरलाल नेहरू 17, यॉर्क रोड (वर्तमान मोतीलाल नेहरू मार्ग) स्थित भव्य बंगले में रहने लगे। गांधी जी की हत्या के बाद सुरक्षा कारणों से वे तीन मूर्ति भवन चले गये जो उससे भी भव्य था। जे.पी. ने दिसंबर, 1947 में नेहरू जी को सलाह दी कि एक गरीब मुल्क के प्रधानमंत्री को इतने विशाल बंगले में नहीं रहना चाहिए। उन्होंने नेहरू जी को याद दिलाया कि अपनी रूस यात्रा के बाद उन्होंने (नेहरू ने) स्वयं लिखा था कि रूस जैसे देश के महान नेता लेनिन अपनी पत्नी और बहन के साथ दो कमरे के एक छोटे फ्लैट में रहते थे। नेहरू जी ने जवाब दिया कि देश की शान के लिए प्रधानमंत्री का बड़े बंगले में रहना जरूरी है। उन्होंने कहा कि दो दिन पहले रूस के राजदूत एक शानदार कार में बैठकर उनसे मिलने आये थे। इतना ही नहीं, उसके आगे और पीछे भी वैसी ही कीमती कारें थीं। जे.पी. ने प्रतिवाद किया कि रूस इतने दिनों में काफी प्रगति कर चुका है, परंतु भारत की स्थिति वैसी नहीं है। इसलिए इस देश के नेताओं को सादगी से रहना चाहिए। इस पर नेहरू जी ने गांधी जी के बारे में सरोजिनी नायडू के कथन की चर्चा की, कि गांधी जी की सादगी को बनाये रखने के लिए बिड़ला के लाखों रुपये खर्च होते थे। कई साल बाद एक भाषण में जे.पी. ने कहा था, "लेकिन शुरू की उस गलती का क्या नतीजा निकला, इसकी गवाही आज हमारे शासकों के ठाठ-बाट और

रौब-दाब से मिलती रहती है। यह सब देश की करोड़ों झोपड़ियों का उपहास करता हुआ इस देश के "गौरव" को बढ़ा रहा है, और "राष्ट्र की शान" की हिफाजत कर रहा है!"[3]

सर्वोदय योजना

सादगी और समता के आदर्श का ही प्रभाव था कि वे गांधी जी के साथ साथ विनोबा की ओर बढ़ने लगे। गांधी जी की दूसरी पुण्य तिथि (30 जनवरी, 1950) पर पटना में आयोजित अंखड सूत्र यज्ञ में उन्होंने प्रभावती जी के साथ भाग लिया। उन्होंने चरखे पर सूत काता और पति-पत्नी ने दिन भर उपवास रखा। उसी दिन सर्व-सेवा-संघ द्वारा तैयार की गयी "सर्वोदय योजना" देश के समक्ष प्रस्तुत की गयी। जे.पी. ने महसूस किया कि गांधी के सपने को इस योजना के माध्यम से साकार किया जा सकता है और राष्ट्र का नव-निर्माण हो सकता है, "जो कोई सर्वोदय योजना को पढ़ने का यत्न करेगा, उसे पता चलेगा कि इस योजना में समाजवादी दल के तात्कालिक कार्यक्रम का अस्सी प्रतिशत अंश निहित है, इसके अलावा समाजवादी दल के वर्गहीन एवं वर्णहीन समाज का आदर्श भी उसे मान्य है।"[4]

इस योजना को बनाने का प्रस्ताव गांधी जी के जीवन काल में ही आया था। देश की बिगड़ती परिस्थिति और सरकारी कामकाज में गिरावट को देखते हुए यह निश्चित किया गया कि सत्ता से अलग रचनात्मक कामों में लगे लोगों का सम्मेलन फरवरी, 1948 में वर्धा में आयोजित कर एक राष्ट्रीय कार्यक्रम पेश किया जाये। स्वयं महात्मा गांधी इस सम्मेलन को संबोधित करने वाले थे। किंतु नियति को यह मंजूर नहीं था। अंततोगत्वा दिसंबर, 1949 में ऐसे दो सौ कार्यकर्ता वर्धा में एकत्र हुए और "सर्वोदय योजना" का अनुमोदन किया गया। इस सबके पीछे विनोबा की प्रेरणा थी। उस योजना में एक जातिविहीन, वर्गविहीन, अहिंसक, शोषणमुक्त, सहकारी समाज बनाने का प्रारूप है जिसमें सबको समान अवसर मिलेंगे। इसमें प्रतियोगी अर्थरचना की जगह सहयोग-आधारित सामाजिक अर्थव्यवस्था स्थापित करने का सुझाव है। इसके साथ ही कृषि, उद्योग, कर-निर्धारण, बैंक एवं बीमा आदि विषयों पर भी स्पष्ट नीति का उल्लेख है।

गांधीवाद और समाजवाद का समन्वय

जे.पी. ने अपने लेख "समाजवाद और सर्वोदय" में यह भी स्पष्ट किया कि इस देश में समाजवाद यदि गांधीवाद की उपेक्षा करेगा तो संकट में पड़ेगा, "गांधीवाद का प्रथम पहलू जिसमें समाजवादियों की दिलचस्पी होनी चाहिए, उसका नैतिक या आचारिक आधार है, मूल्यों के लिए उसका आग्रह है... गांधीवाद का दूसरा पहलू जो प्रत्येक समाजवादी को

आकृष्ट करना चाहिए, क्रांतिकारी विधि-विज्ञान को उसकी अमर देन है। गांधी जी के पहले तक दलितों और शोषितों के पास जालिमों से लड़ने का एकमात्र साधन हिंसक साधन था। ...गांधी जी के सविनय-अवज्ञा एवं सत्याग्रह के तरीकों के रूप में दलितों और शोषितों को संघर्ष की एक नयी प्रक्रिया मिली है जो उनके संघर्ष को सामान्य शांतिमय सीमाओं से आगे ले जाती है और सामाजिक न्याय तथा परिवर्तन की आकांक्षा को पूरी अभिव्यक्ति देती है। गांधीवाद का तीसरा पहलू है, विकेंद्रीकरण—आर्थिक एवं राजनीतिक विकेंद्रीकरण के लिए उसका आग्रह।"[5] इस प्रकार गांधीवाद और समाजवाद में कोई अंतर्विरोध नहीं दीखता है। सन् 1947 में ही गांधी जी ने लिखा था, "मैं समाजवाद के सिद्धांत को साउथ अफ्रीका में ही स्वीकार कर चुका था। किंतु, मेरा विरोध उन समाजवादियों से है, जो हिंसा को समाज परिवर्तन के लिए उचित साधन मानते हैं।"[6]

विनोबा का प्रभाव

सन् 1950 में जे.पी. वर्धा गये और पवनार में विनोबा से मिले। पिछले 15-20 वर्षों से वे विनोबा से यदा-कदा मिलते रहते थे और उनके साथ राजनीतिक विषयों पर चर्चा भी करते थे। हर बार उन पर विनोबा के व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ती रही। उन्होंने महसूस किया कि विनोबा अद्भुत प्रतिभा वाले मौलिक विचारक हैं और साथ ही यह भी अनुभव किया कि उनके व्यक्तित्व में दूसरों को अनुप्रमाणित करने की एक अनोखी शक्ति है।

श्रीमन्नारायण, राधाकृष्ण बजाज एवं अन्य मित्रों ने मगनबाड़ी, सेवाग्राम, गोपुरी आदि जगहों में चलाये जा रहे ग्रामोद्योग, नयी तालीम, गो-पालन जैसे रचनात्मक कार्य जे.पी. को दिखाये। उन्हें वहां चारों तरफ "धड़कता जीवन और चेतना" देखने को मिली। वे यह देखकर दंग रह गये कि वहां कई सक्षम और सुयोग्य स्त्री-पुरुष निःस्वार्थ भाव से भक्ति, निष्ठा और तन्मयता के साथ काम में लगे हुए थे। उन लोगों को इस बात की जरा भी फिक्र नहीं थी कि लोग उनके कार्यों की सराहना करेंगे या नहीं, उन्हें यश मिलेगा या नहीं।

विनोबा के साथ जे.पी. की लंबी बातचीत हुई। ग्रामोद्योग पर चर्चा हुई। विनोबा ने उनसे कहा कि चरखा ही देश में सबको रोजगार दे सकता है। जे.पी. ने विनोबा का "कांचन-मुक्ति-प्रयोग" भी देखा जिसका उद्देश्य था गांव में पूर्ण स्वावलंबन प्राप्त करना। जहां तक संभव हो जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं का उत्पादन गांव में ही हो। खेती में भी केवल कुदाल एवं फावड़े का इस्तेमाल किया गया। आश्रम की जहरीली जमीन को ठीक से विकसित कर उपजाऊ बनाया गया और पानी के लिए कुआं खोदा गया तथा उस पर रहट लगाया गया। रहट को भी आश्रमवासी ही चलाते थे, बैल नहीं। रहट चलाते समय प्रार्थना भी होती थी। जे.पी. भी इसमें शामिल हुए और उन्होंने स्वयं रहट चलाया।

यह उनके लिए बिल्कुल नया अनुभव था, जिससे वे पूरी तरह अभिभूत हो गये। वर्धा से लौटते समय उन्होंने पत्रकारों से कहा, "आई सी सम लाइट हियर" अर्थात्, मैं यहां कुछ प्रकाश देख रहा हूं।

इस प्रकार जे.पी. का यह विश्वास दिनों दिन गहनतर होता चला गया कि समाज के असली कल्याण के लिए लोकशक्ति को ही संगठित करना होगा। लोकशक्ति की स्पष्ट अवधारणा उनके मस्तिष्क में थी। अपने लेख "लोकशक्ति का सम्प्रत्यय" में उन्होंने इसके विभिन्न अर्थों की व्याख्या की है। लोकशक्ति का पहला अर्थ यह है कि छोटे छोटे समुदायों और समूहों के लिए काम इस ढंग से किये जायें कि उनमें अपने आप सामूहिक प्रयास करने की प्रेरणा एवं क्षमता पैदा हो। शासन से अलग रहकर यह निर्माण का काम करती है। इसका दूसरा पहलू है जनता की शक्ति को जगाना और सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को तेज करना। इसका एक अन्य आयाम यह है कि इसके माध्यम से एक ऐसा अभियान चलाया जाये जो संगठनों, संस्थाओं और परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने तथा इस प्रकार सामाजिक बुराइयों को खत्म करने का प्रयास करे।

विनोबा भावे ने इसी उद्देश्य से अपना अभियान शुरू किया कि जनता अपने कामों में अपनी व्यवस्था स्वयं करे। इसी कारण जे.पी. विनोबा की ओर खिंचते चले गये। जे.पी. का विचार था कि लोकनीति को इतना व्यापक बनाया जाये कि वह राजनीति पर हावी हो जाये। इससे राज्य का कार्यक्षेत्र धीरे धीरे सिमटता जायेगा और अंततोगत्वा उसका लोप हो जायेगा। ऐसी आदर्श व्यवस्था हो कि इसकी जरूरत ही न रह जाये कि एक व्यक्ति दूसरे पर शासन करे।

पहला आम चुनाव–चुनाव लड़ने से जे.पी. का इंकार

इसी बीच सन् 1952 के पहले आम चुनाव की तैयारी शुरू हो गयी। इसके लिये अगस्त, 1951 में सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक रांची में हुई। जे.पी. ने विचार व्यक्त किया कि कम से कम बड़े नेताओं को चुनाव में खड़ा नहीं होना चाहिए। उनका विचार था कि बड़े नेताओं को पार्टी को मजबूत बनाने में समय लगाना चाहिए। दूसरा विचार यह सामने आया कि पार्टी के सभी कार्यकर्ताओं को चुनाव लड़ना चाहिए। इस मुद्दे पर मत विभाजन हुआ और एकमत से जे.पी. का विचार अस्वीकृत हो गया। आचार्य नरेन्द्र देव उस बैठक में नहीं थे, लेकिन पत्र लिखकर उन्होंने बहुमत के पक्ष में अपनी राय दी। जे.पी. ने इस फैसले को बदलवाने के लिए 28 अगस्त, 1951 को कार्यकारिणी के सदस्यों के नाम एक पत्र लिखा : "... कार्यकारिणी के इस निर्णय पर अमल होगा, तो अपने देश में लोकतांत्रिक समाजवाद का भविष्य खतरे में पड़ जायेगा। इसलिए मैं आपसे आग्रह करता हूं कि इस पर फिर से विचार कीजिए। मैं आशा रखता हूं कि कार्यकारिणी

मुझको चुनाव में खड़ा रहने से मुक्त रखेगी, क्योंकि संसदीय कामकाज में मेरी तनिक भी रुचि नहीं है।"[7]

सत्ता में इतना आकर्षण तो होता ही है कि वह सबों को अपनी ओर खींच ले। ऐसी स्थिति में जे.पी. की इस अपील का भला कितना असर होता। उस समय वे पार्टी के केंद्रीय संसदीय बोर्ड और बिहार प्रदेश सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष थे। इसलिए उन पर चुनाव लड़ने का काफी दबाव था। जहानाबाद लोकसभा क्षेत्र उनके लिए चुना गया था और वहां से सोशलिस्ट पार्टी की जीत लगभग पक्की थी। किंतु जे.पी. ने चुनाव लड़ने से इंकार कर दिया। उनके सीट छोड़ने के बाद विझेश्वर मिश्र वहां से सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार बने और निर्वाचित भी हुए। पूरे बिहार में सोशलिस्ट पार्टी को केवल जहानाबाद लोकसभा सीट पर ही सफलता मिली। डा. लोहिया चाहते थे कि वे नेहरू जी के विरुद्ध चुनाव में खड़े हों। लेकिन जे.पी. ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी क्योंकि वे महसूस करते थे कि नेहरू जी को इलाहाबाद से हराना संभव नहीं है और डा. लोहिया जैसे बड़े नेता की हार से पार्टी को बहुत धक्का लगेगा। इसके अतिरिक्त जे.पी. यह भी मानते थे कि इस समय नेहरू जी का हारना भी ठीक नहीं होगा। जे.पी. की सलाह पर डा. लोहिया चुनाव में खड़े नहीं हुए।

रांची में जो पार्टी कार्यकारिणी की बैठक हुई उसमें दल के चुनाव घोषणा-पत्र पर भी गहन चर्चा हुई। 15 दिनों तक महत्वपूर्ण नेताओं ने इस पर विचार किया। जे.पी. इसमें बहुत सक्रिय थे। पार्टी का विस्तृत घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसमें सभी विषयों पर विस्तार से चर्चा की गयी थी। चुनाव में तो जे.पी. नहीं खड़े हुए, लेकिन पूरे देश में घूम घूमकर पार्टी का चुनाव प्रचार पूरे उत्साह के साथ किया। पार्टी को उम्मीद थी कि लोकसभा चुनाव में वह एक सशक्त विपक्ष के रूप में उभरेगी और कम से कम बिहार, विंध्य प्रदेश एवं त्रावणकोर-कोचीन में उसकी सरकार बनेगी। व्यक्तिगत रूप से जे.पी. को भी पार्टी के अच्छे प्रदर्शन की उम्मीद थी क्योंकि उनकी जनसभाओं में भारी भीड़ होती थी।

अपने चुनाव प्रचार में जे.पी. ने जिन मुद्दों पर बल दिया, वे थे--जमींदारी उन्मूलन, विदेशी पूंजी निवेशों का राष्ट्रीयकरण, शीतयुद्ध की समाप्ति, निरस्त्रीकरण की प्रक्रिया को तेज करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मामलों में एशियाई ब्लाक का गठन तथा परमाणु ऊर्जा का अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण। नेहरू जी ने जनसभाओं में जे.पी. की सराहना की, "सोशलिस्ट पार्टी में मेरे कुछ पुराने और अंतरंग मित्र हैं जिनकी मैं प्रशंसा तथा इज्जत करता हूं।"[8]

चुनाव प्रचार के दौरान जे.पी. ने एक एक पैसे के खर्च का हिसाब रखा। इंदिरा गांधी ने चुनाव-सभाओं में समाजवादियों पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हुए कहा कि डा. लोहिया ने चुनाव प्रचार के लिए अमेरिका से हजारों डालर की मदद ली है। जे.पी. ऐसे आरोपों के प्रति संवेदनशील थे। उन्हें पता चला कि वाशिंगटन स्थित भारतीय दूतावास इस आरोप

की जड़ में है। उन्होंने तुरंत पंडित नेहरू को पत्र लिखकर इस बारे में जानना चाहा। नेहरू जी ने विस्तार से जवाब दिया कि अमेरिकी समाजवादी नेता नॉर्मन थॉमस ने भारत आकर कुछ वायदे किये थे और इस बारे में अखबारों में रिपार्ट छपने से कुछ लोगों को ऐसा लगा कि अमेरिका से धन लिया गया।

सोशलिस्ट पार्टी के लिए चुनाव परिणाम काफी निराशाजनक रहे। पार्टी के सिर्फ 12 प्रत्याशी ही लोकसभा चुनाव में सफल हो पाये जबकि कांग्रेस को 362 सीटों पर सफलता मिली। विधानसभाओं में भी 65% से ज्यादा सीटें कांग्रेस को प्राप्त हुईं और सोशलिस्ट पार्टी के मात्र 126 उम्मीदवार ही विजयी हो पाये। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी लोकसभा की 27 सीटें जीतकर कांग्रेस के बाद दूसरी बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और विधानसभाओं में भी उसे 193 सीटें प्राप्त हुईं। वैसे मतों के प्रतिशत के हिसाब से दूसरे स्थान पर सोशलिस्ट पार्टी ही थी जिसे 10.5% मत प्राप्त हुए, किंतु भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी 5% मत पाकर भी सांसद और विधायकों की संख्या में सोशलिस्ट पार्टी से आगे रही। इसका एक बड़ा कारण यह था कि कम्युनिस्टों को आंध्र प्रदेश में ही काफी सीटें प्राप्त हुईं और पार्टी ने उन्हीं क्षेत्रों पर ध्यान दिया जहां उसका प्रभाव अच्छा था। इसके विपरीत सोशलिस्ट पार्टी ने लगभग सभी सीटों पर उम्मीदवार खड़े कर दिये।

चुनाव परिणामों पर विचार करने के लिए बिहार सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं की बैठक पटना में हुई। पार्टी के वरिष्ठ नेता रामनंदन मिश्र, जो दरभंगा लोकसभा क्षेत्र से कांग्रेस उम्मीदवार के हाथों पराजित हो चुके थे, ने चुनाव में दल की असफलता के लिए जे.पी. की तीखी आलोचना की। उन्होंने शीर्षस्थ नेताओं को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया और जे.पी. पर व्यक्तिगत प्रहार किया कि वह नेहरू जी के दोस्त हैं, इसलिए उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस की मदद की है। उन्होंने इस आशय का एक पर्चा भी वितरित किया।

जे.पी. का स्वभाव ऐसा था कि वह आलोचना तो बर्दाश्त करते थे और तीखे से तीखे प्रश्नों का जवाब देते थे, लेकिन यदि कोई उनकी नीयत पर संदेह करता था तो तिलमिला उठते थे। व्यक्तिगत प्रहार से उनकी आंखें डबडबा गयीं और वे बैठक से बाहर चले गये। एकांत में वे खूब रोये। जे.पी. के समर्थकों ने विचार व्यक्त किया कि अनुशासनहीनता के लिए रामनंदन मिश्र के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव पारित किया जाये, किंतु कुछ लोगों की राय हुई कि पार्टी मंच पर अपना विचार रखने की छूट होनी चाहिए और निंदा प्रस्ताव पारित नहीं किया गया।

बिहार प्रदेश सोशलिस्ट पार्टी के सभी पदाधिकारियों ने इस्तीफा दे दिया, परंतु जो दूसरी समिति बनी उसमें भी जे.पी. के समर्थक ही निर्वाचित हुए। रामनंदन मिश्र हार से इतने आहत हुए कि उन्होंने राजनीति से संन्यास ले लिया और बाद में अध्यात्म की

ओर मुड़ गये। उन्होंने जे.पी. की आलोचना भले ही की हो, लेकिन दोनों के व्यक्तिगत संबंध पर इसका असर नहीं पड़ा। अंत तक जे.पी. और रामनंदन मिश्र अच्छे दोस्त बने रहे।

पार्टी की हार से जे.पी. टूटे तो नहीं, लेकिन समाजवादी आंदोलन के तरीके एवं उसकी उपयोगिता पर सोचने को विवश हुए। समाजवादियों का रास्ता वर्ग संघर्ष तथा मजदूर-किसान आंदोलन का रहा था। जे.पी. ने इस पूरे आंदोलन की समीक्षा की, कि इससे समाज परिवर्तन कहां तक संभव है। इसी क्रम में वे भूदान की ओर और अधिक खिंच गये। उस समय तक भूदान का असर भी दीखने लगा था। सन् 1952 में सेवापुरी में सर्वोदय सम्मेलन हुआ था और उस समय तक मात्र एक वर्ष के भीतर एक लाख एकड़ जमीन दान में मिल चुकी थी। सर्व-सेवा-संघ ने भूदान के काम को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी भी ले ली थी। उन दिनों विनोबा की पदयात्रा चल रही थी और इस क्रम में वे उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में पहुंचे थे। जे.पी. ने बांदा जाकर उनसे मुलाकात की। इस बातचीत के बाद जे.पी. का विश्वास और दृढ़ हो गया कि विनोबा के रास्ते से ही देश का उपकार हो सकता है।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार-यात्रा, पृ. 45
2. इंडियन एक्सप्रेस, 27 जुलाई, 1950
3. जयप्रकाश, पृ. 363
4. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 103
5. वही, पृ. 106-7
6. हरिजन, 1 जून 1947, पृ. 15-2
7. स्कार्फ, एलेन एंड विंडी : जे.पी. : हिज बायोग्राफी, पृ. 254

21 दिनों का उपवास (1952)

सन् 1952 में जे.पी. के जीवन और विचारधारा में एक मौलिक बदलाव आया जब उन्होंने आत्मशुद्धि के लिए 21 दिन का उपवास किया। मार्क्सवाद से उनका संबंध विच्छेद पूरी तरह इसी उपवास के बाद हुआ। जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है, जे.पी. कई कर्मचारी संघों के अध्यक्ष बन गये थे। इनमें एक था डाक-तार विभाग के कर्मचारियों का संघ। इन कर्मचारियों को बेहतर सुविधाएं दिलवाने के लिए संघ के अखिल भारतीय अध्यक्ष के नाते वे सन् 1947 से ही सरकार से वार्ता कर रहे थे। अपनी मांगों के समर्थन में कर्मचारियों ने सन् 1946 में हड़ताल भी की थी। सन् 1951 में तत्कालीन संचारमंत्री रफी अहमद किदवई से संघ की विभिन्न मांगों के बारे में जे.पी. की विस्तृत बातचीत हुई थी। इन मांगों में एक थी सन् 1946 में की गयी हड़ताल की अवधि के वेतन का भुगतान। जे. पी. और किदवई के बीच मौखिक समझौता हुआ था।

समझौते के बाद जे.पी. ने घोषणा की, कि कर्मचारियों को हड़ताल के समय का वेतन देने पर सरकार राजी हो गयी है। इसी आश्वासन पर कर्मचारियों ने फिर से हड़ताल पर न जाने का फैसला किया। बाद में इसे लेकर जे.पी. और किदवई के बीच गलतफहमी हो गयी। जब हड़ताल के दिनों के वेतन भुगतान की बात आयी तो किदवई ने इस बात से इंकार किया कि ऐसा कोई समझौता हुआ था। चूंकि समझौता लिखित नहीं था, इसलिए जे.पी. के पास अपनी बात को प्रमाणित करने का कोई रास्ता नहीं था। जे.पी. ने इसे अपनी भूल माना कि समझौते को लिखित रूप नहीं दिया गया।

आत्मशुद्धि के लिए उपवास

इस कारण प्रायश्चित करने के लिए 21 दिन का उपवास करने का उन्होंने फैसला किया। अपने इस निर्णय की घोषणा भी उन्होंने सन् 1951 में ही कर दी, किंतु काम की व्यस्तता के कारण तुरंत उपवास पर नहीं जा सके। अंततः सन् 1952 के आम चुनाव के तुरंत बाद उन्होंने पुणे में डा. दिनशा मेहता के प्राकृतिक चिकित्सालय में 23 जून से 13 जुलाई तक उपवास किया। वर्षों पूर्व महात्मा गांधी ने भी उसी स्थान पर 21 दिन का उपवास किया था। उपवास शुरू करने के एक दिन पहले 22 जून को उन्होंने वक्तव्य देकर स्पष्ट कर दिया कि यह उपवास किसी के विरोध में नहीं है।

उपवास शुरू करने के एक-दो दिन बाद ही जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें पत्र लिखा, "तुम्हारा जीवन बहुत महत्वपूर्ण है। हम लोगों ने तुम्हारी मांग मान ली है। कृपया अनशन तोड़ दो।" जवाब में जे.पी. ने वही बातें दुहरायी कि यह उपवास किसी के विरोध में नहीं है। यह आत्मशुद्धि और प्रायश्चित के लिए है। उन्होंने वक्तव्य जारी कर रफी अहमद किदवई को भी हर तरह के आरोप से मुक्त कर दिया। विनोबा ने भी प्रभावती जी को पत्र लिखा : "मैंने उनके उपवास के बारे में मेरा अभिप्राय उनको कहा ही था कि दोष के हिसाब से प्रायश्चित की मात्रा अधिक लगती है। उन्होंने भी वह कबूल किया था। लेकिन अंदर की एक छटपटाहट थी। इस वास्ते अपने मानसिक संकल्प को उन्होंने कायम रखने को सोचा, यह भी अच्छा हुआ।"[1] प्रभावती जी भी जे.पी. के उपवास को लेकर काफी चिंतित थीं। उन्होंने पहले जे.पी. को ऐसा न करने की सलाह दी, लेकिन जे.पी. ने नहीं माना। घबराहट में प्रभावती जी ने प्यारेलाल को पत्र लिखकर जे.पी. को मनाने का आग्रह किया, किंतु प्यारेलाल ने भी उनके उपवास का समर्थन किया और "हरिजन" में लेख लिखकर उन्होंने जे.पी. के पवित्र और गांधीवादी साधन की सराहना की।

कठोर संकल्प-शक्ति

पूरे देश में लोग जे.पी. के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित हो गये। देश के कोने कोने से चिट्ठियों और तारों की बौछार लग गयी। बहुत से लोगों ने यह लिखा कि उनका जीवन सार्वजनिक है जिसे खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए। सेवा दल के कार्यकर्ता 24 घंटे उनकी निगरानी करते थे। प्रभावती जी भी हमेशा उनकी बगल में होती थीं। वह इतनी संवेदनशील थीं कि जे.पी. के करवट बदलने भर से समझ जाती थीं कि उन्हें किस चीज की आवश्यकता है या वे क्या चाहते हैं? वैसे जे.पी. की स्थिति में बहुत ज्यादा गिरावट नहीं आयी थी। आमतौर पर उपवास का दूसरा सप्ताह नाजुक माना जाता है, लेकिन उस दरम्यान भी वे कमोबेश सामान्य रहे। इससे डा. दिनशा मेहता को भी बहुत आश्चर्य हुआ कि जे.पी. इतना बर्दाश्त कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि यह जे.पी. की कठोर संकल्प-शक्ति का परिचायक है।

गीता-उपनिषद् का पाठ

उन दिनों वे गीता, उपनिषद् एवं एल्डस हक्सले की पुस्तक "दि पिरीनियल फिलासफी" पढ़ते रहते थे और भजन सुनते रहते थे। वेदों का पाठ भी होता था। दक्षिण भारत के एक पंडित संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ करते थे। उन श्लोकों का अंग्रेजी में अनुवाद कर उसका अर्थ भी वे जे.पी. को समझाते थे, परंतु जे.पी. ने उन्हें कहा कि वे संस्कृत समझते हैं। इसलिए अनुवाद की कोई आवश्यकता नहीं है। वहां का पूरा माहौल धार्मिक

हो गया था। इससे बहुत से लोग हैरान थे क्योंकि जे.पी. न तो कभी पूजा-पाठ करते थे और न कभी भजन-कीर्तन में शामिल होते थे। इसके पहले एक बार सन् 1946 में जेल से रिहा होने के बाद सत्यनारायण की कथा में पत्नी के साथ पूजा पर बैठे थे क्योंकि उनकी बड़ी बहन ने उनकी रिहाई के लिए मन्नत मांगी थी। पूजा में उन्होंने लाल धोती तथा प्रभावती जी ने लाल साड़ी पहन रखी थी। इसके लिए भी कई लोगों ने उनकी कटु आलोचना की थी कि मार्क्सवादी होकर भी वे पूजा करते हैं। उत्तर में जे.पी. ने सिर्फ इतना कहा कि बहन-बहनोई की भावना का सम्मान करने के लिए उन्होंने ऐसा किया।

उपवास के दौरान मीनू मसानी उन्हें देखने आये। मसानी ने प्रभावती जी से पूछा कि उपवास का कैसा असर जे.पी. पर पड़ा है? प्रभावती जी ने जवाब दिया कि असर हुआ है, लेकिन वैसा नहीं जैसा गांधी जी के ऊपर होता था।[2]

अच्छाई की प्रेरणा

वे दिन उनके लिए गहन मीमांसा और आत्मचिंतन के दिन थे। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अध्यापक रिचर्ड पार्क उनसे मिलने आये। जे.पी. ने उनसे पूछा कि कोई व्यक्ति अच्छा क्यों बने? पार्क निरुत्तर हो गये। फिर लुई फिशर मिलने आये तो उनसे भी यही प्रश्न किया। इस पर लुई फिशर ने पूछा, "क्या आप ईश्वर में विश्वास करने लगे हैं?" जे.पी. ने जवाब दिया, "मैं किसी व्यक्तिगत ईश्वर में विश्वास नहीं करता हूं। लेकिन मैं ऐसी सभ्यता अवश्य खड़ी करना चाहता हूं जिसके सहारे मनुष्य सर्वोच्च स्तर तक पहुंच सके।" 13 जुलाई को निर्धारित समय से 12 घंटे बाद उन्होंने उपवास तोड़ा। एस.एम. जोशी, अच्युत पटवर्धन सहित बड़ी संख्या में पुणे के गण्यमान्य लोगों की मौजूदगी में वेद की ऋचाओं के पाठ के बीच उपवास तोड़ा गया। उपवास तोड़ने के बाद जे.पी. ने कहा कि शरीर और मन दोनों की शुद्धि हो गयी।

उन दिनों वे लगातार इस प्रश्न से जूझते रहे कि आज के युग में मनुष्य के अच्छा होने के लिए क्या प्रेरणा है? जब मीनू मसानी उनसे मिलने गये तो उन्होंने जे.पी. से कहा कि उचित समय आ गया है कि आप मार्क्सवाद का सार्वजनिक रूप से परित्याग करें। इसके साथ ही मसानी ने उनसे पूछा कि क्या डिमाक्रेटिक रिसर्च सर्विस की मासिक पत्रिका "फ्रीडम फर्स्ट" के लिए एक लेख लिखेंगे? मसानी उस पत्रिका से संबद्ध थे। जे.पी. लेख लिखने को तैयार हो गये और एक सप्ताह में ही उन्होंने लेख मसानी के पास बंबई भेज दिया। उसी वर्ष सितंबर महीने के "फ्रीडम फर्स्ट" में उनका यह लेख "इंसेंटिव टू गुडनेस" प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने इस समस्या पर विचार किया। प्राचीन काल में किसी अदृश्य उच्चतर नैतिक सत्ता के डर से लोग अच्छा होने का प्रयत्न करते थे और ऐसा करना उन्हें अपना परम कर्तव्य प्रतीत होता था। किंतु आज जब धर्म का प्रभाव लुप्तप्राय हो चुका

है और ईश्वर में लोगों की आस्था हिल चुकी है तो फिर कोई अच्छा बनना क्यों चाहेगा? उन्होंने लिखा कि सामाजिक पुनर्निर्माण मानवीय पुनर्निर्माण के बिना असंभव है और सिर्फ भौतिकवाद में अच्छाई के लिए कोई प्रेरणा नहीं है, "अनेक वर्षों तक मैंने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की देवी के मंदिर में उपासना की है; यह दर्शन मुझे अन्य किसी भी दर्शन की अपेक्षा बौद्धिक रूप से अधिक तुष्टिकारक प्रतीत होता था। परंतु जहां दर्शन की मेरी मुख्य जिज्ञासा अतृप्त हो रही है, वहां यह मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गया है कि भौतिकवाद, चाहे वह किसी प्रकार का हो, मनुष्य को सच्चे अर्थ में मानवीय बनने के साधनों से ही वंचित कर देता है। भौतिकवादी सभ्यता से मनुष्य को अच्छा बनने के लिए कोई युक्तिसंगत प्रेरणा नहीं मिलती है।... मेरे कथन का यह अर्थ नहीं है कि भौतिकवादी दर्शन को मानने वाले सभी लोग बुरे हैं, और सभी अभौतिकवादी अच्छे हैं। परंतु मैं यह अवश्य बल देकर कहता हूं कि भौतिकवाद में ऐसा कोई तर्क नहीं है जिसके आधार पर कोई व्यक्ति समझ-बूझकर अच्छाई प्राप्त एवं आचरित करने का प्रयत्न करेगा।"[3]

यह उपवास उनके जीवन की एक क्रांतिकारी घटना थी। रूसी निष्कासनों के कारण मार्क्सवाद में उनकी आस्था हिल गयी थी और संशय की एक लंबी प्रक्रिया की शुरुआत उनके अंदर हुई थी। इस उपवास से उनका संशय पूरी तरह समाप्त हो गया और उन्हें महसूस हुआ कि भौतिकवाद नैतिक आचरण को कोई आधार नहीं प्रदान करता है। हेलम टेनिसन ने लिखा है, "उपवास के बाद जे.पी. में शारीरिक परिवर्तन भी काफी हुआ – अब वे धीरे चलते हैं, हाथ भी आहिस्ता से इधर-उधर करते हैं, विनोबा की तरह बहुत धीमी आवाज में बोलते हैं जिससे यह याद करना कठिन हो जाता है कि कभी वह गर्मजोशी से भाषण देने के लिए प्रसिद्ध थे।"[4]

कुछ दिनों बाद उन्होंने मजदूर-कर्मचारी संघों का नेतृत्व छोड़ दिया। उसी वर्ष अक्तूबर के पहले सप्ताह में उन्होंने डाक कर्मचारी संघ की अध्यक्षता भी छोड़ दी।

उद्धरण

1. जयप्रकाश, पृ. 368
2. मसानी, मीनू : हू वाज दिस मैन (स्मारिका), पृ. 12
3. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 110-12
4. टेनिसन, हॉलम : सेंट ऑन द मार्च (विक्टर गॉलेंज, लंदन), 1956, पृ. 139

मंत्रिमंडल में शामिल होने का प्रस्ताव अस्वीकार्य

सन् 1952 के आम चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी को जब अपेक्षा से काफी कम सफलता मिली तो बड़े बड़े नेता आत्मचिंतन करने को मजबूर हुए कि ऐसा क्यों हुआ? जे.पी. निराश तो नहीं हुए, परंतु उन्हें ऐसा लगा कि पार्टी की विफलता का मुख्य कारण यह था कि कांग्रेस के विरोधी मतों का विभाजन हो गया। उन्होंने महसूस किया कि समान विचार वाले कांग्रेस के विरोधी दलों के बीच सहयोग होना चाहिए।

चुनाव-परिणाम का विश्लेषण करने के लिए पंचमढ़ी (मध्य प्रदेश) में पार्टी का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। सम्मेलन में महामंत्री के रूप में जे.पी. ने अपना विचार रखा कि विरोधी दलों में एकता होनी चाहिए। डा. लोहिया ने भी इस विचार का समर्थन किया। अधिवेशन की रिपोर्ट-में फॉरवर्ड ब्लॉक तथा रिवॉल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी जैसे दलों से सहयोग और आचार्य कृपलानी की किसान मजदूर प्रजा पार्टी के साथ विलय का प्रस्ताव रखा गया। किसान मजदूर प्रजा पार्टी का गठन प्रथम चुनाव के कुछ दिन पहले कांग्रेस के कुछ असंतुष्ट नेताओं द्वारा किया गया था जिन्होंने कांग्रेस को छोड़ दिया था। सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी की विचारधारा में बहुत साम्य था क्योंकि दोनों ही दल गांधीवादी दर्शन में विश्वास रखते थे और लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन

जे.पी. और कृपलानी के बीच विलय के मसले पर कई बैठकें हुईं। इसमें अशोक मेहता की सक्रिय भूमिका रही। अंत में 27 मई, 1952 को दोनों नेताओं ने संयुक्त वक्तव्य जारी किया कि संसद में दोनों दल एक साथ काम करेंगे और आगे दोनों के विलय के लिए प्रयास किया जायेगा। उसी वर्ष सितंबर में दोनों पार्टियों को मिलाकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। दोनों पार्टियों के विलय से लोकसभा में पार्टी के सांसदों की संख्या 18 हो गयी। विलय के बाद पार्टी की नीति में वर्ग संघर्ष की कहीं चर्चा नहीं की गयी। उस समय आचार्य नरेन्द्र देव सद्भावना यात्रा पर चीन गये हुए थे। स्वदेश लौटने पर उन्होंने आपत्ति की कि वर्ग संघर्ष के बिना कोई समाजवाद कैसे ला सकता है? इसके बाद उसमें इसे शामिल किया गया।

दोनों पार्टियों के मिलने पर बंबई के समाजवादियों को बहुत हैरानी हुई। दोनों दलों के संयुक्त अधिवेशन में उन लोगों ने किसान मजदूर प्रजा पार्टी को मिलाने का इस आधार पर विरोध किया कि यह जमींदारों के समर्थन से चलने वाली पार्टी है, इसके विचार प्रतिगामी हैं और यह हिंदू कोड बिल एवं अर्थव्यवस्था के राज्य नियंत्रण के विरुद्ध है। लेकिन उन लोगों के विरोध का कोई विशेष असर नहीं हुआ। आचार्य कृपलानी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष बनाये गये। अरुणा आसफअली ने विद्रोह में सोशलिस्ट पार्टी छोड़ दी।

सरकार में शामिल होने का निमंत्रण

फरवरी, 1953 में पंडित नेहरू ने जे.पी. को बातचीत के लिए आमंत्रित किया ताकि कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बीच सहयोग की संभावना तलाशी जा सके। नेहरू जी उन्हें अपने मंत्रिमंडल में शामिल करना चाहते थे। जे.पी. ने 4 मार्च, 1953 को पत्र लिखकर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया कि सहयोग क्यों और किन शर्तों पर होना संभव है, "आपने मेरे सामने जो प्रस्ताव रखा, वह साहसपूर्ण और असाधारण प्रस्ताव था, क्योंकि कांग्रेस को न तो केंद्र में और न राज्यों में संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने की जरूरत है। लेकिन आप दलीय भावनाओं से ऊपर उठे और एक राजनीतिज्ञोचित कदम उठाया। आपने जो प्रस्ताव रखा था, वह मेरी दृष्टि से स्वीकृत अर्थ में संसदीय सहमेल बनाने की बात नहीं थी, बल्कि उसमें एक नया भारत बनाने के लिए संयुक्त प्रयास करने का उद्देश्य निहित था। ... इसलिए हमारी सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि आपने हमारे सहयोग की जो मांग की है, उसके पीछे आपकी कल्पना क्या है। अगर इसका केवल यह अर्थ है कि हम में से कुछ लोग आपके मंत्रिमंडल में तथा कतिपय राज्यों के मंत्रिमंडल में शामिल होकर आपकी सरकार को और आपके हाथों को, आपकी वर्तमान नीतियों के कार्यान्वयन के लिए, मजबूर करेंगे, तो यह प्रयास करने योग्य नहीं है। परंतु यदि इसका अर्थ राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए एक साहसपूर्ण संयुक्त प्रयास शुरू करना है तो फिर वह एक ऐतिहासिक कदम हो सकता है। आपके पास असीमित समय नहीं है, इसलिए अभी आपको कदम उठाना चाहिए।"[1]

उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि न्यूनतम कार्यक्रमों पर सहमति हुए बिना दोनों दलों के बीच सहयोग नहीं हो सकता है। मंत्रिमंडल में शामिल होने के लिए उन्होंने कार्यक्रमों का विस्तृत प्रारूप नेहरू जी के पास भेजा जिसमें 14 शर्तें थीं।

ये कार्यक्रम इस प्रकार थे :-

1. संविधान में संशोधन

(क) सामाजिक परिवर्तन के मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करना।

(ख) राजाओं का सालाना मुआवजा (प्रिवी पर्स) समाप्त करना।

(ग) विधान परिषदों को समाप्त करना।

2. प्रशासनिक सुधार

(क) सभी स्तरों पर प्रशासनिक सुधार; राजनीतिक एवं प्रशासनिक सत्ता का विकेंद्रीकरण।

(ख) कानूनों और अदालतों की कार्यप्रणाली में सुधार।

(ग) भ्रष्टाचार से निपटने के लिए आत्यंतिक और प्रभावकारी व्यवस्था का प्रावधान।

3.(क) आर्थिक, प्रशासनिक एवं भाषाई दृष्टि से राज्यों का पुनर्गठन और इसके लिए संसद द्वारा आयोग की नियुक्ति।

(ख) प्रशासन के खर्च को कम करने के लिए दो-तीन राज्यों का एक संयुक्त राज्यपाल, उच्च न्यायालय, अन्य न्यायाधिकरण एवं जनसेवा आयोग से काम चलाना।

4. भूमि का पुनर्वितरण

(क) आर्थिक विषमता तथा शोषण को खत्म करने के लिए भूमि का फिर से बंटवारा। इसमें भूमिहीन मजदूरों और गरीब किसानों को प्राथमिकता मिले।

(ख) बेदखल करने की घटनाओं को तुरंत रोकने की व्यवस्था।

(ग) भूमि-विखंडन को समाप्त करने तथा जोतों की चकबंदी के लिए उपयुक्त कानूनों का निर्माण।

(घ) जमींदारी प्रथा की पूर्ण समाप्ति।

(च) अनिवार्य बहुउद्देशीय समितियों के माध्यम से ग्रामीण अर्थ रचना का सहकारी अर्थ व्यवस्था में परिवर्तन।

(छ) किसानों को ऋण एवं अन्य सुविधाएं देने के लिए सहकारी समितियों द्वारा राज्य की सहायता।

(ज) राज्य यथासंभव किसानों के साथ व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक व्यवहार रखे, जैसे पंचायत के माध्यम से। भूमि-राजस्व का संग्रह उसी के द्वारा हो और लगान का एक भाग पंचायत के पास ही रहे।

5. बंजर जमीन का सुधार और उस पर भूमिहीन मजदूरों को बसाना। परती जमीन का आवंटन पूंजीवादी खेती के बड़े फार्मों के लिए नहीं।

राष्ट्रीयकरण, सहकारी समितियां और मजदूर संघ

6. बैंकों तथा बीमा कंपनियों का राष्ट्रीयकरण।

7. राजकीय व्यापार का क्रमिक विकास।

8. विभिन्न उद्योगों के अंतर्गत निर्धारित संख्या में संयंत्रों का स्वामित्व एवं संचालन-कार्य राज्य या सहकारियों या स्वायत्त निगमों के हाथ में रहेगा।
9. हर एक उद्योग में एक ही मजदूर संघ हो जिसके सब कर्मचारी सदस्य हों। ये संघ अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को समझें।
10. कोयला तथा अन्य महत्वपूर्ण खानों का राष्ट्रीयकरण।
11. राजकीय उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी।

लघु उद्योग

12. बड़े एवं लघु उद्योगों के क्षेत्र का निर्धारण तथा लघु उद्योगों को प्रोत्साहन और संरक्षण।

आर्थिक समानता

13. आर्थिक समानता लाने के लिए पहले कदम के रूप में सरकारी सेवाओं में ऊंचे वेतनों और परिलाभों को कम करना।

स्वदेशी

14. स्वदेशी की भावना को प्रोत्साहित करना तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका प्रसार करना।

इस पत्र के जवाब में नेहरू जी ने 17 मार्च को जे.पी. को लिखा, "मैं महसूस करता हूं कि अगले पांच या दस वर्ष हमारे लिए काफी महत्वपूर्ण हैं। प्रगति या विकास की दर से मैं संतुष्ट हूं, यदि मैं ऐसा कह सकूं। इसे मैं तेज करना चाहता था और ऐसा करने के लिए तुम्हारी मदद चाहता हूं। ...तुमने मुझे कार्यक्रमों का प्रारूप भेजा है, जिसमें अन्य चीजों के अलावा मौलिक संविधान संशोधन शामिल है। अब स्पष्टतया मेरे लिए ऐसा करना आसान नहीं है, भले ही मैं उनके विरुद्ध न होऊं।"[2]

इस तरह नेहरू-जे.पी. वार्ता असफल रह गयी। नेहरू जी के पत्रों को देखकर यह साफ हो जाता है कि वह जे.पी. को मंत्रिमंडल में शामिल करने को बहुत इच्छुक थे। लेकिन जे.पी. इससे उद्वेलित नहीं हुए। उन्होंने इसका प्रचार भी नहीं किया। शिशिर कुमार ने बताया कि जे.पी. ने नेहरू जी को जो पत्र लिखे उन्हें टाईप भी नहीं करवाया क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि इसके बारे में कोई जाने।

प्रश्न यह उठता है कि प्रचंड बहुमत के बावजूद नेहरू जी जे.पी. का सहयोग क्यों चाहते थे? इसके बारे में कई बातें कही जाती हैं। इसका एक कारण यह बताया जाता है कि नेहरू जी के बाद जे.पी. ही सर्वाधिक सम्मानित नेता थे और नेहरू जी उन्हें अपना

उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त भारत के पड़ोसी देशों में लोकतंत्र चरमरा रहा था और सत्ता पर सेना का कब्जा हो रहा था। जे.पी. का सेना में भी काफी सम्मान था। जब वे दिल्ली आते थे तो सेना के वरिष्ठ अधिकारी शिष्टाचार से उनसे मिलने आते थे। एक कारण यह भी बताया जाता है कि संसद में समाजवादियों की संख्या भले ही कम थी, संसद के बाहर उनका अच्छा प्रभाव था। सन् 1952 के आम चुनाव में भी सोशलिस्ट पार्टी को लगभग एक करोड़ बीस लाख मत प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त नेहरू जी स्वयं को भी समाजवादी ही मानते थे। कुछ लोगों का यह भी मत है कि नेहरू जी ने सोशलिस्ट पार्टी को समाप्त करा देने के उद्देश्य से यह प्रस्ताव रखा था। किंतु यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इसके बहुत पहले से वे जे.पी. की प्रशंसा कर रहे थे। इसके साथ ही जे.पी. की भी धारणा थी कि नेहरू जी के साथ मिलकर समाजवादी आंदोलन को सशक्त बनाया जा सकता है। उस समय तक कांग्रेस के अंदर भी स्थिति काफी बदल चुकी थी। समाजवाद के विरोधी समझे जाने वाले सरदार पटेल का सन् 1950 में देहांत हो चुका था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति हो गये थे और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का भी पार्टी में वर्चस्व समाप्त हो चुका था। इसलिए जे.पी. को लगा कि कांग्रेस के साथ सहयोग किया जा सकता है यदि उनकी शर्तें मान ली जायें।

नेहरू-जे.पी. वार्ता की कुछ नेताओं द्वारा आलोचना

डा. लोहिया तथा पार्टी के कुछ अन्य लोगों ने जे.पी. पर व्यक्तिगत आरोप लगाया कि वे चुपचाप नेहरू जी से मिलकर मंत्री बनना चाहते हैं, कि नेहरू जी के बाद प्रधानमंत्री बनना चाहते हैं आदि। डा. लोहिया शुरू से कांग्रेस के साथ किसी भी तरह से सहयोग करने के विरुद्ध थे। उनका मानना था कि अभी पार्टी खड़ी ही हो रही है और कांग्रेस के साथ किसी तरह के तालमेल से पार्टी का आधार चरमरा जायेगा।

जून, 1953 में बैतूल में पार्टी का विशेष अधिवेशन हुआ। सम्मेलन में कुछ लोगों ने यहां तक कह दिया कि जे.पी. तो जवाहरलाल से मिलकर समाजवादी आंदोलन को खत्म करने का षड्यंत्र रच रहे हैं। अधिवेशन में अशोक मेहता ने पार्टी के महामंत्री के रूप में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, "कम्पलशन्स ऑफ बैकवर्ड इकनॉमी"। इस रिपोर्ट में यह प्रतिपादित किया गया था कि पिछड़ी अर्थव्यवस्था में समाजवाद लाने के लिए सत्ता का सहयोग भी आवश्यक है। जे.पी. रिपोर्ट की बातों से सहमत नहीं थे, किंतु प्रचार यह किया गया कि अशोक मेहता ने जयप्रकाश नारायण के इशारे पर यह बात लिखी है। उनके विरुद्ध चरित्र-हनन का ऐसा अभियान चला कि क्षुब्ध होकर उन्होंने पार्टी की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। मित्रों के आग्रह पर उन्हें इस्तीफा वापस लेना पड़ा, लेकिन उस वातावरण में पार्टी के अंदर काम करना उनके लिए कठिन हो गया और धीरे

धीरे वे पार्टी से अलग हो गये।

नेहरू-जे.पी. वार्ता तो असफल हो गयी, परंतु सन् 1955 में कांग्रेस ने अपने आवादी सम्मेलन में समाजवादी व्यवस्था के पक्ष में प्रस्ताव पारित किया। आचार्य नरेन्द्र देव उस समय राज्य सभा में थे। उन्होंने संसद में इस पर भाषण दिया और कांग्रेस के आवादी अधिवेशन का जिक्र करते हुए गालिब का एक शेर पढ़ा :

"रगों में दौड़ते - फिरने के हम नहीं कायल।
जो आंख ही से न टपका वह लहू क्या है।"

आचार्य जी का मतलब यह था कि मात्र प्रस्ताव पारित करने से कुछ नहीं होगा, बल्कि कुछ करना होगा। नेहरू जी उनके भाषण को सुनने के लिए विशेष रूप से गये हुए थे। जब आचार्य जी ने शेर पढ़ा तो नेहरू जी हंसने लगे।

त्रावणकोर - कोचीन में फायरिंग

नेहरू-जे.पी. वार्ता को लेकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में विवाद तो शुरू हो ही गया था, बाद में एक और घटना को लेकर पार्टी में विभाजन ही हो गया। सन् 1954 में त्रावणकोर-कोचीन राज्य में उपचुनाव में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को 19 सीटें प्राप्त हुईं। केवल 19 सीटों से ही पार्टी ने अन्य दलों के सहयोग से सरकार का गठन कर लिया। यह भारत में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार थी।

तमिलनाडु कांग्रेस समिति त्रावणकोर - कोचीन क्षेत्र को तमिलनाडु में मिलाने के लिए आंदोलन कर रही थी। यह आंदोलन बाद में हिंसक हो गया। अंत में 11 अगस्त, 1954 को आंदोलनकारियों पर गोलियां चलायी गयीं। उस समय लोहिया इलाहाबाद जेल में थे। जमींदारों के विरुद्ध भूमिहीन मजदूरों का नेतृत्व करने के कारण उन्हें गिरफ्तार किया गया था। उन्होंने जेल से ही त्रावणकोर - कोचीन के मुख्यमंत्री पट्टम थानुपिल्लै को तार भेजकर उनसे त्याग-पत्र की मांग की। लोहिया का विचार था कि किसी भी स्थिति में सरकार को गोली नहीं चलवानी चाहिए थी क्योंकि तब कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी में फर्क क्या रहेगा? जब थानुपिल्लै ने इस्तीफा देने से इंकार कर दिया तो लोहिया ने पार्टी के महामंत्री पद और पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।

थानुपिल्लै ने घटना की जांच करने के लिए एक न्यायिक आयोग का गठन कर लिया। आयोग ने गोली चलाये जाने को उचित ठहराया क्योंकि आंदोलनकारी तोड़फोड़ करने लगे थे। जे.पी. ने भी राज्य सरकार का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि वैसे तो कभी भी गोली चलाना दुर्भाग्यपूर्ण है, किंतु यदि आंदोलनकारी हिंसा पर उतारू हो जायें तो सरकार क्या कर सकती है? आखिर सरकार को जनता के जानमाल और राज्य की संपत्ति

की सुरक्षा करनी है।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में विभाजन

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने इस घटना के लिए राष्ट्र से क्षमा याचना भी की। इस विवाद पर विचार करने के लिए नागपुर में पार्टी का सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में राज्य सरकार के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया। लेकिन पार्टी के अंदर विवाद बढ़ता रहा। डा. लोहिया सार्वजनिक रूप से पार्टी की नीति की आलोचना करने लगे। उनका एक सिद्धांत था -- ''पब्लिक वेंटिलेशन ऑफ ग्रिवांसेज'' यानी शिकायतों का जनता के बीच इजहार करना। यह विवाद इतना बढ़ गया कि अंत में पार्टी के जयपुर अधिवेशन में उन्हें दल से निष्कासित कर दिया गया। अपने निष्कासन के लिए उन्होंने जे.पी. की तीखी आलोचना की। इस तरह जे.पी. और लोहिया के संबंधों में दरार बढ़ने लगी। बाद में लोहिया ने सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 93-94
2. नारायण, जयप्रकाश : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 86-8

सर्वोदय और जीवनदान

शुरू से जे.पी. की यह मान्यता रही कि गांव मनुष्यों का स्वाभाविक निवास है और मनुष्य का विकास गांवों के विकास के बिना संभव नहीं है। सन् 1953 तक उनका यह विश्वास पक्का हो गया कि देश की रचना का काम राजनीतिक दलों से नहीं होगा। उनका मानना था कि भारत के परिप्रेक्ष्य में समाजवाद की रूपरेखा खींचनी पड़ेगी। गांधी जी ने एक रूपरेखा दी, लेकिन वे उसकी तह में नहीं जा सके क्योंकि उनकी मृत्यु हो गयी, लेकिन समाजवादियों ने कोई रूपरेखा नहीं दी।

अपने राजनीतिक जीवन के प्रारंभ से ही भूमि सुधार की समस्या के प्रति जे.पी. चिंतित थे। विनोबा के भूदान आंदोलन में उन्हें इसका निदान नजर आ रहा था। सन् 1951 में विनोबा सैकड़ों मील पैदल चलकर हैदराबाद पहुंचे और वहां सर्वोदय सम्मेलन में सम्मिलित हुए। बाद में नलगोंडा जिले में एक प्रार्थना सभा के बाद 40 अछूत परिवारों ने उनसे जमीन उपलब्ध करवाने का आग्रह किया ताकि वे अपनी जीविका का उपार्जन कर सकें। विनोबा ने उन लोगों के लिए भूमि दान में देने की अपील की और आश्चर्यजनक रूप से रामचन्द्र रेड्डी नामक एक व्यक्ति ने तुरंत एक सौ एकड़ जमीन दान में दे दी। इस घटना से विनोबा को भूदान के लिए अभियान चलाने की प्रेरणा मिली। उन्होंने इसे भूमि-दान-यज्ञ कहा जिसका अर्थ हुआ ईश्वर की आराधना, भूदान के माध्यम से जब तक कि आदर्श स्थिति न बन जाये जिसमें हर व्यक्ति के पास मात्र उसकी आवश्यकतानुसार भूमि हो। विनोबा ने अपना अभियान शुरू कर दिया और वापस लौटते समय अपनी पदयात्रा के क्रम में उन्होंने वैभवशाली भूस्वामियों से आग्रह किया कि वे अपनी जमीन का छठा हिस्सा अपने छठे पुत्र के हिस्से के रूप में दान कर दें। उन्होंने नारा दिया कि मैं आपको प्यार से लूटने आया हूं।

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, जे.पी. विनोबा की ओर उत्तरोत्तर खिंचते चले जा रहे थे। शुरू में जे.पी. को भूदान-आंदोलन की सार्थकता के प्रति संदेह था, किंतु उन्होंने सोचा, "जब विनोबा जैसे व्यक्ति ने कुछ शुरू किया है, तो केवल एक शगूफा या दिखावे की चीज कहकर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"[1] उन्होंने लिखा है, "भूदान-आंदोलन शुरू हुआ, तब पहले तो दूसरे लोगों की तरह मुझे भी यह एक मजाक जैसा लगा। इससे भूमि-समस्या कैसे सुलझेगी? इस तरह दान मांगते फिरेंगे, तब तो सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे।

किंतु मैं बारीकी से देखता रहा। विनोबा जी से भी मिला। उनके साथ चर्चाएं कीं। इसके पीछे उनकी मूल कल्पना क्या है, वह सब समझ लिया और मुझे उसके प्रति आकर्षण हुआ। मुझे महसूस हुआ कि स्वयं अनुभव करना चाहिए। इसलिए मैं गया जिले में घूमा। सात दिनों में साढ़े सात हजार एकड़ भूमि मुझे दान में मिली। मेरी समझ में आ गया और मैं इस आंदोलन में कूद पड़ा।''[2]

गया जिले में स्वयं मिली सफलता और आंदोलन के उत्तरोत्तर विकास से उन्हें समाज की संरचना को बदलने की एक झलक दिखायी पड़ी। इसी बीच, सन् 1952 में ही उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले के ''मंगरौठ'' नामक गांव का ग्रामदान घोषित हो गया। इस पहले ग्रामदान को देखने के लिए जे.पी. वहां गये। वहां उन्होंने जो कुछ देखा, उन्हें ''उसमें भविष्य की एक सुंदर झांकी'' दिखायी पड़ी।

सन् 1953 में रंगून में आयोजित एशियाई समाजवादी सम्मेलन में अपने व्याख्यान में उन्होंने जोर देकर कहा कि देश की सबसे बड़ी समस्या, भूमि समस्या, का निदान भूदान है। उसी वर्ष अप्रैल महीने में चांडिल में सर्वोदय सम्मेलन हुआ, जिसमें विनोबा का मर्मस्पर्शी प्रवचन हुआ जो ''सर्वोदय का घोषणा-पत्र'' के रूप में चर्चित हुआ। इसमें विनोबा ने कहा, ''हमको स्वतंत्र लोकशक्ति का निर्माण करना है। मेरे कहने का मतलब यह है कि हमको हिंसा शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति (कानून) से भिन्न एक स्वतंत्र लोक शक्ति प्रकट करनी है। ...इस दृष्टि से विचार करने पर यह बात सहज ही ध्यान में आयेगी कि हमारी कार्य-पद्धति के दो भाग रहेंगे—विचार-शासन और कृतत्व-विभाजन। विचार-शासन का अर्थ है, विचार समझाना, विचार समझना और विचार को समझे बिना किसी भी बात को कबूल न करना। अगर बिना विचार समझे कोई हमारी बात कबूल कर लेता है, तो उससे दुखी होना।... दूसरा भाग है कृतत्व-विभाजन। इसका अर्थ यह है कि सारा कृतत्व, यानी सारी कर्म-शक्ति एक केंद्र में केंद्रित नहीं होनी चाहिए। बल्कि हर गांव में कर्म-शक्ति और कर्म-सत्ता का निर्माण होना चाहिए। यदि हम सत्ता का ऐसा विभाजन नहीं करेंगे, तो समझ लीजिये कि सैन्य शक्ति अनिवार्य हो जायेगी। ... ग्राम-स्वराज्य और ग्राम-आयोजन की स्थिति खड़ी होनी चाहिए। इसका नाम है, स्वतंत्र लोक शक्ति, तीसरी शक्ति!''[3]

विनोबा के भाषण से जे.पी. इतने अभिभूत हो गये कि भरी सभा में उन्होंने कह दिया, ''आज मेरे सारे संदेह समाप्त हो चुके हैं। मैं अपने आपको विनोबा का शिष्य कहने और कहलाने को तैयार हूं।'' भूदान-आंदोलन में समाज को अहिंसक क्रांति से बदलने की संभावना उन्हें दीख रही थी। हिंसक क्रांति की परिणति किस बर्बरता में होती है, इसका उदाहरण रूसी क्रांति में उन्हें मिल चुका था।

शुरू में भूदान के प्रति उनका दृष्टिकोण समाजवादी था। उन्हें लगता था कि इससे

भूमि के पुनर्वितरण के लिए एक फिजां तैयार होगी। श्री सच्चिदानंद के अनुसार जे.पी. ने बसावन सिंह से कहा था कि भूदान-आंदोलन से जो लहर पैदा हुई है उस पर सोशलिस्ट पार्टी को सवार हो जाना चाहिये। उन्हें लगा कि इसके माध्यम से समाजवादी आंदोलन की भूमिका तैयार होगी। दरअसल, वे महसूस कर रहे थे कि भूदान आंदोलन ने भूमिहीन वर्ग में जमीन के लिए भूख जगा दी है और क्रांति के लिए यह एक बहुत बड़ा प्रेरक तत्व होगा। इसी दृष्टि से भूदान में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभायी।

जीवनदान

सन् 1954 के अप्रैल महीने में बोधगया में सर्वोदय सम्मेलन हुआ। 19 अप्रैल को जे.पी. ने पूरी भावुकता के साथ सम्मेलन में कहा कि भूदान आंदोलन के प्रति उनकी श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और यह एक ऐसा आंदोलन है, जिसमें एक साल या पांच साल देने से काम नहीं चलेगा। इसके साथ ही उन्होंने अपने जीवनदान की घोषणा की और अन्य कार्यकर्ताओं का भी जीवनदान करने के लिए आह्वान किया। उनकी इस घोषणा का स्वागत करते हुए विनोबा ने कहा, "अभी हमने एक व्याख्यान सुना। उसमें तो हृदय बोल रहा था। मुझे रुक्मिणी के पत्र की याद आ गयी। इसमें उसने भगवान को लिखा है कि मुझे सौ-सौ अवतार लेने पड़ेंगे, तो मैं लेती रहूंगी, परंतु विवाह तो आपके ही साथ करूंगी। ऐसे शुभ निश्चय की बात सुनकर हृदय को बहुत सुख मिलता है। मैं चाहता हूं कि हम सब भी जयप्रकाश बाबू की ही तरह दृढ़संकल्पी बनें।"[4]

जे.पी. के इस निर्णय से प्रभावती जी आह्लादित हो गयीं। उन्होंने विनोबा के पास जाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की कि जे.पी. में यह परिवर्तन यदि बापू के जीवनकाल में आ जाता तो उन्हें कितनी शांति मिलती। विनोबा ने उन्हें समझाया कि यह सब बापू की प्रेरणा से ही संभव हुआ है और बापू यह सब देख रहे हैं। सम्मेलन में भाग ले रहे सात हजार कार्यकर्ताओं में 656 ने भी जीवनदान की घोषणा की। सन् 1954 में जे.पी. के जीवनदान का एक विशेष महत्व है क्योंकि लगभग एक वर्ष पूर्व नेहरू जी ने उन्हें अपने मंत्रिमंडल में शामिल करने का प्रस्ताव किया था। उस समय लोग उन्हें नेहरू जी के उत्तराधिकारी के रूप में देखते थे। इस पृष्ठभूमि में जीवनदान का निर्णय उनके दृढ़संकल्प, त्याग और निष्ठा को प्रतिबिंबित करता है।

बाद में जे.पी. ने अपने जीवनदान के बारे में अंग्रेजी "जनता" में लेख लिखकर अपना पक्ष स्पष्ट किया, "... मैंने जो निर्णय लिया, वह तात्कालिक प्रेरणा से नहीं लिया। मैं पिछले कई महीने से धीरे धीरे उस तरफ खिंच रहा था। इस कदम का यह अर्थ भी नहीं है कि जिन आदर्शों का मैं अभी तक समर्थन कर रहा था, उन सबको अस्वीकार कर दिया है। बल्कि, इसका अर्थ तो यह है कि मैंने समझा है कि उन आदर्शों की प्राप्ति और सुरक्षा

भूदान अथवा गांधी मार्ग के द्वारा अधिक अच्छे ढंग से हो सकती है।... यह केवल भूदान के प्रति समर्पण नहीं है, जैसा कि अक्सर कहा जाता रहा है, बल्कि उन सब आदर्शों के प्रति समर्पण है जिनका समर्थन भूदान करता है।... छिछली निगाह से देखने वालों के लिए भूदान केवल एक कृषि सुधार का आंदोलन है, जो अधिक से अधिक, कानून के निर्माण के लिए भूमिका तैयार कर रहा है। जो लोग गहराई में जाकर देखते हैं, उनके लिंए इस आंदोलन का कहीं अधिक महत्व है। उनकी दृष्टि में यह सर्वतोन्मुखी सामाजिक एवं मानवीय क्रांति की शुरुआत है; मानवीय भी इसलिए कि इसका लक्ष्य समाज के साथ साथ मनुष्य को भी बदलना है। महात्मा गांधी की अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया का यह सामान्य स्तर पर किया जानेवाला प्रयोग है।"[5]

उन्होंने स्पष्ट किया कि यह क्रांतिकारी प्रक्रिया कृषि के अलावा किसी दूसरे क्षेत्र में भी शुरू की जा सकती थी। किंतु कृषि क्षेत्र को चुनने का कारण यह है कि यह भूमि उत्पादन का प्राथमिक स्रोत है, भूमि-समस्या सबसे ज्यादा त्वरापूर्ण है और यह गांवों में रहनेवाली विशाल जनसंख्या को प्रभावित करती है।

जीवनदान की घटना के पहले 30 मार्च को डा. लोहिया ने जे.पी. को पत्र लिखा था कि देश और पार्टी को हिलाने का समय आ रहा है और जैसा तुम हिला सकते हो, वैसा और कोई नहीं हिला सकता। तुम्हीं देश के नेता हो सकते हो और समाजवाद को बढ़ा सकते हो। इसके जवाब में 2 अप्रैल को जे.पी. ने लिखा, "इस समय मेरे जो विचार हैं, उनको जानते हुए यह प्रस्ताव तुम्हें करना ही नहीं चाहिए। देश को हिलाने की शक्ति मुझमें न कभी थी, न आज है। न उस प्रकार हिलाने का मेरे पास बहुत महत्व ही है। ... मेरा विचार है कि विधायक कर्मियों को किसी भी प्रकार के चुनाव में भाग नहीं लेना चाहिए। तदनुकूल मुझे भी पार्टी का "चवन्नी" का ही सदस्य बनकर रहना होगा।"

शेखोदेवरा आश्रम की स्थापना

जीवनदान के बाद यद्यपि वे प्रजा समाजवादी पार्टी के सदस्य बने रहे, किंतु कभी कभी दल की बैठकों में भाग लेने या कभी कभी कुछ सलाह देने के अलावा उन्होंने पार्टी के किसी कार्यक्रम में हिस्सा नहीं लिया। जीवनदान के तुरंत बाद ग्रामीण पुनर्निर्माण संबंधी अपने विचारों को कार्यरूप देने के लिए उन्होंने जीवनदान के तुरंत बाद ग्रामीण पुनर्निर्माण संबंधी अपने विचारों को कार्यरूप देने के लिए उन्होंने बिहार के अत्यंत पिछड़े क्षेत्र गया जिले के कव्वाकोल थाने को चुना। उनका मानना था कि दान में प्राप्त की गयी भूमि को गरीबों के बीच बांट देने मात्र से भूदान आंदोलन के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती। भूदान तो प्रथम चरण है सर्वोदय समाज का। अपनी सभाओं में वे कहा करते थे कि गांव में सबको जमीन देने के बाद योजनाबद्ध तरीके से सघन और सुधरी खेती के लिए प्रयास

करने होंगे। गांवों की आर्थिक व्यवस्था की पुनर्रचना में किसानों की मदद करनी होगी और कृषि विकास, पशुधन विकास, ग्रामोद्योग, शैक्षणिक कार्यक्रम एवं आत्मनिर्भरता पर बल देना होगा। आज के गांव बिखरे हुए हैं जिन्हें सामूहिक प्रयासों में जोड़ना होगा। इसके लिए उन्हें समर्पित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता महसूस हुई।

इसी उद्देश्य से 5 मई, 1954 को जे.पी. ने कव्वाकोल के शेखोदेवरा गांव में ग्राम-निर्माण मंडल, सर्वोदय आश्रम की स्थापना की। यह आमतौर पर शेखोदेवरा आश्रम के रूप में जाना जाता है। बोधगया के सर्वोदय सम्मेलन में इसकी घोषणा स्वयं विनोबा ने की थी। 4 मई को जे.पी. ने शेखोदेवरा में आश्रम स्थापित करने की घोषणा की। जे.पी. का विचार यह था कि वे गांव में रहकर इस संस्था के माध्यम से रचनात्मक काम करेंगे और नये समाज की व्यवस्था की रूपरेखा तैयार की जायेगी। अत्यंत पिछड़े क्षेत्र से वे अपना काम शुरू करना चाहते थे और इस दृष्टि से इस इलाके का चुनाव किया गया। उस समय वह बिहार का अंडमान-निकोबार माना जाता था। उन दिनों विनोबा नये आश्रम स्थापित करने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि पुराने आश्रमों को भी वह बंद करना चाहते थे क्योंकि पुराने आश्रम अधिकतर अंतर्मुखी थे और बाहरी दुनिया से उनका संबंध बहुत सीमित था। जे.पी. आश्रमों को बहिर्मुखी बनाना चाहते थे। उनकी कल्पना थी कि यह आश्रम प्रशिक्षण केंद्र होगा उन कार्यकर्ताओं का जो रचनात्मक काम करना चाहते हैं। उनकी यह भी इच्छा थी कि जो भी कार्यकर्ता आयें वे अपनी जमीन और संपत्ति आश्रम को दे दें। इस तरह वे प्रतिबद्ध सामाजिक कार्यकर्ताओं का एक समूह तैयार करना चाहते थे। शेखोदेवरा आश्रम से जुड़े श्री त्रिपुरारी शरण ने जे.पी. द्वारा निश्चित किये गये आश्रम के उद्देश्यों को इस प्रकार शब्दबद्ध किया है : (क) सत्य और अहिंसा के आधार पर शोषणहीन, शासनमुक्त अहिंसक समाज की रचना करना, जिससे ग्राम्य जीवन सुखद, स्वस्थ, संस्कृत, स्वशासित, स्वतंत्र और स्वावलंबी बन सके तथा (ख) मनुष्यों के जीवन-मूल्यों में ऐसा परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना, जिससे व्यक्तिगत हित लोकहित से और भौतिक आकांक्षाएं आध्यात्मिक प्रेरणाओं से पोषित हों।"[6]

भूदान-आंदोलन से जुड़े लगभग एक सौ युवक और अनुभवी कार्यकर्ताओं के साथ लगभग 70 एकड़ में आश्रम की स्थापना की गयी। प्रशिक्षण के लिए भारत के विभिन्न हिस्सों से विशेषज्ञ बुलाये गये। जापानी पद्धति से खेती करने का प्रशिक्षण देने जापान से कार्यकर्ताओं को बुलाया गया और यहां के कुछ लोगों को जापान भेजा गया। आश्रम के सभी कार्यकर्ता कड़ी मेहनत करने लगे। स्वयं जे.पी. तीन-चार घंटे रोज मेहनत करते जिसमें गांव की जमीन को समतल बनाना, खेती करना, सामूहिक भोजनालय की व्यवस्था करना, कम्पोस्ट बनाना और पाखाना साफ करना शामिल था। इसके अतिरिक्त वे गांव में संगठन, भूमि-वितरण और अन्य निर्माण कार्य में भी समय दिया करते थे। यह काम

सन् 1958 तक लगातार चलता रहा। आश्रम की स्थापना से वहां क्या फर्क पड़ा, इस बारे में डा. सच्चिदानंद ने लिखा है, "भूदान जमीन पर दो नये गांव बसाये गये जिनमें अधिकतर हरिजन थे। भूमि अधिकतर पथरीली और बंजर थी, लेकिन कठिन परिश्रम और संकल्प से लोगों ने उसे खेती योग्य बनाया और उन्हें एक नये जीवन का आभास मिलने लगा। ये दो गांव गांधीधाम और जयनगर कस्तूरबा ग्राम के नाम से जाने जाते थे। लोगों ने नवाचार अपनाने के क्रम में तत्परता दिखलायी पर इस दौरान उन्होंने अपने सामाजिक मूल्यों का त्याग नहीं किया। बहुत-से भूमिहीन मजदूर जो अपने सामंती मालिकों के दास थे, कठिन परिश्रम के द्वारा भूस्वामी बन गये और कुछ कुशल कारीगर के रूप में उभरे। पथरीली बंजर भूमि खंड अब हरे-भरे खेतों में परिणत हो गये हैं। कुएं, नलकूप, छोटे बांध, नयी कृषि विधियां और उर्वरकों के कारण कृषि उत्पादन पहले से चार गुना हो गया है।"[7]

इस प्रयोग से यहां के हरिजनों की आर्थिक उन्नति तो हुई ही उनमें नया आत्मविश्वास भी जगा। यह क्षेत्र मलेरिया, कालाजार और कुष्ठ रोग से प्रभावित था। इसलिए यहां एक कुष्ठ अस्पताल खोला गया। अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने इस क्षेत्र का चुनाव गहन और सर्वांगीण विकास के लिए किया।

ग्राम निर्माण मंडल के कार्यक्रमों में भूदान, ग्रामदान, ग्रामसभा एवं शांति सेना का गठन, नयी तालीम, महिला विकास, नशाबंदी, छात्र-युवाओं का संगठन, खादी ग्रामोद्योग और लघु उद्योग का विकास शामिल है। जे.पी. ने यह भी स्पष्ट किया कि आश्रमों में संन्यासियों जैसा जीवन जीने पर बल दिया जाता रहा है। लेकिन हम परिवार आश्रम बनाना चाहते हैं। समाज परिवारों का है, इसलिए हम कार्यकर्ताओं का आदर्श परिवार बनाना चाहते हैं।

ग्रामदान और ग्रामीकरण

वे समझते थे कि इस प्रयोग से समतावादी समाज बनाने की व्यावहारिकताएं प्रगट होंगी। शुरू में सामूहिक खेती की बात उन्होंने की और जमीन के ग्रामीकरण पर जोर दिया। इससे तात्पर्य यह था कि जमीन गांव की हो, व्यक्ति की नहीं। विनोबा ने "ग्रामदान" कहा था। विनोबा ने "दान" में समता के भाव को भरना चाहा। वह शंकराचार्य का एक श्लोक बराबर उद्धृत करते थे--"दानं संविभागः"--दान अर्थात् समान बंटवारा। ग्रामदान और ग्रामीकरण के बीच व्यावहारिकता में मूल अंतर नहीं है। "दान" पवित्रता का द्योतक है और "ग्रामीकरण" सामाजिकता का। जे.पी. ने "दान" का इस्तेमाल नहीं किया क्योंकि एक सामाजिक धारणा है कि दान की गयी वस्तु का वह व्यक्ति इस्तेमाल नहीं करेगा, जैसे--गोदान, कन्यादान आदि। ग्रामीकरण में दान के बाद भी एक ग्रामीण की हैसियत से सामूहिक स्वामित्व में उसका अधिकार बना रहेगा।

इसी विचारधारा को कार्यरूप देने के लिए उन्होंने शेखोदेवरा में काम शुरू किया। उन्होंने कव्वाकोल-प्रखंड के लिए सम्यक योजना बनायी, जिसका उद्देश्य सिर्फ उस क्षेत्र का आर्थिक विकास नहीं था, बल्कि वे चाहते थे कि गरीब और असहाय जनता में ऐसी शक्ति का संचार हो जो क्रांति और रचना दोनों को संपन्न कर सके। अपनी योजना के बारे में जे.पी. ने कहा, "अहिंसक क्रांति का प्रारंभ विचार-क्रांति से होता है। विचारों के परिवर्तन से मनुष्य के जीवन में परिवर्तन होता है, और बहुजनों के परिवर्तन से समाज का परिवर्तन होता है।

"... इस कार्य की पहली मंजिल तब पूरी होगी, जब हर गांव की सब भूमि का ग्रामीकरण हो सकेगा। ... अहिंसक समाज की कल्पना के अनुसार हर गांव स्वावलंबी होगा और बाहर से वही वस्तुएं मंगायेगा, जो स्वयं पैदा नहीं कर सकेगा। इस प्रकार, हर गांव में अपना शासन होगा, जो गांव तथा देश के हितों को ध्यान में रखकर चलाया जाएगा। ग्राम-निर्माण के यही हमारे आदर्श होंगे।"[8]

इस पूरे प्रयोग में गांधी जी की ग्राम स्वराज्य की कल्पना को मूर्त रूप देने का एक कठिन प्रयास था। ग्राम-निर्माण-मंडल के प्रयासों से गया जिले के 16 हजार भूमिहीन परिवारों के बीच 26 हजार एकड़ भूमि वितरित की गयी। सन् 1971 तक सैकड़ों ग्रामदान हुए और वहां ग्राम सभाओं का गठन हुआ और साथ ही ग्राम कोष का भी निर्माण हुआ। वैसे पूरे देश में चार-पांच हजार गांवों का ग्रामदान हुआ और जे.पी. का विश्वास निरंतर दृढ़ होता गया कि किसी कानून से जितनी सफलता नहीं मिली, उससे कहीं अधिक सफलता भूदान आंदोलन से मिली।

प्रजा समाजवादी पार्टी से त्यागपत्र

वैसे तो जीवनदान के बाद जे.पी. राजनीति में बिल्कुल निष्क्रिय हो गये थे, किंतु, पार्टी के सामान्य सदस्य बने रहे। सन् 1955 में डा. लोहिया के पार्टी से निष्कासन और सन् 1956 में डा. आचार्य नरेन्द्र देव की मृत्यु के बाद पार्टी की स्थिति थोड़ी कमजोर हो गयी। ऐसी स्थिति में मित्रों की सलाह मानकर सन् 1957 के आम चुनाव तक उन्होंने पार्टी की सदस्यता नहीं छोड़ी। अंत में अक्तूबर, 1957 में उन्होंने पार्टी की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। पार्टी से अलग होने के बाद दल के सदस्यों के नाम उन्होंने एक लंबा पत्र लिखकर अपने विचारों को स्पष्ट किया, "स्वतंत्रता, समता, एवं बंधुता के जिन पुराने संकेतदीपों ने मेरा जीवन-पथ आलोकित किया था और मुझे लोकतांत्रिक समाजवाद तक पहुंचाया था, उन्होंने ही मुझे मार्ग के इस मोड़ पर से आगे जाने के लिए प्रेरित किया। मुझे अफसोस है कि अपनी जीवन यात्रा के इस बिंदु पर मैं गांधी जी के जीवनकाल में नहीं पहुंचा। अस्तु, कुछ वर्ष पूर्व मेरे सामने यह स्पष्ट हो गया कि आज जिसे हम समाजवाद समझते

हैं, वह मनुष्य जाति को स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व एवं शांति के ऊंचे लक्ष्यों पर पहुंचा नहीं पायेगा। निस्संदेह, समाजवाद मनुष्य जाति को, अन्य किसी भी प्रतियोगी समाज-दर्शन की अपेक्षा, उन लक्ष्यों के निकटतर ले जाने का आश्वासन देता है परंतु मेरा विश्वास है कि यदि समाजवाद सर्वोदय में परिवर्तित नहीं होता, तो यह लक्ष्य उसकी पहुंच के बाहर ही रहेंगे और जिस प्रकार हमने स्वतंत्रता की राख उड़ते देखी है, उसी प्रकार समाजवाद की भी राख उड़ते देखेंगे।"[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी भविष्यवाणी कितनी सही निकली। इसके अतिरिक्त पार्टी छोड़ने का एक अन्य कारण यह भी था कि दल के द्वारा उनके ऊपर व्यक्तिगत आक्षेप किये गये। बाद में प्रो. मुकट बिहारी लाल द्वारा लिखित पुस्तक 'आचार्य नरेन्द्र देव : युग और नेतृत्व' के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा, "जिन कारणों ने मुझे पार्टी और राजनीति छोड़कर सर्वोदय आंदोलन में जाने को प्रेरित किया, उनमें से वह आत्मिक दुख भी था, जो पार्टी में चरित्रबद्ध और उसमें विघटन के समय मुझे हुआ।" समाजवाद की उनकी एक परिभाषा थी जिसे उन्होंने विकसित कर सर्वोदय से जोड़ दिया। उनके विचार से समाजवाद के तीन रूप हैं--"तामसिक समाजवाद", "राजसिक समाजवाद" और "सात्विक समाजवाद"। सन् 1959 में बंबई में आयोजित सोशलिस्ट पार्टी के रजत जयंती समारोह में बोलते हुए उन्होंने विस्तार से इसकी व्याख्या की थी। "तामसिक समाजवाद" का अर्थ हुआ हिंसा के द्वारा लाया गया समाजवाद। इससे उनका तात्पर्य साम्यवादी तानाशाही से था। राजसत्ता के जरिये स्थापित समाजवाद "राजसिक समाजवाद" हुआ। और सात्विक साधनों द्वारा स्थापित समाजवाद "सात्विक समाजवाद" हुआ जो सर्वोदय का पर्याय है। इस अवधारणा को बाद में विनोबा ने भी स्वीकार किया।

श्री सच्चिदानंद ने लेखक को बताया कि सन् 1962 में चीनी आक्रमण के समय विनोबा राजमहल (बिहार) आये और वहां उन्होंने अपने भाषण में भारत-चीन लड़ाई के बारे में कहा, "यह संघर्ष जमीन के लिए नहीं है। यह विचारधाराओं का संघर्ष है।" सच्चिदानंद उनके रिपोर्टर थे और उन्होंने विनोबा के इस वक्तव्य को पी.टी.आई. को भेज दिया जिससे कई अखबारों में यह प्रकाशित हुआ। कुछ दिनों के बाद निर्मला देशपांडे ने उनसे पूछा, "बाबा, आपने कैसे कह दिया कि यह विचारधाराओं का संघर्ष है? चीन के पास तो विचारधारा है, भारत के पास कौन-सी विचारधारा है?"

विनोबा ने उस समय सिर्फ इतना जवाब दिया, "मैंने कहा तो है।"

बाद में आरामबाग (कलकत्ता के पास) में सर्व-सेवा-संघ के सम्मेलन में विनोबा ने कहा कि भारत शांतिपूर्वक तरीके से लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना चाहता है और यही सर्वोदय है।

सर्वोदय में शामिल होने के बाद निष्ठापूर्वक जे.पी. उसके आदर्शों को आगे बढ़ाने

में लगे रहे। इसी बीच उन्होंने सर्वोदय आंदोलन के वैचारिक प्रवक्ता के रूप में इसकी विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया। देशी एवं विदेशी बुद्धिजीवियों को समाजशास्त्रीय मुहावरों में वे इसके दर्शन को समझाते थे।

उन्होंने इस पूरे आंदोलन को एक प्रयोग के रूप में लिया और हमेशा विनोबा का साथ दिया। विनोबा मानते थे कि इस आंदोलन में किसी तरह का संघर्ष नहीं होना चाहिए, अहिंसक संघर्ष भी नहीं। उनके विचार में संघर्ष से संघर्षमुक्त समाज का निर्माण नहीं हो सकता है। इसलिए लोगों को समझा-बुझाकर समाज में परिवर्तन लाया जाना चाहिए। सन् 1958 में सर्वोदय के युवा कार्यकर्ताओं की पटना में बैठक हुई। उसमें कुछ लोगों के हस्ताक्षर से एक परचा निकाला गया जिसमें कहा गया कि सर्वोदय की पद्धति से समाज में कोई परिवर्तन नहीं होगा। उसमें सुझाव दिया गया था कि इसमें सत्याग्रह को भी शामिल किया जाना चाहिये। इस पर हस्ताक्षर करनेवालों में सर्वश्री सच्चिदानंद, दयानंद सहाय, त्रिपुरारी शरण, गीता प्रसाद सिंह और श्याम बहादुर सिंह शामिल थे। जे.पी. ने जब परचा देखा तो उन्होंने सच्चिदानंद को बुलाया और कहा, "इस पर आपका भी दस्तखत है। आपने कैसे कर दिया? मैं जब युवा था तो आपसे भी ज्यादा उग्र था। विनोबा का आंदोलन तो एक प्रयोग है। प्रयोग अभी चल ही रहा है। इस पर आपने निर्णय कैसे दे दिया? मैं इस प्रयोग में साथ देने आया हूं।"

सच्चिदानंद– "आप उसमें सत्याग्रह जोड़वाइये।"

जे.पी.– "मैं बाहर से मदद करने आया हूं। मैं ऐसी सलाह नहीं दे सकता।"

इस प्रयोग में वे लगातार सन् 1970 तक लगे रहे और पूरे देश में घूमते रहे। इस काम में वे काफी लोकप्रिय भी हुए। ऑस्टीगार्ड और क्योरेल ने सर्वोदय आंदोलन का अध्ययन करने के बाद "द जेन्टिल एनार्किस्ट" में लिखा कि 85% सर्वोदयी जे.पी. को विनोबा का उत्तराधिकारी बनाने के पक्षधर थे।

इस आंदोलन में उनका अंतिम प्रयोग हुआ बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के मुसहरी प्रखंड में। सन् 1970 के महीने में थोड़ा आराम करने जे.पी. गंगोत्री गये। सुन्दरलाल बहुगुणा ने उनके लिए वहां सारी व्यवस्था की थी। अपनी उत्तराखंड की यात्रा के दौरान पौड़ी नामक स्थान में उन्हें निर्मला देशपांडे का सुन्दरलाल बहुगुणा के नाम लिखा पत्र मिला जिससे उन्हें मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर के नक्सलवादियों ने जिला सर्वोदय मंडल के तत्कालीन अध्यक्ष बद्री नारायण सिंह और मंत्री गोपाल जी मिश्र को जान से मार डालने की धमकी दी थी। उनकी हत्या की तारीखें 5 और 7 जून निश्चित की गयी थीं। इससे पहले जमशेदपुर से गांधी शांति प्रतिष्ठान के कार्यकर्ता श्री अयूब खां का पत्र उन्हें प्राप्त हुआ था। जिसमें उन्होंने प्रतिष्ठा के जमशेदपुर केंद्र पर नक्सलवादी आक्रमण के दौरान बम विस्फोट होने तथा गांधी जी की तस्वीर को तोड़े जाने की सूचना दी थी। अयूब खां

को उन्होंने जवाब दिया:

"यदि हिंसावादियों ने गांधी जी को अपना दुश्मन माना है, तो इसमें आश्चर्य क्या है? बल्कि मुझे तो इस बात पर खुशी महसूस हो रही है कि रक्त-क्रांतिवाले गांधी जी के विचारों में इतनी शक्ति पाते हैं और उनसे इतना भय खाते हैं कि गांधी जी का नामोनिशां मिटाने पर उतारू हो गये हैं। लेकिन ये बड़े नादान लोग हैं। सत्य को कभी मिटाया नहीं जा सकता। उसको मिटाने की जितनी कोशिश होगी, उतना ही आधिक वह निखरेगा और चमकेगा।"[10]

जे.पी. ने फैसला किया कि नक्सलवादियों की धमकी का उपयोग ठोस कार्य द्वारा विनोबा के ग्रामदान-ग्राम स्वराज्य-आंदोलन के रूप में शुरू की गयी अहिंसक समाज-परिवर्तन एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को तेज करने के लिए किया जाना चाहिए और इस संकल्प के साथ, "या तो यह काम पूरा होगा या मेरी हड्डी गिरेगी" जे.पी. मुसहरी पहुंचे। समाचार पत्रों में यह खबर छपी कि जे.पी. ने नक्सलवादियों की चुनौती स्वीकार कर ली है और उनसे लड़ने का फैसला किया है। लेकिन उन्होंने स्वयं लिखा है कि यह कोई लड़ाई नहीं थी, "मुसहरी में मैंने जो काम उठाया, वह मेरी दृष्टि में किसी के विरुद्ध लड़ाई नहीं थी। बल्कि वह सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के लिए संघर्ष था। सच तो यह है कि मेरे कार्य के बारे में जो कुछ कहा गया, उसके बिल्कुल विपरीत, अत्यंत नम्रतापूर्वक और प्रार्थनापूर्वक मैंने वर्तमान कार्य उठाया। मेरे इस कार्यक्रम को "क्रांतिकारी" भी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि कुछ सर्वोदय-पत्रिकाओं ने इस रूप में उसका चित्रण किया।"[11]

मुसहरी पहुंचकर 9 जून, 1970 को उन्होंने ग्राम स्वराज्य का काम प्रारंभ किया जिसके दो हिस्से थे। पहले हिस्से में ग्रामसभा की स्थापना, ग्रामदान में शामिल बीघा-कट्ठा भूमि का पुनर्वितरण एवं ग्राम कोष की स्थापना शामिल था। उसमें पांचवीं बात यह जोड़ी गयी कि ग्रामवार आवश्यक कागजात तैयार कर ग्रामदान की कानूनी पुष्टि के लिए उन्हें ग्रामदान-पुष्टि पदाधिकारी के पास दाखिल करना।

कार्यक्रम का दूसरा हिस्सा इस प्रकार था : अवतरित भूदान की भूमि का वितरण करना और पूर्व-वितरित भूमि के संबंध में हुई गलतियों तथा गड़बड़ियों को दुरुस्त करना, यह देखना कि "हर विशेषाधिकार-प्राप्त व्यक्ति" को उसकी बासभूमि का पर्चा अवश्य मिल जाये तथा पूर्व-वितरित पर्चों के बारे में हुई अनियमितताओं एवं गड़बड़ियों को ठीक करना, भूमिहीन मजदूरों की समस्याओं की तह में जाना तथा उनके लिए यथा-आवश्यक कुछ करने का प्रयास करना, और जे.पी. के ध्यान में लाये गये अन्याय एवं उत्पीड़न के खास खास मामले हाथ में लेना और उनके समाधान में सहायक होना।[12]

इन कामों को करने में जे.पी. को बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। कच्चे, धूलभरे और कीचड़वाले रास्तों से होकर वे ग्राम-ग्राम घूमते रहे। खाली पड़े जीर्ण-शीर्ण मकानों में भी

उन्हें रहना पड़ा। एक बार जे.पी. एक ऐसे गांव में ठहरे, जहां बिजली नहीं थी। गर्मी के पंखे के बिना जे.पी. को कष्ट होगा, यह सोचकर सरकारी अधिकारियों ने उस गांव तक बिजली पहुंचाने की योजना बनायी। लेकिन उन्होंने साफ इंकार कर दिया कि जब बाकी गांववाले हमेशा बिना पंखे के रह सकते हैं तो वे कुछ दिन क्यों नहीं रह सकते? गांववालों को आश्चर्य हुआ कि उनके कारण बिजली आ रही है और वे मना कर रहे हैं। जे.पी. ने स्पष्ट किया कि वे गांव में बिजली आने के विरुद्ध नहीं हैं, बल्कि अपने लिए दी जानेवाली सुविधा के विरुद्ध हैं। हर पंचायत में वे 15-20 दिन रहते थे और वहां के अलग अलग गांवों में घर घर जाकर लोगों से मिलते थे। शुरू में उनके साथ सर्वोदय के दस कार्यकर्ता थे। बाद में उनकी संख्या बढ़कर 25 हो गयी। कार्यकर्ताओं के साथ भी विचार-विमर्श होता रहता था। सप्ताह में एक बार ये कार्यकर्ता एक जगह एकत्र होकर भजन-कीर्तन करते, मनोरंजन के कार्यक्रम रखते और गोष्ठियों का आयोजन करते।

जे.पी. ने महसूस किया कि उस क्षेत्र में भूमिपतियों का असाधारण वर्चस्व है, मजदूरी की दर बहुत ही कम है, घोर बेकारी है तथा खेतीहर मजदूरों में हद दर्जे की गरीबी और व्यापक असंतोष का वातावरण है। जिला स्तर के शहर से सटे होने के बावजूद वह क्षेत्र शिक्षा, कृषि और राजनीतिक चेतना की दृष्टि से पिछड़ा था। उन्होंने यह भी पाया, "शहर के निकट होने का कोई विधायक प्रभाव इस क्षेत्र पर नहीं पड़ा है, लेकिन उसका निषेधात्मक प्रभाव--मुकदमेबाजी, शराबखोरी, सामान्य सामुदायिक जीवन में ह्रास आदि के रूप में--बिल्कुल स्पष्ट है।"

जे.पी. के रचनात्मक कामों से चार महीने में ही वहां का परिदृश्य बदलने लगा। शुरू में डर के कारण कई गांवों में लोगों ने खुलकर जे.पी. का साथ भी नहीं दिया। पहले जिन गावों में लाल सलाम और कत्ल की बातें होती थीं, जहां अंधेरा होने के बाद लोग घर से बाहर निकलने में भी डरते थे वहां दीवारों पर दूसरे नारे भी दीखने लगे। आतंक का साया धीरे धीरे समाप्त होने लगा। गांव गांव में ग्रामसभा की रचना होने लगी और इस पर जे.पी. पुलकित होकर कहते थे कि यही सच्ची लोकसभा है, जिसमें प्रत्यक्ष रूप से लोग भाग लेते हैं। एक प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गया था जिसे जे.पी. आम सभाओं में पढ़कर लोगों से प्रतिज्ञा करवाते थे। ग्रामदान की शर्तों के अतिरिक्त उन्हें दूसरे 11 संकल्प लेने पड़ते थे। इनमें प्रमुख शर्तें थीं--गांव का कोई झगड़ा अदालत में नहीं ले जाया जायेगा, अदालतों में लंबित मामलों को वापस लिया जायेगा, जात-पांत-संप्रदाय आदि का अंतर खत्म किया जायेगा, नशाबंदी होगी और ग्रामसभा की यह जिम्मेदारी होगी कि गांव का कोई भी व्यक्ति भूखा, बेकार या बेघरबार न रहे। इन कामों में उन्हें कितनी सफलता मिली इस बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है, "अहिंसा और ग्राम-स्वराज के रास्ते हम कितना आगे बढ़ सकते हैं,यह मुसहरी में मैंने अनुभव किया।"[13]

नक्सलवादियों के लिए भी उनके दिल में करुणा थी और वे उनकी भी चिंता करते थे। मुसहरी में किये जा रहे प्रयोगों को उन्होंने इतना महत्त्व दिया कि कई संस्थाओं से त्यागपत्र देना शुरू कर दिया। शांति-सेना-मंडल के अध्यक्ष पद से भी हटने की इच्छा उन्होंने जाहिर की। अमरेश सेन ने उनसे आग्रह किया कि वे एक वर्ष और "एवार्ड" के अध्यक्ष बने रहें, किंतु उन्होंने यह कह इसे अस्वीकार कर दिया कि मुसहरी का काम मेरे जीवन का नया मोड़ है और यदि इसका अमल यदि ठीक ढग से नहीं हुआ, तो सब कुछ व्यर्थ हो जायेगा। मई, 1971 में सर्वोदय के नासिक सम्मेलन में उन्होंने जोर देकर कहा कि मुसहरी का काम अब तक के मेरे सभी कामों की तुलना में अधिक महत्त्व का है। किसी आवश्यक काम से भी यदि उन्हें मुसहरी से बाहर जाना पड़ता तो उन्हें काफी दुख होता था।

सन् 1971 में ही बंगलादेश का संकट खड़ा हो गया। इस समस्या को लेकर वे बहुत चिंतित थे, परंतु मुसहरी छोड़ना नहीं चाहते थे। अप्रैल महीने में कलकत्ता से उन्हें बंगलादेश के बारे में होनेवाली बैठक में शामिल होने का निमंत्रण मिला। पहले उन्होंने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया, लेकिन बाद में बहुत दबाव में उन्हें कलकत्ता जाना पड़ा और फिर विदेश यात्रा भी करनी पड़ी। इसके बाद एक एक कर घटना घटती गयी और फिर से मुसहरी में काम करने का अवसर उन्हें नहीं मिला।

विनोबा ने जे.पी. के मुसहरी में किये गये कार्यों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। मुसहरी के अनुभवों पर आधारित जे.पी. का लेख "आमने-सामने" पढ़कर विनोबा ने प्रतिक्रिया व्यक्ति की, कि वे उसमें से हर एक विचार के साथ सहमत हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने उस लेख पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा, "मुसहरी की परिस्थिति पर आपकी प्रतिक्रियाएं मैंने दिलचस्पी के साथ पढ़ीं। आपका प्रयोग बुनियादी परिवर्तन के लिए अहिंसक संभावनाओं को प्रकट करने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।"

भूमि सुधार के लिए जे.पी. हमेशा प्रयासरत रहे। मुसहरी पहले सन् 1967 में बिहार में महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में जब संविद सरकार का गठन हुआ तो जे.पी. ने तत्कालीन राजस्व मंत्री इंद्रदीप सिन्हा से भूमि सुधार पर चर्चा शुरू की। उन्होंने श्री सिन्हा से आग्रह किया कि वह प्रत्येक किसान के लिए अधिकार पत्र बनवाएं जिसमें उनके जोत का पूरा विवरण हो। 10 दिसंबर, 1973 में आंध्र प्रदेश के तेंजोर जिले में भूमि के प्रश्न को लेकर हरिजनों को न्याय दिलाने के लिए जगन्नाथ जी और उनकी पत्नी ने सत्याग्रह किया। जे.पी. ने उनका भरपूर समर्थन किया और वहां जाकर मुख्यमंत्री से बातचीत कर समस्या का समाधान कराया।

सर्वोदय के लंबे अनुभवों के बाद उन्हें अहसास हुआ कि सिर्फ समझाने-बुझाने या अनुनय-विनय से भूमि समस्या का समाधान नहीं होगा। उन्हें लगा कि इसके लिए शांतिपूर्ण

संघर्ष और सत्याग्रह की आवश्यकता होगी। उन्होंने अहिंसा पर जोर नहीं दिया क्योंकि उनका मानना था कि अहिंसा की कई मर्यादाएं होती हैं और वे स्वयं इस ऊंचाई पर नहीं थे कि उन मर्यादाओं का पालन कर सकें। इसलिए उनका जोर शांतिपूर्ण संघर्ष पर था। जीवन के अंतिम वर्षों में व्यक्तिगत बातचीत और कई साक्षात्कारों में उन्होंने यह दुहराया कि समाज परिवर्तन के लिए शांतिपूर्ण वर्ग संघर्ष आवश्यक है।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार-यात्रा पृ. 29
2. वही, पृ. 47
3. जयप्रकाश, पृ. 374-5
4. वही, पृ. 376
5. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 137-8
6. शरण, त्रिपुरारी : जयप्रकाश की अमरकीर्ति : शेखोदेवरा आश्रम (ज्योत्स्ना), पृ.145
7. डा. सच्चिदानंद : जे.पी. और भूमि सुधार (प्रथम पत्रिका, जयप्रकाश अध्ययन एवं शोध केंद्र, महिला चरखा समिति, पटना), 1992, पृ. 90
8. शरण, त्रिपुरारी (ज्योत्स्ना) पृ. 146
9. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 170-1
10. नारायण जयप्रकाश : आमने-सामने (सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी), 1986, पृ. 19-20
11. नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार-यात्रा, पृ. 129
12. नारायण, जयप्रकाश : आमने-सामने, पृ. 23-4
13. नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार-यात्रा, पृ. 131

राजनीति से अलग होकर भी राजनैतिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील

जे.पी. के लिए राजनीति से अलग होने का अर्थ था सत्ता और दलगत राजनीति से अलग होना। सर्वोदय में रहकर भी समसामयिक घटनाओं के प्रति तो वे संवेदनशील रहते ही थे, राजनीति की विकृति को दूर करने में भी उन्होंने हमेशा अपनी शक्ति लगायी। संसदीय लोकतंत्र की कमियों को दूर करने के लिए उन्होंने "दलविहीन लोकतंत्र" की अवधारणा का प्रतिपादन किया। उन्होंने जोर दिया कि देश की जरूरतें नैतिक हैं जिन्हें दलविहीन लोकतंत्र की स्थापना से पूरा किया जा सकता है। नेहरू जी से भी इस बारे में काफी बहस होती रही। सन् 1957 में नेहरू जी ने उन्हें पत्र लिखा कि पार्टी व्यवस्था की कमियों को जानते हुए भी देश को वह व्यवस्था अपनानी पड़ी है क्योंकि कोई बेहतर वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में नहीं सोचा जा सका है। नेहरू जी ने दलविहीन लोकतंत्र की अवधारणा को अव्यावहारिक माना। लेकिन जे.पी. दलविहीन लोकतंत्र ही नहीं, वरन् चुनाव की पद्धति में भी सुधार कर जनता के उम्मीदवार खड़े करना चाहते थे।

घूम फिर कर उनका प्रयास लोकशक्ति को संगठित और मजबूत करने का था। भूदान आंदोलन में जाना भी उसी का एक हिस्सा था। आम जनता की शक्ति उसी के हाथ में रहे, इसके लिए पंचायती राज व्यवस्था की उन्होंने जोरदार वकालत की। उनका प्रयास सत्ता के वर्तमान पिरामिड को उल्टा करना था। पंचायती व्यवस्था में पार्टी पर आधारित चुनाव के वे विरुद्ध थे। उनका विचार था कि सबसे निचले स्तर पर प्रत्यक्ष चुनाव हों और उसके बाद प्रतिनिधि सभाओं के माध्यम से अप्रत्यक्ष चुनाव हों।

मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित

सन् 1965 में जे.पी. को उनकी लोकसेवा के लिए फिलिपीन्स का मैग्सेसे पुरस्कार दिया गया। पुरस्कार के प्रशस्ति पत्र में "आधुनिक भारत की लोकात्मा कीं रचनात्मक अभिव्यक्ति" के लिए उनके कामों की सराहना की गयी। पुरस्कार प्राप्त करने जे.पी. स्वयं मनीला गये।

प्रधानमंत्री बनने की आकांक्षा नहीं

चूंकि जे.पी. हमेशा राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते

रहते थे, इसलिए राजनीति में उनकी प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई थी। शुरू से उनकी चर्चा नेहरू जी के उत्तराधिकारी के रूप में होती थी। स्वयं नेहरू जी ने सन् 1953 में उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल करने का प्रस्ताव किया था, जिसे उन्होंने नामंजूर कर दिया। सर्वोदय आंदोलन में जीवनदान करने के बावजूद उनकी चर्चा भावी प्रधानमंत्री के रूप में होती थी। लेकिन पद के आकर्षण ने कभी उन्हें अपने रास्ते से विचलित नहीं किया। उस समय नेहरू जी के उत्तराधिकारी के बारे में जो लेख या पुस्तकें छपीं उनमें जे.पी. की चर्चा विशेष रूप से होती थी। स्वयं नेहरू जी की भी ऐसी इच्छा थी कि उनके बाद जे.पी. प्रधानमंत्री के पद को गौरवान्वित करें।

जितेन्द्र सिंह ने सन् 1960 की एक घटना के बारे में लेखक को बताया। जिससे उस समय की इस बहस पर प्रकाश पड़ता है। लालबहादुर शास्त्री को दिल का दौरा पड़ा था और वे इलाहाबाद के सर तेज बहादुर सप्रू अस्पताल में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। जे.पी. उन्हें देखने गये। उनके साथ पी.डी. टंडन और जितेन्द्र सिंह भी थे। शास्त्री जी माइकेल ब्रेचर की पुस्तक 'हू आफ्टर नेहरू' पढ़ रहे थे। उसमें नेहरू जी के उत्तराधिकारी के बारे में ब्रेचर का विश्लेषण यह था कि यदि नेहरू जी की अचानक मौत हो जाती है तो गोविंद वल्लभ पंत प्रधानमंत्री हो सकते हैं क्योंकि सरदार पटेल के बाद संगठन पर सबसे मजबूत उन्हीं की पकड़ है। लेकिन यदि वे नहीं बनते हैं तो जे.पी. आदर्श उम्मीदवार हैं। लोग जे.पी. की चर्चा सबसे सही उत्तराधिकारी के रूप में करते हैं। यदि विनोबा के नैतिक आधार का इस्तेमाल जे.पी. कर सकें तो प्रधानमंत्री बनने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। संभावित उत्तराधिकारियों में इंदिरा गांधी और लाल बहादुर शास्त्री की चर्चा भी थी। ब्रेचर ने लिखा कि चूंकि इंदिरा गांधी नेहरू जी की बेटी हैं इसलिए उनके नाम पर थोड़ा विवाद हो सकता है। ऐसी स्थिति में किसी अन्य के नहीं बनने पर लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बनेंगे।

जे.पी. उस पुस्तक को पढ़ चुके थे। उन्होंने शास्त्री जी से भोजपुरी में कहा, "आप ठीक से रहिये क्योंकि आपको बड़े बड़े काम करने हैं। इस पुस्तक में भी ऐसी चर्चा है।"

शास्त्री जी ने कहा, "इसमें तो आपका भी नाम है। नेहरू जी ने भी मुझसे कहा कि मैं आपको इसके लिए तैयार करूं क्योंकि सन् 1953 में आपने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया था।" जे.पी. बोले, "मैंने राजनीति छोड़ दी है। इसलिए किसी पद को स्वीकार करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं है। वैसे, यदि मैं चाहूं भी तो कांग्रेस में लोग मुझे स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए आप प्रधानमंत्री बनिये और मैं अपना पूरा समर्थन आपको दूंगा।"

शास्त्री जी ने सच्चे दिल से उनसे आग्रह किया था। यह बात तब पूरी तरह साफ हो गयी जब नेहरू जी की मृत्यु के बाद शास्त्री जी ने जे.पी. के पक्ष में अपना नाम वापस

लेने की पेशकश की थी, किंतु जे.पी. ने फिर प्रस्ताव ठुकरा दिया।

नेहरू जी के साथ संबंध

अपनी सैद्धांतिक प्रतिबद्धता के कारण जे.पी. का मतभेद कई नेताओं से होता रहा और उन्होंने सार्वजनिक रूप से उनकी आलोचना भी की, किंतु हर व्यक्ति के लिए उनके मन में व्यक्तिगत सम्मान बना रहा। जवाहरलाल नेहरू की नीतियों की उन्होंने अनेक अवसरों पर सार्वजनिक रूप से आलोचना की, लेकिन उसी प्रकार सार्वजनिक रूप से उनकी सराहना भी करते थे। नेहरू-जे.पी. के पत्राचार को देखकर भी यह बात पूरी तरह प्रमाणित हो जाती है कि नेहरू जी के मन में जे.पी. के लिए अतिशय स्नेह था और जे.पी. के दिल में उनके लिए आदर था।

अगस्त, 1955 में पटना में पुलिस ने छात्रों पर गोलियां चलायीं। इस घटना के बाद दोनों के व्यक्तिगत संबंधों में थोड़ी कड़वाहट आयी। पटना विश्वविद्यालय के छात्रों ने बस भाड़े में वृद्धि का विरोध किया। धीरे धीरे स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि पुलिस ने प्रदर्शन कर रहे छात्रों पर बेरहमी से गोलियां चलायीं। इसमें दो विद्यार्थी मारे गये। छात्रों ने राष्ट्रीय ध्वज जला दिया। जे.पी. उस समय शेखोदेवरा में थे। वहां से वे तुरंत पटना आये और छात्रों का साथ दिया। नेहरू जी भी पटना आए और राष्ट्रीय झंडा जलाने के लिए विद्यार्थियों को कोसा। नेहरू जी के भाषण को सुनकर जे.पी. इतने दुखी हुए कि उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े। नेहरू जी को जे.पी. के बयान से काफी तकलीफ हुई। इस सबके बावजूद सन् 1956 में नेहरू जी ने उन्हें लिखा, "अगर आप यह सोचते हों किसी भी बात के बारे में आपके मंतव्य के लिए मेरे मन में कोई कीमत नहीं है, तो आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं।"[1]

सन् 1957 में येलवाल में राष्ट्रीय नेताओं की एक बैठक विनोबा की उपस्थिति में हुई। उसमें नेहरू जी ने ग्रामदान की सराहना करते हुए कहा कि ग्रामदान अब एक ठोस आधार पर खड़ा हो चुका है। उनके भाषण से जे.पी. इतने भावविह्वल हो गये कि नेहरू जी को पत्र लिखकर उन्होंने उनसे माफी मांगी कि हाल में कुछ दिनों पहले उन्होंने कठोर शब्दों में नेहरू जी को एक पत्र लिखा था। नेहरू जी ने तुरंत उसका स्नेह-सिक्त उत्तर दिया कि ऐसी कोई बात ही नहीं है जिसके लिए माफी मांगी जाए।

नेहरू जी के निधन से भी उन्हें बहुत सदमा लगा था जिसका जिक्र प्रभावती जी की डायरी में मिलता है। अंत तक उनके दिल में नेहरू जी के लिए श्रद्धा बनी रही। 14 नवंबर, 1978 को नानासाहब गोरे पटना में जे.पी. से उनके निवास पर मिलने गये। जे.पी. रोग-शय्या पर पड़े थे। बातचीत के क्रम में गोरे साहब ने कहा कि आज

नेहरू जी की जयंती है। जैसे ही जे.पी. को यह पता चला उन्होंने तुरंत एक माला मंगवाकर नेहरू जी की फोटो पर चढ़ायी।

सरदार पटेल के साथ संबंध

सरदार पटेल के साथ बराबर जे.पी. के वैचारिक मतभेद बने रहे। उनकी यह धारणा थी कि कांग्रेस को समाजवाद के रास्ते पर आगे बढ़ने से रोकने में सबसे अहम भूमिका सरदार की है। गांधी जी की हत्या के बाद तो उनकी आलोचना में जे.पी. और भी कटु हो गये थे। सरदार भी जे.पी. की बराबर आलोचना करते थे। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद उनके बारे में जे.पी. का अपना विचार बदला। उन्होंने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया कि सरदार को उन्होंने ठीक से नहीं समझा। तिब्बत के बारे में जब नेहरू जी को लिखा सरदार का पत्र प्रकाशित हुआ तो जे.पी. उनकी राजनीतिक सूझबूझ और दूरदर्शिता की और भी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे।

डा. लोहिया के साथ संबंध

डा. राम मनोहर लोहिया के लिए जे.पी. के मन में बराबर स्नेह रहा। वह डा. लोहिया की बौद्धिक प्रखरता से भी काफी प्रभावित थे, लेकिन सन् 1950 के बाद दोनों के संबंधों में दरार पड़ गयी। सन् 1953 में नेहरू जी ने जब जे.पी. को अपने मंत्रिमंडल में शामिल करने का प्रस्ताव रखा तो जे.पी. ने डा. लोहिया से परामर्श किये बिना नेहरू जी को उत्तर भेज दिया। लोहिया जी को यह बात बहुत बुरी लगी। बाद में त्रावणकोर कोचीन के गोलीकांड पर दोनों के बीच मतभेद और गहरे हो गये। जब सन् 1955 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के जयपुर अधिवेशन में डा. लोहिया को दल से निष्कासित किया गया तो उन्हें जे.पी. से और भी शिकायत हो गयी। हालांकि उस समय जे.पी. जीवनदान कर चुके थे, किंतु लोहिया जी को ऐसा लगा कि यदि जे.पी. चाहते तो उनके खिलाफ कार्रवाई करने से पार्टी को रोका जा सकता था।

इस सबके बाद डा. लोहिया सार्वजनिक मंचों से जे.पी. की आलोचना करने लगे। सन् 1960 में कुछ लोगों ने जे.पी. के विरुद्ध जातिवाद का आरोप लगाया जब उन्होंने बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कृष्ण सिंह को एक पत्र लिखा कि कृष्ण वल्लभ सहाय को अलग-थलग करना कांग्रेस के हित में नहीं होगा। यह पत्र बहुत विवादास्पद हो गया। हालांकि जे.पी. ने उसे भेजने से पहले गीता प्रसाद सिंह, गौरी शंकर शरण सिंह एवं अन्य समाजवादी मित्रों को दिखाया था और उन लोगों ने भी उसमें लिखी बातों से सहमति व्यक्त की थी। उस घटना के बाद जब डा. लोहिया बिहार आये तो आम सभा में उन्होंने कहा, "मैं भूमिहार कुल शिरोमणि बाबू श्री कृष्ण सिंह और कायस्थ कुल शिरोमणि बाबू

जयप्रकाश नारायण के पत्राचार के बारे में कुछ कहना चाहूंगा।"

जातिवाद का आरोप पूरी तरह बेमानी लगता है क्योंकि जे.पी. ने ही कृष्ण वल्लभ सहाय को "बिहार का कुख्यात राजस्व मंत्री" कहा था और के.बी. सहाय ने भी गिरिडीह की एक जनसभा में जे.पी. पर प्रहार करते हुए कहा था कि वे समाजवाद की बात करते हैं किंतु उनकी घड़ी में सोने की चेन है और वे हवाई जहाज में यात्रा करते हैं।

डा. लोहिया के साथ संबंधों में इतनी तिक्तता आने के बावजूद जे.पी. के हृदय में उनके लिए स्थान बना रहा और लोहिया जी भी यह मानते थे कि देश को हिलाने की क्षमता सिर्फ जे.पी. में है। कहा जा सकता है कि सहज भाईचारा एक क्षण के लिए भी समाप्त नहीं हुआ। जितेन्द्र सिंह के अनुसार प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से अलग होने के बाद से अपने जीवन के अंतिम क्षण तक लोहिया के मन में जे.पी. के लिए सम्मान बना रहा। जितेन्द्र सिंह के साथ व्यक्तिगत बातचीत में वे अक्सर कहा करते थे, "इस पुराने बूढ़े देश को यदि कोई हिला सकता है तो जे.पी. ही हिला सकते हैं। उनसे कहो कि फिर से समाजवादी आंदोलन का नेतृत्व करें भले ही वह भूदान में हैं। मैं न तो प्रेजिडेंट (नेहरू) का विरोधी हूं और न जे.पी. का, जबकि लोग ऐसा समझते हैं।" (जब नेहरू जी कांग्रेस अध्यक्ष बने तब से डा. लोहिया उन्हें प्रेजिडेंट ही कहते थे।)

एक बार लोहिया जी ने जितेन्द्र सिंह से कहा था, "यह देश मूर्तिपूजक है। बड़े भाई (जे.पी.) से कहना कि वे राममूर्ति हैं। मैं ज्यादा-से-ज्यादा लक्षमणमूर्ति हो सकता हूं। लेकिन देश को सही रास्ते पर चलाने के लिए राम को आगे आना होगा, लक्ष्मण साथ रहेगा। लेकिन एक बार आयें तो समाजवादी नीति पर अडिग रहें। सर्वोदय की अच्छी चीजें ले लें, लेकिन रहें राजनीति में। देश को हिलाना है तो अपने आप न हिलें।"

इसी प्रकार जे.पी. ने भी जितेन्द्र सिंह से कहा था, "राम मनोहर को समझाइए कि वह बार-बार जेल क्यों जाता है? उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।"

सन् 1967 में जे.पी. और लोहिया जी की काफी लंबे अरसे के बाद मुलाकात हुई। इस मुलाकात के पीछे की कहानी भी बहुत दिलचस्प है। जितेन्द्र सिंह ने जुलाई, 1967 में टाइम्स आफ इंडिया के लिए जे.पी. का साक्षात्कार लेना चाहा। इसके लिए उन्होंने प्रश्नों की सूची जे.पी. को दे दी। उसमें एक प्रश्न था, "क्या आप राम मनोहर से फिर मिलना चाहेंगे?"

जे.पी. ने सभी प्रश्नों का टाईप किया हुआ उत्तर उन्हें दिया, किंतु उस प्रश्न का जवाब नहीं दिया। यह देखकर जितेन्द्र बाबू की आंखों में आंसू आ गये। इस पर जे.पी. ने उनसे कहा, "आप लोहिया के फैन हैं। इसलिए आप भावुक हो गये हैं क्योंकि मैंने आपके उस प्रश्न का जवाब नहीं दिया है कि मैं राम मनोहर से मिलना चाहूंगा या नहीं।"

जितेन्द्र सिंह ने कहा, "जे.पी., ऐसा नहीं है। मैं आपके प्रति श्रद्धा भाव रखता हूं

और डा. लोहिया से तो हमारी पीढ़ी की मुहब्बत हो गयी है। हमारे जैसे लोग तो आपके पांव छूते हैं, और लोहिया से गले मिलते हैं।"

इस पर जे.पी. चुप रहे। प्रभावती जी ने जितेन्द्र बाबू को दूसरे दिन भोजन पर आमंत्रित किया। जितेन्द्र बाबू साक्षात्कार का जवाब वहीं छोड़कर चले गये।

दूसरे दिन जब वे गये तो जे.पी. ने उस प्रश्न का भी टाईप किया हुआ उत्तर दिया, "किसी दिन मैं राम मनोहर से फिर मिलना चाहूंगा। मैं उससे प्यार करता हूं, यद्यपि हम लोगों के काम करने के ढंग अलग हैं।"

जे.पी. का यह साक्षात्कार 6 अगस्त, 1967 को टाइम्स आफ इंडिया में प्रकाशित हुआ। इसे डा. लोहिया ने भी पढ़ा। उसी समय दिल्ली में नक्सलवाद के खतरे से लड़ने के उपायों पर विचार करने के लिए एक गोष्ठी हुई जिसमें जे.पी. और लोहिया दोनों शामिल हुए। दोनों अगल-बगल बैठे, लेकिन बातचीत नहीं हुई।

बाद में डा. लोहिया ने जितेन्द्र सिंह से कहा, "बड़े भाई उस दिन सेमिनार में मिले, लेकिन उन्होंने कुछ कहा नहीं। तुमने लिख तो दिया, लेकिन बड़े भाई का मायाजाल है। उन्होंने आने के लिए नहीं कहा। खुलकर बात नहीं हो पायी।"

जितेन्द्र बाबू ने 21 अगस्त को पटना में जे.पी. से मिलकर लोहिया जी का यह संदेश उन्हें दिया। इस पर जे.पी. और प्रभावती जी ने कहा, "उनको पटना आना है। आप उनको आने को कहिये।"

जितेन्द्र बाबू ने लोहिया जी को यह संदेश भेज दिया। जितेन्द्र बाबू ने बताया कि शायद जे.पी. या प्रभावती जी ने भी लोहिया जी को टेलिफोन किया या पत्र लिखा। लोहिया जी सितंबर महीने के मध्य में पटना आये। जे.पी. से उनके निवास स्थान पर उन्होंने भेंट की। जे.पी.और प्रभावती जी ने छत से नीचे उतरकर उनकी अगवानी की। बहुत सौहार्दपूर्ण वातावरण में बातचीत हुई। लोहिया जी ने जे.पी. के साथ दिन का भोजन भी किया। वहां एक लिखित रूपरेखा तैयार की गयी कि सर्वोदय और सोशलिस्ट पार्टी के बीच कैसे सहयोग हो। यह निश्चित हुआ कि सर्वोदय वाले निचले स्तर पर लोकशक्ति को इकट्ठा करेंगे तथा कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में समाजवादियों की जो सरकार बिहार में है वह सर्वोदय के समता और आर्थिक-सामाजिक क्रांति के लक्ष्य को प्राप्त करने में भरपूर सहयोग करेगी।

जे.पी. और लोहिया जी की बातचीत के समय जितेन्द्र सिंह एवं फणीश्वरनाथ रेणु नीचे सीढ़ी पर खड़े रहे, किंतु धनिकलाल मंडल तथा प्रणव चटर्जी ऊपर उनके पास चले गये। कुछ समय के लिए कर्पूरी ठाकुर भी गये। अन्य लोगों की उपस्थिति के कारण जे.पी. तथा लोहिया जी के बीच बातचीत उतनी खुलकर नहीं हो पायी। रेणु जी इस कारण बहुत गुस्से में थे कि और लोग भी वहां चले गये।

लोहिया जी धनिकलाल मंडल के यहां ठहरे थे। शाम में जितेन्द्र बाबू वहां पहुंचे तो लोहिया जी ने उनको छोड़कर सबको कमरे से निकाल दिया और फोन अंदर करके दरवाजा बंद कर दिया। लोहिया जी ने वहां से फिर फोन पर जे.पी. से बात की। उन्होंने जे.पी. से कहा, "जे.पी., मैं फिर कहता हूं कि तुम ही हो जो देश को हिला सकते हो और जो सपना था समाजवादियों का उसको पूरा कर सकते हो। मैं तो जा रहा हूं। पता नहीं कहां कहां जाना पड़ेगा। एक बात और तुमसे कह देता हूं कि यदि तुम खुलकर नहीं सामने आना चाहते हो जैसा कि मैं चाहता हूं तो कम से कम दोनों समाजवादी पार्टियों (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी) को मिला दो तो उससे भी बड़ा काम हो जायेगा। अब चलता हूं। प्रणाम। प्रभावती से भी प्रणाम कहना।"[2]

यह जे.पी. और लोहिया जी के बीच की आखिरी बातचीत थी। सच्चिदानंद ने भी बताया कि जे.पी. से मिलने के बाद लोहिया जी काफी प्रसन्न दीख रहे थे। शाम में जब वे लोहिया जी से मिलने गये तो उन्होंने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया जबकि सर्वोदय वालों को वे पसंद नहीं करते थे। लोहिया जी ने स्वयं उनके लिए चाय बनायी।

कुछ दिनों बाद लोहिया जी बीमार पड़े तो जे.पी. अपने सभी काम छोड़कर दिल्ली गये और उनकी मृत्यु (10 अक्तूबर, 1967) तक उनके पास ही रहे। मृत्यु शैय्या पर पड़े पड़े जब भी लोहिया जी होश में आते तो कहते, "आज भी जे.पी. ही सारे देश को हिला सकते हैं।"

उनकी मौत से जे.पी. को अत्यधिक वेदना हुई। उनके शव के सामने खड़े होकर भरे स्वर में उन्होंने कहा, "राम मनोहर मुझसे आठ साल छोटे थे। आज चिता पर उनकी जगह मुझे होना चाहिये था। लोहिया मेरे छोटे भाई थे। मुझे दुख है कि उनके जीवन का आरोहण काल फिर से शुरू हुआ था, तभी शिखर पर पहुंचने के पहले ही वह चल बसे।"

बिहार में अकाल-राहत का काम

सन् 1966-67 में बिहार में भीषण अकाल पड़ा। स्थिति इतनी नाजुक हो गयी कि सन् 1943 में बंगाल के अकाल से इसकी तुलना की जाने लगी। इस अभूतपूर्व स्थिति से निपटने के लिए 21 अक्तूबर, 1966 को बिहार प्रदेश कांग्रेस आई कमेटी ने विधायक क्लब, पटना में एक सर्वदलीय बैठक का आयोजन किया। इसमें कांग्रेस, जनसंघ, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं और महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। इसके अलावा बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ, भारत सेवक समाज, बिहार भूदान यज्ञ समिति, पंचायत परिषद्, ग्रामदान प्राप्ति समिति एवं बिहार हरिजन सेवक संघ जैसे कई सामाजिक संगठनों के प्रतिनिधि भी शामिल हुए।

इस बैठक में बिहार रिलीफ कमेटी का गठन हुआ और जयप्रकाश नारायण को निर्विरोध उसका अध्यक्ष चुना गया। श्री मिथिलेश कुमार सिन्हा इसके उपाध्यक्ष बनाये गये। जे.पी. अकाल-राहत के काम में पूरी तन्मयता से लग गये। उनकी अपील पर देश-विदेश की नयी संस्थाओं ने मदद की और हजारों स्वयंसेवकों ने राहत के काम के लिए अपनी सेवाएं दीं। बिहार रिलीफ कमेटी को 2 करोड़ रुपये नकद और दो करोड़ रुपये के माल-सामान दान में प्राप्त हुए। सबसे ज्यादा अनुदान ऑक्सफैम (इंग्लैंड) और मिसरियर (जर्मनी) से प्राप्त हुआ।

बिहार रिलीफ कमेटी ने अकालग्रस्त लोगों की महती सेवा की। इसके 1397 'फ्री किचेन' चलते थे जिसमें लगभग सात लाख भूखे गरीब, बूढ़े लोगों, गर्भवती महिलाओं और दस वर्ष से कम उम्र के बच्चों को मुफ्त भोजन दिया जाता था। स्वस्थ शरीर वालों के लिए "फूड फार वर्क" (काम के बदले अनाज) कार्यक्रम शुरू किया गया। शुरू में कुछ दिनों तक स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियों को भी मुफ्त भोजन दिया गया। कमेटी ने पांच सौ रोटी के सस्ते होटलों की भी मदद की ताकि कम आमदनी वाले लोगों को सस्ते दामों पर भोजन मिल सके। अकाल से प्रभावित प्रखंडों में अन्न के भंडार सुरक्षित रखे गये ताकि स्थिति बदतर होने पर लोगों को भुखमरी से बचाया जा सके। कमेटी की ओर से बारह लाख बीस हजार लोगों को कपड़े (धोती, साड़ियां, कंबल आदि) बांटे गये। लगभग 11 लाख लोगों को टीके दिये गये, तीस लाख मल्टीविटामिन टैबलेट बांटे गये, अगली फसल उपजाने के लिए किसानों को सवा चार सौ क्विंटल बीज बांटा गया, 15 हजार विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय और मैट्रिक की परीक्षा के लिए फीस दी गयी, लाइट मैनुअल लेबर योजना के तहत 64 हजार महिला स्पिनरों एवं अन्य को उनके कामों के लिए सहायता दी गयी, एक लाख 66 हजार 462 मवेशियों के लिए 2,351 वैगन भूसा दिया गया। इसके अतिरिक्त 2,757 कुएं खुदवाये गये और ट्यूबवेल तथा पंप लगवाये गये। जे.पी. का ऐसा विचार था कि जलस्रोतों की संख्या बढ़ाकर अकाल का मुकाबला किया जा सकता है।

जितनी सहायता या दान मिला उसका समुचित इस्तेमाल हुआ। मिथिलेश कुमार सिन्हा के अनुसार खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के प्रतिनिधि यंग ने राहत कार्यों का निरीक्षण करने के बाद लिखा कि बिहार रिलीफ कमेटी ने एफ.ए.ओ. द्वारा दिये गये अनाज के एक एक दाने का इस्तेमाल किया, किंतु बिहार सरकार को जो अनाज दिया गया वह सड़ गया।

इन सभी कामों को करने के बाद 70 लाख रुपये बच गये। जे.पी. ने इस राशि की मदद से लघु सिंचाई-योजना का काम शुरू किया ताकि भविष्य में अकाल का कोई संकट पैदा न हो। जे.पी. ने एक नयी अवधारणा "राहत के लिए विकास" का प्रतिपादन किया।

इसका मतलब यह हुआ कि अपने प्रांत का विकास इस प्रकार करो कि अकाल के समय में लोगों को राहत दी जा सके।

बिहार रिलीफ कमेटी ने सन् 1967 में बिहार में भड़के सांप्रदायिक दंगों से प्रभावित लोगों की भी मदद की। कमेटी ने पश्चिम बंगाल, उड़ीसा एवं गुजरात के भी अकाल और बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए धन दिया।

उद्धरण

1. जयप्रकाश, पृ. 414
2. श्री जितेन्द्र सिंह से बातचीत के आधार पर यह पूरा प्रसंग लिखा गया है।

विश्व शांति के लिए पहल

भारत के अंदर लोकतंत्र एवं लोकशक्ति को मजबूत करने तथा शांति और सौहार्द की स्थापना के लिए तो जे.पी. निरंतर प्रयत्नशील रहे ही, दूसरे देशों में भी लोकतंत्र की स्थापना के लिए उन्होंने भरपूर योगदान दिया। जहां कहीं भी लोकतंत्र पर कुठाराघात हुआ या जनता का दमन हुआ जे.पी. ने उसके खिलाफ आवाज उठायी। वे चाहते थे कि पूरे विश्व में शांति बनी रहे और सब में भाईचारा हो। उनकी एक विश्व दृष्टि थी जो देश और काल की सीमा से प्रभावित नहीं थी। इन्हीं कारणों से उनकी एक अंतर्राष्ट्रीय पहचान बनी और विश्व के कई चोटी के नेताओं से उनके घनिष्ठ संबंध बने।

स्वाधीनता संग्राम के दिनों में ही जे.पी. विश्व स्तर पर उभर चुके थे। सन् 1945 में जे.पी. की रिहाई के समर्थन में लंदन में लेबर पार्टी की ओर से एक रैली निकाली गयी जिसमें फेनर ब्रॉकबे, नोएल बेकर और सोरेन सेन जैसे प्रख्यात नेताओं ने भाग लिया। उसी रैली में फेनर ब्रॉकबे ने कहा था कि लेनिन के बाद जे.पी. अभी सबसे बड़े समाजवादी नेता हैं।

प्रथम एशियाई समाजवादी सम्मेलन

जनवरी, 1953 में रंगून में पहले एशियाई समाजवादी सम्मेलन का आयोजन हुआ। इसमें ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री किसमेन्स ऐटली एवं यूगोस्लाविया के तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री मिलोवन जिलास सहित कई प्रख्यात समाजवादी नेताओं ने हिस्सा लिया। जे.पी. भी उसमें शामिल हुए। वहां समाजवाद की सैद्धांतिक समस्याओं पर जे.पी. का सारगर्भित भाषण हुआ। उनके भाषण का सम्मेलन में भाग ले रहे प्रतिनिधियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। लोगों को ऐसा लगा कि जे.पी. भी ऐटली के स्तर के नेता हैं। अपने भाषण के प्रारंभ में ही जे.पी. ने कहा कि समाजवाद नब्बे प्रतिशत व्यवहार है और दस प्रतिशत सिद्धांत है। समाजवाद की पहली समस्याओं की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा, "हम देखते हैं, इतिहास में व्यक्ति को सुधारने के प्रयत्न तो हुए हैं लेकिन जिस वातावरण में व्यक्ति रहता है, उसको भूलकर ये प्रयत्न किये गये हैं। उदाहरण के लिए बुद्ध को लीजिये। मानव के दुख को देखकर और इस निष्कर्ष पर पहुंचकर कि इस दुख का कारण मानव की इच्छा है, उन्होंने आत्म-संस्कार की एक पद्धति व्यक्ति के संस्कार, मानव-स्वभाव के निर्माण,

परिवर्तन एवं निरूपण की विकसित की जिससे वह अपनी वासना, अपनी इच्छा का दमन कर दुख से मुक्ति पा सके। वह एक बहुत ही श्रेष्ठ प्रयास था ; परंतु, आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि वह एकांगी प्रयास था। आज अनेक समाजवादी पुनः एक और एकांगी प्रयास—यानी व्यक्ति को भूलकर केवल समाज को बदलने का प्रयास करने की गलती कर रहे हैं। जब भगवान बुद्ध ने कहा कि दुख इच्छा से उत्पन्न होता है, तो उन्होंने सामाजिक संस्थाओं से, सामाजिक वातावरण से उत्पन्न दुख पर विचार नहीं किया।"[1]

जे.पी. देश और दुनिया की परिस्थिति पर अपना विचार हमेशा पूरी साफगोई और दृढ़ता से रखते थे। सर्वोदय में जाने के बाद भी समसामयिक घटनाओं पर वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहते थे। यही कारण है कि देश की राजनीति में वह न कभी अप्रासंगिक हुए और न ही विस्मृत। सर्वोदय-आंदोलन में प्रवेश करते समय ही उन्होंने साफ कह दिया था कि अब मेरी सारी शक्ति लोकनीति के विकास पर खर्च होगी, फिर भी राजनीति के क्षेत्र में क्या हो रहा है, उसके बारे में आंखें मूंद कर बैठा नहीं रहूंगा क्योंकि राजनीति एक हद तक लोगों के जीवन को निश्चित ही प्रभावित करती है।

तिब्बत के पक्ष में अभियान

नेहरू जी से व्यक्तिगत मित्रता के बावजूद जब दूसरे देशों की स्वतंत्रता और मानवाधिकार पर कुठाराघात हुआ तो उन्होंने उसका विरोध किया और चुप रहने के लिए प्रधानमंत्री नेहरू की भी आलोचना की। जब चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया और वहां व्यापक पैमाने पर नरसंहार हुआ तो जे.पी. तिलमिला उठे। इस मामले पर तटस्थ रहने के लिए उन्होंने नेहरू जी की भी आलोचना की। संयुक्त राष्ट्र में जब तिब्बत का मामला आया तो भारत ने इसे चीन और तिब्बत का द्विपक्षीय मामला बताते हुए आपस में शांतिपूर्वक हल करने की बात कही। जे.पी. का विचार था कि यदि उस समय चीन का भारत ने विरोध किया होता तो तिब्बत को गुलाम नहीं बनाया जा सकता था।

सन् 1950 में जब चीन ने तिब्बत में अपनी सेना भेजी तो बाहर के देशों को इस बारे में ज्यादा पता नहीं चला। बाद में दोनों देशों के बीच समझौता हुआ, लेकिन उससे शांति ज्यादा दिन नहीं रह पायी। दलाई लामा ने भारत में शरण ली। चीनी कार्रवाई के विरोध में 30-31 मई, 1959 को कलकत्ता में तिब्बत पर एक अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता जे.पी. ने की। इसमें यह तय किया गया कि इस मुद्दे पर एशियाई और अफ्रीकी देशों की एक समिति बनायी जाये। इसके लिए समरगुहा और एच.आर. पार्डीवाला को दक्षिण पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया एवं अफ्रीका भेजा गया कि वे वहां के नेताओं से मिलकर उनका समर्थन प्राप्त करें। संयुक्त राष्ट्र संघ में तिब्बत का पक्ष रखने के लिए उन्होंने जे.जे. सिंह को वहां भेजा।

9 अप्रैल, 1960 को नयी दिल्ली में तिब्बत पर तथा एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेशवाद के विरुद्ध एफ्रो-एशियन कन्वेंशन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में जे.पी. ने अपने अध्यक्षीय भाषण में जोर देकर कहा कि तिब्बत के लोगों को भी आत्मनिर्णय का उतना ही अधिकार है जितना दुनिया के अन्य देश के लोगों को। उन्होंने तिब्बत के नागरिकों पर किये जा रहे अत्याचार के लिए चीन की कड़ी भर्त्सना की। सम्मेलन में जे.पी. को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि तिब्बत पर विश्व जनमत तैयार करने और वहां मानवाधिकार के कथित हनन एवं बौद्ध विहारों को नष्ट करने की रिपोर्ट की जांच करने के लिए तटस्थ देशों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था करने के लिए वे अफ्रीका-एशिया समिति का गठन करें।

सम्मेलन में जे.पी. ने स्पष्ट कर दिया कि यह पूरी तरह गैर-सरकारी है और चीन या किसी अन्य देश के विरुद्ध दुर्भावना से प्रेरित नहीं है। सम्मेलन में दक्षिण अफ्रीका की नक्स्लवादी सरकार की भी उन्होंने कड़ी आलोचना की।

बाद में तिब्बत के पक्ष में वे अभियान चलाते रहे और नेहरू जी पर भी इसके लिए दबाव डालते रहे, किंतु इस विषय पर नेहरू जी ने उनकी सलाह नहीं मानी।

हंगरी और चेकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण का विरोध

सन् 1956 में जब हंगरी में रूस की सेना प्रवेश कर गयी और इमरे नागी को गिरफ्तार कर लिया गया तो जे.पी. ने रूसी कार्रवाई के खिलाफ मजबूती से आवाज उठायी। इमरे नागी भी साम्यवादी थे, किंतु रूस से उनके गहरे मतभेद हो गये थे। जे.पी. ने रूसी आक्रमण की तुलना मिश्र पर ब्रिटेन-फ्रांस के हमले से की। उन्होंने कहा कि जब पश्चिमी देशों के साम्राज्यवाद की निंदा की जाती है तो रूसी साम्राज्यवाद का विरोध न करना अनैतिक है। वी.के. कृष्ण मेनन ने हंगरी की समस्या के बारे में वक्तव्य दिया कि यह उसके घर का मामला है तो जे.पी. ने कृष्ण मेनन पर तीखा प्रहार करते हुए कहा कि रूसवालों के घर हंगरी में तो नहीं थे। लेकिन रूस ने अपनी सेना वहां भेजी। एक ओर हंगरी के नौजवान थे और दूसरी ओर रूस के टैंक थे। इसे घर का सवाल कहा जायेगा?

इसी प्रकार सन् 1968 में चेकोस्लोवाकिया में रूसी हस्तक्षेप का उन्होंने विरोध किया। प्रभावती ने 22 अगस्त, 1968 को अपनी डायरी में लिखा कि चेकोस्लोवाकिया में रूस की सेना के प्रवेश का समाचार पढ़कर जे.पी. बहुत दुखी हुए और उनकी आंखों से आंसू निकल पड़े। इस संकट पर जे.पी. ने कहा था, "मनुष्य के दिल में बैठी स्वतंत्रता की आकांक्षा को कुचल डालने के लिए रूसी टैंक भेजे गये। यों तो साम्यवादी आंदोलन और साम्यवादी क्रांति साम्राज्य-विरोधी मानी जाती है। लेकिन 50 सालों के बाद साम्यवाद का साम्राज्यवादी स्वरूप बदला नहीं, और जिस तरह एक ताकतवर हिंसक पशु दूसरे कमजोर पशुओं को

खा जाता है, उसी तरह का जंगल का कानून ही आज भी साम्यवादी दुनिया में चल रहा है।"[2]

अफ्रीका यात्रा

सन् 1962 में विश्व शांति सेना के सह-अध्यक्ष की हैसियत से कीनिया में एक बैठक में शामिल होने जे.पी. वहां गये। साथ में प्रभावती जी भी गयीं। वहां कई वरिष्ठ अफ्रीकी नेताओं एवं स्वतंत्रता सेनानियों के साथ उनकी व्यक्तिगत मित्रता हो गयी जिनमें तंजानिया के राष्ट्रपति, जुलियस न्यरेरे, हैस्टिंग्स बांडा और केनेथ कौंडा शामिल हैं। उस बैठक में तय किया गया कि एक स्वतंत्रता मार्च तंजानिया से रोडेशिया तक आयोजित किया जाये। जे.पी. ने कीनिया जंजीबर, मोजाम्बीक, दार-एस-सलाम और तंजानिया की यात्रा की । उन्होंने रास्ते में कई सभाओं को संबोधित किया और स्वतंत्रता मार्च में भाग लेने वालों के लिए धन इकट्ठा किया। जब स्वतंत्रता यात्री रोडेशिया की सीमा से लगे एक शहर में पहुंचे तो केनेथ कौंडा ने समाचार दिया कि संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने ब्रिटेन को रोडेशिया की पूर्ण आजादी की घोषणा करने के लिए मना लिया है।

भारत-चीन युद्ध

भारत-चीन युद्ध के समय भी जे.पी. ने अपनी ओर से शांति के लिए पहल की। ऐसा नहीं है कि वे देश की सार्वभौमता या आत्मसम्मान के साथ किसी तरह का समझौता कर युद्ध को रोकना चाहते थे। बल्कि उन्होंने तो स्पष्ट कर दिया था कि किसी देश की स्वतंत्रता पर प्रहार करके शांति और अहिंसा की स्थापना कभी नहीं की जा सकती। लेकिन वे शांतिपूर्ण ढंग से नैतिक मर्यादाओं के बल पर चीन का प्रतिरोध करना चाहते थे। उनका विचार था कि शांति सैनिकों के एक दल का नेतृत्व करते हुए वे सीमा पर जायें और अहिंसक तरीके से युद्ध का विरोध करे। वे इसमें सर्वोदय कार्यकर्ताओं का सहयोग चाहते थे। नवंबर, 1962 में बेड़छी में हुए सर्वोदय सम्मेलन में विनोबा ने स्पष्ट कर दिया कि सर्वोदय कार्यकर्ताओं को केवल भूदान-ग्रामदान का ही काम करना चाहिए। फिर भी सम्मेलन में जे.पी. ने अलोकप्रियता का जोखिम उठाकर भी एकपक्षीय निशस्त्रीकरण का प्रस्ताव रखा कि भारत के नागरिक यदि खुली छाती के साथ मुकाबला करके मरने को तैयार हैं तो भारत को कोई जीत नहीं सकेगा।

चीन के साथ विवाद को हल करने के लिए उन्होंने सुझाव दिया कि यदि चीन को अपने इस्तेमाल के लिए अक्साई चीन की आवश्यकता है तो वह क्षेत्र उसे पट्टे पर नागरिक इस्तेमाल के लिए दिया जा सकता है। उस पर भारत का झंडा रहेगा और चीन उसका कोई सैनिक उपयोग नहीं करेगा। या इस अक्साई चीन के बदले चीन से भारत चुम्बी

घाटी वाले क्षेत्र को ले ले क्योंकि प्रतिरक्षा की दृष्टि से भारत के लिए इसका अत्यधिक महत्व है।

कुछ दिनों बाद विश्व-शांति सेना के सह-अध्यक्ष के रूप में अन्य दो सह-अध्यक्षों, ए.जे. मुस्टे और रेवरेंड माइकेल स्कॉट के साथ मिलकर, जे.पी. ने दिल्ली पेइचिंग पदयात्रा का आयोजन किया। (1960 में जे.पी. विश्व-शांति सेना के तीन अध्यक्षों में से एक बने थे।) एक मार्च, 1963 को नयी दिल्ली स्थित गांधी समाधि से उन्होंने 19 शांति यात्रियों को शंकर राव देव के नेतृत्व में पेइचिंग के लिए विदा किया। उनमें रेवरेंड माइकेल स्कॉट के अतिरिक्त ग्यारह भारतीय, चार अमेरिकी, एक ऑस्ट्रियाई और एक जापानी बौद्ध भिक्षु, शामिल थे। यात्रा का उद्देश्य भारत और चीन के लोगों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना था। विश्व शांति सेना के एक अन्य सह-अध्यक्ष फुजी गुरुजी ने भी कई महीने तक शांति मार्च में यात्रा की। जे.पी. भी बीच बीच में आकर यात्रा में शामिल होते थे।

3 मार्च को चीनी शांति कमेटी ने इसे चीन के विरुद्ध किया जाने वाला षड्यंत्र कहकर इस मार्च की आलोचना की। उसमें जे.पी. पर विशेष रूप से प्रहार किया गया कि उनकी नीति हमेशा चीन-विरोधी रही है। बर्मा की सीमा पर उन शांति यात्रियों को रोक दिया गया और छह महीने तक वे लोग वहां रुके रहे, लेकिन उन्हें बर्मा में प्रवेश करने की अनुमति नहीं मिली। बर्मा से अनुमति नहीं मिलने पर जे.पी. ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खां को पत्र लिखकर को अनुरोध किया कि वे पूर्वी पाकिस्तान होकर पदयात्रियों को जाने की इजाजत दें। राष्ट्रपति की ओर से उनके विदेश मंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने 11 जून, 1963 को जवाब दिया कि वे कोई भी ऐसा काम करना नहीं चाहेंगे जिससे चीन को गलतफहमी हो। 3 दिसंबर तक वे लोग नेफा पहुंचे गये। जे.पी. ने जिम्बाब्वे के केनेथ कौंडा और तंजानिया के जुलियस न्यरेरे जैसे प्रभावशाली विश्व नेताओं को पत्र लिखा कि वे शांति यात्रियों को चीन में प्रवेश करने के लिए चीन से अनुमति दिलवायें। चीन के प्रतिनिधियों ने कहा कि चीन जाने की अनुमति तभी दी जायेगी जब जे.पी. को मार्च से अलग कर दिया जायेगा। त्रिपुरारी शरण, जो उस मार्च में शामिल थे, ने बताया कि उन लोगों के समक्ष हवाई जहाज से पेइचिंग ले जाने का प्रस्ताव भी रखा गया लेकिन कोई इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जे.पी. ने फिर उन लोगों को हांगकांग भेजना चाहा, लेकिन वहां के गवर्नर ने भी अनुमति नहीं दी।

दिल्ली-पेइचिंग मार्च तो अंततोगत्वा अधूरा रह गया, किंतु इसका व्यापक असर हुआ और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी चर्चा हुई।

बंगलादेश की स्वाधीनता के लिए प्रयास

साठ के दशक के अंत से ही बंगलादेश की राजनीति गरमाने लगी थी और पश्चिमी

पाकिस्तान के विरुद्ध विद्रोह के स्वर सुनाई पड़ने लगे थे। जे.पी. ने सन् 1969 में ही इसके संकेत देखे और अपने सार्वजनिक भाषणों में अपना विचार व्यक्त किया था कि धार्मिक एकता के बावजूद पाकिस्तान के दो टुकड़े एक-दूसरे से दूर जा रहे हैं जबकि दोनों बंगालों की सांस्कृतिक एकता ज्यादा मजबूत दीख रही है। प्रदेश की पूर्ण स्वायत्तता की मांग को लेकर शेख मुजीबुर रहमान के नेतृत्व में शांतिपूर्ण असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। पाकिस्तान की सेना ने वहां के निहत्थे लोगों पर दमन का चक्र चलाया। बहुत बड़े पैमाने पर नरसंहार हुआ। निहत्थे लोगों ने लाठियों से सेना की बंदूकों का मुकाबला किया।

16 मार्च, 1971 को अखबारों में पूरी दुनिया के स्वाधीनता सेनानियों के नाम शेख मुजीबुर रहमान की अपील प्रकाशित हुई। उस अपील को पढ़ने के बाद जे.पी. ने उसी दिन वक्तव्य जारी कर अहिंसात्मक ढंग से आंदोलन करने के लिए मुजीब की सराहना की और लिखा, "मैं यह स्पष्ट कर दूं कि जिस तरह मैं अपने देश की क्षेत्रीय एकता में विश्वास करता हूं उसी प्रकार मैं पाकिस्तान को भी टूटते नहीं देखना चाहता हूं। शेख मुजीबुर रहमान भी अपने प्रांत के लिए पूर्ण स्वायत्तता से ज्यादा किसी चीज की मांग नहीं कर रहे हैं और पश्चिमी पाकिस्तान के सैनिक शासन द्वारा सामूहिक नरसंहार किये जाने के बावजूद उन्होंने पृथक होने का अंतिम अपरिवर्तनीय कदम उठाने से परहेज किया है।...इस बीच विश्व के हर नागरिक और हर सरकार, जो जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों में विश्वास करती है, को शेख मुजीबुर रहमान और बंगला देश की सरकार, जिसका वे नेतृत्व कर रहे हैं, को स्पष्ट समर्थन देना चाहिए।" इससे स्पष्ट है कि शुरू में वे पाकिस्तान को बांटने के पक्ष में नहीं थे, किंतु जब बंगलादेश में सेना का दमन बहुत बढ़ गया तो उन्हें अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ा। 25 मार्च को उन्होंने अपने गांव सिताब दियारा से वक्तव्य जारी किया जिसमें राष्ट्रपति याहिया खां की कठोर शब्दों में निंदा की। मुजीब के समर्थन में उन्होंने लिखा कि उन्हें पाकिस्तान नेशनल एसेंबली में बहुमत तथा पूर्वी क्षेत्र में 98.8% सीटें प्राप्त हुई हैं और लोकतंत्र के सभी प्रतिमानों के अनुसार वही पाकिस्तान के सच्चे शासक हैं। इसके अलावा चूंकि बंगलादेश में पाकिस्तान की 58% आबादी रहती है, इसलिए संयुक्त पाकिस्तान में अल्पमत ही बहुमत को दबाने का प्रयास कर रही है। उन्होंने साफ कहा कि पाकिस्तान में जो कुछ भी हो रहा है वह केवल उसका आंतरिक मामला नहीं है। इसके बाद 2 अप्रैल को पटना से उन्होंने लंबी विज्ञप्ति जारी की। इसमें उन्होंने बंगलादेश के लोगों को समर्थन देने के लिए भारतीय संसद और बिहार, उत्तर प्रदेश, असम एवं त्रिपुरा के विधान मंडलों की प्रशंसा की। उन्होंने बंगला देश को तुरंत मान्यता देने और वहां की जनता को राहत पहुंचाने की अपील की।

इस बार भी जे.पी. पहले प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होंने बंगलादेश के समर्थन में अपनी आवाज बुलंद की। श्रीमती इंदिरा गांधी से बातचीत कर बंगलादेश के पक्ष में जनमत

तैयार करने के लिए उन्होंने कई देशों की यात्रा की। इस यात्रा के दौरान दो देशों के राष्ट्राध्यक्ष, यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो और मिस्र के अनवर सादात, उनसे मिले। अमेरिका में हेनरी किसिंजर से उनकी बातचीत हुई। सोवियत संघ में उन्हें थोड़ी कठिनाई हुई और वहां के उप-विदेश मंत्री उनसे मिले। हंगरी, चेकोस्लोवाकिया जैसे मुद्दों पर वक्तव्य देकर जे.पी. सोवियत संघ के विरोधी माने जा रहे थे, इसलिए सोवियत संघ का कोई बड़ा नेता उनसे नहीं मिला। लेकिन ऐसा मानना बिल्कुल गलत है क्योंकि मानवतावादी जे.पी. का विरोध किसी राष्ट्र विशेष से नहीं था, बल्कि वे कहीं भी जनता पर की जाने वाली क्रूरता को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। बंगलादेश के मामले में ही उन्होंने सन् 1971 की भारत-सोवियत मैत्री का समर्थन किया था। ब्रिटेन में उस समय कंजर्वेटिव पार्टी की सरकार थी और वहां के प्रधानमंत्री भी जे.पी. से नहीं मिले। अमेरिका और इंग्लैंड जाने के पहले उन्होंने श्रीमती गांधी से विचार-विमर्श किया था। कुछ लोगों ने इस पर आपत्ति की तो जे.पी. ने कहा कि यदि ब्रिटेन में लेबर पार्टी और अमेरिका में डेमोक्रैटिक पार्टी की सरकार होती तो वे श्रीमती गांधी से सलाह मशविरा नहीं करते।

उनके विश्वव्यापी दौरे से बंगला देश के पक्ष में जनमत तैयार हुआ। वह बंगलादेश की मुक्ति के पक्ष में थे। उन्होंने हस्तक्षेप करने के लिए इंदिरा गांधी पर दबाव डाला। शुरू में श्रीमती गांधी को थोड़ी हिचकिचाहट थी, लेकिन जे.पी. द्वारा विश्व जनमत तैयार करने के बाद श्रीमती गांधी ने हस्तक्षेप किया।

बंगलादेश की मुक्तिवाहिनी और उसकी कामचलाऊ सरकार से भी उन्होंने निरंतर संपर्क बनाये रखा। अक्तूबर, 1971 में त्रिपुरा के रास्ते वे तत्कालीन पूर्व पाकिस्तान में घुसकर मुक्तिवाहिनी के मुख्य केंद्र तक गये। मुक्तिवाहिनी को हथियार इकट्ठा करने के लिए उन्होंने रुपये भी भिजवाये। इसके लिए उन्होंने बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर को सहायता देने का अनुरोध किया। सच्चिदानंद के अनुसार कर्पूरी ठाकुर ने दो लाख रुपये बिहार रिलीफ कमेटी के नाम पर निकलवाकर बी.पी. कोईराला को भिजवा दिये जो पटना में देवेन्द्र बाबू के यहां ठहरे हुए थे। बी.पी. ने रुपया बंगलादेश भिजवा दिया, लेकिन उन्होंने जे.पी. से शिकायत की कि यह काम खुलेआम नहीं होना चाहिए था और कर्पूरी जी को गुप्तता बरतनी चाहिए थी।

दिसंबर में पाकिस्तान के साथ भारत का सीधा युद्ध शुरू हो गया। जे.पी. और विनोबा दोनों ने उस युद्ध का समर्थन किया। जब देश-विदेश के कई बुद्धिजीवियों ने प्रश्न उठाया कि गांधी के शिष्य हिंसा का समर्थन कर रहे हैं तो विनोबा ने प्रयत्युत्तर दिया कि जब कश्मीर पर हमला हुआ था, तो वहां भारत की सेना भेजने के लिए गांधी जी ने आशीर्वाद दिये थे।

जब बंगलादेश आजाद हुआ तो जे.पी. ने इंदिरा गांधी के राजनीतिक कौशल एवं

सूझबूझ की दिल खोलकर प्रशंसा की। इसके साथ ही उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारत-पाकिस्तान संबंधों में भी इसके बाद एक नया मोड़ आयेगा और पुराने वैमनस्य को भूलकर दोनों देश शांति से रहेंगे। 31 जनवरी, 1972 को उन्होंने मुजीबुर रहमान को एक आत्मीय पत्र लिखा जिसमें उन्होंने मुजीब को गांधी जी के बताये रास्ते का अनुसरण करने की सलाह दी।

अंतर्राष्ट्रीय नेताओं के साथ संपर्क

विश्व के कई चोटी के नेताओं के साथ जे.पी. के व्यक्तिगत संबंध थे। यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो उन्हें बहुत सम्मान देते थे। जब टीटो ने स्टालिन को चुनौती दी तो पूरी दुनिया के समाजवादियों की निगाह उन पर गयी। यूगोस्लाविया की विकेंद्रित आर्थिक व्यवस्था को जे.पी. पसंद करते थे। जब सन् 1955 में टीटो भारत आये तो आचार्य नरेन्द्र देव, जे.पी. एवं अन्य समाजवादी नेता उनसे मिले। टीटो सोशलिस्ट पार्टी के दफ्तर भी गये।

टीटो से अच्छे संबंधों के बावजूद जब टीटो ने मिलोवन जिलास को गिरफ्तार किया तो जे.पी. ने उनका विरोध किया। उन्होंने अपनी यूगोस्लाविया यात्रा के पहले शर्त रखी कि जिलास से यदि उन्हें मिलने दिया जायेगा तभी वे वहां जायेंगे। लेकिन मीनू मसानी और अशोक मेहता ने उन्हें ऐसी कोई पूर्व शर्त न रखने की सलाह दी। इसके बाद बिना किसी शर्त जे.पी. वहां गये और जिलास की पत्नी से उन्होंने मुलाकात की।

इजराइल के समाजवादियों के साथ भी उनके गहरे संबंध थे। प्रधानमंत्री बेन गुरियों से तो काफी मित्रता थी। दरअसल, इजराइल में समाजवादी व्यवस्था थी, सारी जमीन सरकार की थी और वहां तीन प्रकार की खेती थी–सरकारी खेती, सामूहिक खेती और व्यक्तिगत खेती। जे.पी. भारतीय गांवों को इजराइल के गांवों की तरह विकसित करना चाहते थे। शेखोदेवरा आश्रम की ओर से उन्होंने ओम प्रकाश गुप्ता, द्वारको सुन्दरानी, गीता प्रसाद सिंह आदि को इजराइल की व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए वहां भेजा था। जब जे.पी. स्वयं सन् 1958 में इजराइल गये तो उन्होंने बेन गुरियों को खेत में ट्रैक्टर चलाते हुए देखा। इससे वे बेहद प्रभावित हुए कि प्रधानमंत्री रहा हुआ व्यक्ति खेती का काम कर रहा है।

ब्रिटेन की लेबर पार्टी के वरिष्ठ नेताओं से उनके संपर्क थे। इनमें प्रमुख थे–एटली, हेरॉल्ड लास्की, फेनर ब्रॉकवे, नोएल बेकर, न्यूरेन बेवान, ह्यूगैट्स्केल आदि। फेनर ब्रॉकवे से उनका लगातार पत्राचार होता रहा। नोएल बेकर सन् 1977 में उनसे मिलने पटना आये।

अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर जे.पी. की काफी इज्जत करते थे। सन् 1977 में

जब वह नयी दिल्ली आये तो जे.पी. से मिलना चाहते थे, किंतु भारत सरकार की ओर से इस मुलाकात की व्यवस्था नहीं की गयी। इसलिए उन्होंने फोन पर जे.पी. से बात की।

अमेरिका के प्रसिद्ध गांधीवादी नेता मार्टिन लूथर किंग से भी उनके संबंध थे। जब मार्टिन लूथर किंग सन् 1970 में भारत आये तो शेखोदेवरा आश्रम भी देखने गये। पटना में उनके सम्मान में जे.पी. ने गोष्ठी का आयोजन किया।

जर्मनी के सोशलिस्ट नेताओं के साथ जे.पी. के अच्छे संबंध थे। विली ब्रांट के साथ उनकी व्यक्तिगत दोस्ती थी। प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री शुमाखर से उनकी घनिष्ठ दोस्ती थी। शुमाखर का सिद्धांत, कि छोटी चीज ज्यादा खूबसूरत होती है (स्मॉल इज ब्यूटीफुल), से वे पूरी तरह सहमत थे। जे.पी. उन्हें गांधी संस्थान, वाराणसी का निदेशक बनाना चाहते थे, लेकिन किसी कारणवश ऐसा नहीं हो पाया।

अन्य जिन नेताओं से उनके संबंध थे उनमें मिश्र के राष्ट्रपति अब्दुल गमाल नसर, इंडोनेशिया ने राष्ट्रपति सुकार्णो एवं सहरयार तथा अरब लीग के सेक्रेटरी-जनरल डॉक्टर क्लोविस मकसूद प्रमुख हैं।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 116
2. जयप्रकाश, पृ. 403

जे.पी. और नेपाल

जे.पी. का नेपाल से बहुत अंतरंग संबंध रहा। नेपाल की भूमि का इस्तेमाल उन्होंने भारत के स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाने के लिए किया और फिर अपने देश में रहकर नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना के लिए हुए आंदोलन में सक्रिय योगदान किया। आजाद दस्ते का तो गठन ही नेपाल में हुआ, लेकिन उसके काफी पहले से वह नेपाल का इस्तेमाल कर रहे थे। द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने के पहले ही उन्होंने भारत-नेपाल सीमा पर कुछ स्वतंत्र क्षेत्र (फ्री जोन) बनाने की योजना बनायी थी। दरअसल, जे.पी. को दूसरे विश्व युद्ध का पूर्वाभास हो रहा था और फ्री जोन बनाने का उद्देश्य यह था कि उन जगहों से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी जा सकेगी। इसके लिए बिहार में किशनगंज एवं जोगबनी तथा नेपाल में कुछ गांवों को चुना गया। फ्री जोन के लिए उन क्षेत्रों का चुनाव किया जाता है जिनका देश के अन्य भागों से सबसे कमजोर संपर्क होता है और जहां प्रशासन की पकड़ भी मजबूत नहीं होती है।

श्री शिशिर कुमार ने बताया कि इसके लिए काफी हथियार अफगानिस्तान तथा उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश से इकट्ठा किये गये थे और ब्लादिमिर क्लिंटन नामक एक रूसी नागरिक को गुरिल्ला युद्ध के प्रशिक्षण के लिए बुलाया गया था। जोगबनी के पास वह प्रशिक्षण कैंप चलाता था। जे.पी. ने बसावन सिंह और कन्हैया लाल वर्मा को हथियार लाने के लिए भेजा था। सीमांत के कबाइली जो अफरीदी जनजाति के थे, हथियार बेचने का काम करते थे। इस पूरी तैयारी के लिए अलग अलग क्षेत्रों में प्रभारी नियुक्त किये गये थे। कलकत्ता में इसका प्रभार बारिन घोष को दिया गया था जबकि दरभंगा में सूरज नारायण सिंह एवं देव नारायण गुरमैता इसके प्रभारी थे। जे.पी., बसावन सिंह, लखनलाल कपूर और ब्लादिमिर क्लिंटन बौद्ध भिक्षु बनकर नेपाल गये और वहां से आंदोलन का बहुत काम किया।

इसी प्रकार नेपाल में लोकतंत्र के समर्थन में चलाये गये आंदोलन का एक प्रमुख केंद्र पटना था। नेपाल में राजतंत्र था और राणा वहां की सेना में भर्ती होते थे। पृथ्वी नारायण शाह नेपाल के पहले राजा थे जिन्होंने पूरे नेपाल को एकीकृत किया। लेकिन उनकी मृत्यु के कुछ वर्षों बाद राणाओं ने सुव्यवस्थित तरीके से राजा के खिलाफ विद्रोह कर दिया और राजा की पूरी शक्ति छीन ली। स्थिति यह हो गयी कि राजा नाममात्र

के संवैधानिक राष्ट्राध्यक्ष रह गये। इसके बाद राजा और राणाओं के बीच समझौता हुआ जिसमें निश्चित हुआ कि राजा को 'पांच सरकार' और प्रधानमंत्री को 'तीन सरकार' कहा जायेगा, परंतु असली शक्ति 'तीन सरकार' में ही निहित रही, 'पांच सरकार' में नहीं। सरकार राजा के नाम पर ही चलायी जाती थी क्योंकि आम जनता के मन में राजा के लिए सम्मान था।

त्रिभुवन का नेपाल से पलायन

जंग बहादुर राणा पहले प्रधानमंत्री बने। राणा बंधुओं ने तय किया कि वे सभी भाई एक एक कर प्रधानमंत्री बनेंगे। राजा की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि कहने को तो वे राजा थे, किंतु उनकी स्थिति बंदी जैसी थी। जब त्रिभुवन वहां के सम्राट बने तो इस माहौल में उनका दम घुटने लगा। सन् 1950 में वह एक दिन पूरे परिवार के साथ पिकनिक के लिए बाहर निकले, लेकिन पिकनिक के लिए न जाकर काठमांडू स्थित भारतीय दूतावास में प्रवेश कर गये। बाद में उन्हें दिल्ली लाया गया। त्रिभुवन के भागने की खबर सबसे पहले श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने राम मनोहर लोहिया को दी और डा. लोहिया ने पटना में जे.पी. के निवास पर प्रेस ट्रस्ट को यह जानकारी दी जिसने सबसे पहले यह समाचार प्रकाशित किया।

त्रिभुवन जब निकले थे तो उनका एक चार वर्ष का पोता ज्ञानेन्द्र (महेन्द्र का पुत्र) घर पर ही छूट गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री मोहन शमशेर राणा ने घोषणा की कि ज्ञानेन्द्र नेपाल के नये राजा हैं। ब्रिटिश सरकार ने ज्ञानेन्द्र को राजा के रूप में मान्यता दे दी, लेकिन जवाहरलाल नेहरू ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। इससे भारत और ब्रिटिश सरकार में थोड़ा मतभेद भी हुआ। भारत सरकार ने ब्रिटेन के इस कदम पर कड़ी आपत्ति की और तब ब्रिटेन ने भी मान्यता वापस ले ली।

नेपाली कांग्रेस के नेतृत्व में आंदोलन

नेपाली कांग्रेस में राणा के इस कार्य के विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया हुई। नेपाल में लोकतंत्र लाने के उद्देश्य से सन् 1949 के अंत में नेपाली कांग्रेस की स्थापना हुई थी। बी.पी. कोइराला के नेतृत्व वाली नेपाली नेशनल कांग्रेस और सुवर्ण शमशेर के नेतृत्व वाली नेपाल डेमोक्रेटिक कांग्रेस को मिलाकर नेपाली कांग्रेस का गठन हुआ। नेपाल में लोकतांत्रिक सरकार के गठन के लिए पहले से कुछ छिट-पुट आंदोलन चल रहे थे, किंतु सन् 1947 में भारत को स्वाधीनता प्राप्त होते ही नेपाल का आंदोलन अनुप्राणित हुआ। नेपाली आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने भारतीय आंदोलन में भाग लिया था। भारत के भी कई नेताओं की नेपाल के आंदोलन के प्रति सहानुभूति थी।

त्रिभुवन के पलायन के बाद नेपाली कांग्रेस ने पटना में ही आंदोलन की एक विस्तृत योजना बनायी। इसमें डा. लोहिया की प्रमुख भूमिका थी। उन्होंने ही बी.पी. कोइराला को इस बात के लिए प्रेरित किया कि राणाशाही के विरुद्ध आंदोलन किया जाना चाहिए। देवेन्द्र प्रसाद सिंह का निवास उसका मुख्यालय बन गया। क्रांतिकारियों का पहला जत्था देवेन्द्र बाबू के घर से वीरगंज (नेपाल) भेजा गया। इसके लिए बड़े पैमाने पर हथियार इकट्ठे किये गये और इसमें जे.पी. का महान योगदान था। हथियार लाने के लिए जे.पी. ने भोला चटर्जी को बर्मा (वर्तमान म्यांमार) भेजा। उन्होंने वहां के तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री श्री यू-बासवे के नाम एक पत्र भी दिया। यू-बासवे एक समाजवादी नेता थे और जे.पी. से उनकी व्यक्तिगत दोस्ती थी। बर्मा से 51 स्टेनगन लाये गए। जे.पी. के अनुरोध पर शेख अब्दुल्ला ने भी कश्मीर से एक सौ राइफल भेजे। बी.पी. कोइराला स्वयं भारत के समाजवादी आंदोलन से शुरू से जुड़े थे और बिहार सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त सचिव और सोशलिस्ट पार्टी की युवा शाखा के प्रभारी भी रह चुके थे। इसलिए नेपाल की सीमा से सटे बिहार के समाजवादियों ने बी.पी. कोइराला के साथ नेपाल के आंदोलन में हिस्सा लिया।

कई लोगों ने जे.पी. की इस बात के लिए आलोचना की कि उनकी विचारधारा में व्यापक बदलाव आने के बावजूद वे एक हिंसक आंदोलन की मदद कर रहे हैं। जे.पी. ने अपने पक्ष को न्यायोचित ठहराते हुए कहा कि कुछ विशेष परिस्थितियों में हिंसा उचित है। उन्होंने गांधी जी का हवाला दिया कि जब जर्मनी ने पोलैंड पर हमला किया तो पोलैंड द्वारा किये गये हिंसक प्रतिरोध का गांधी जी ने समर्थन किया था।

त्रिभुवन वापस, मिली-जुली सरकार का गठन

सशस्त्र क्रांतिकारियों के वीरगंज पहुंचते ही आंदोलन तेजी से भड़क उठा। नेपाली सेना और क्रांतिकारियों के बीच सशस्त्र संघर्ष हुआ। सेना को आत्मसमर्पण करना पड़ा। इससे वहां की जनता उत्साहित हो गयी और आंदोलन विराटनगर, सप्तरी एवं अन्य इलाकों में फैल गया। कई लोग हताहत हुए। उनमें सुवर्ण शमशेर के भांजे भी थे। विराटनगर में भी काफी जोरदार संघर्ष हुआ। क्रांतिकारी जब विराट नगर की ओर बढ़े तो कुशहा घाट पर काफी लंबे समय तक क्रांतिकारियों और नेपाली सेना के बीच लड़ाई होती रही। बाद में क्रांतिकारियों ने विराट नगर के "बड़ा हाकिम" को अपदस्थ कर उसे बंदी बना लिया और स्थानीय प्रशासन पर कब्जा कर लिया। उन लोगों ने एक रेडियो स्टेशन की भी स्थापना की जिसके निदेशक बनाये गये फणीश्वरनाथ रेणु। उससे प्रसारण भी शुरू हो गया। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था राजा की शक्ति और गरिमा को बहाल करना। आंदोलन का पहला चरण सफल हुआ। त्रिभुवन वापस काठमांडू आये और उनकी असली

सत्ता बहाल हुई। सन् 1951 में राजा, नेपाली कांग्रेस और राणा के बीच एक समझौता हुआ। समझौते में यह निश्चित हुआ कि जनता के प्रत्यक्ष मतदान से एक संविधान सभा का गठन होगा जो संविधान का निर्माण करेगी। यह भी तय हुआ कि अंतरिम सरकार भी जनता की सरकार होगी, राणा की नहीं। इस आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह हुई कि राणाशाही का अंत हो गया। इस समझौते के तहत एक मिली-जुली सरकार बनी जिसके प्रधानमंत्री मोहन शमशेर ही रहे। बी.पी. कोइराला उसमें गृह मंत्री बनाये गये। वह मंत्रिमंडल टकराव वाला था जिसमें एक मंत्री को दूसरे मंत्री के प्रति संदेह रहता था। झगड़े की आशंका में बी.पी. कोइराला और रक्षा मंत्री बब्बर शमशेर पिस्तौल लेकर मंत्रिमंडल की बैठक में शरीक होते थे।

यह सरकार एक वर्ष भी नहीं चल पायी। बी.पी. कोइराला के बड़े भाई मात्रिका प्रसाद कोइराला उन दिनों नेपाली कांग्रेस के अध्यक्ष थे। इसलिए वे अगले प्रधानमंत्री हुए। बाद में जब महेन्द्र नेपाल नरेश बने तो उन्होंने इस समझौते को नजर अंदाज करते हुए अपना संविधान दे दिया जबकि संविधान सभा को इसकी रचना करनी थी। संविधान की रचना के लिए आईवर जेनिंग्स सहित कुछ विधि विशेषज्ञ बाहर से बुलाये गये थे। इस संविधान में राजा को काफी विशेषाधिकार प्राप्त थे।

पहली निर्वाचित सरकार का गठन, बर्खास्त

राजा को इतने विशेषाधिकार दिये जाने के बावजूद संविधान में लोकतांत्रिक सरकार के गठन की काफी गुंजाइश थी। सन् 1959 में पहली बार संसद के लिए चुनाव हुए और नेपाली कांग्रेस को दो तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ। नेपाली कांग्रेस ने सरकार का गठन किया और बी.पी. कोइराला उसके प्रधानमंत्री बने।

सरकार बनने के लगभग एक वर्ष बाद 30 दिसंबर, 1980 को राजा महेन्द्र ने अपने विशेषाधिकार का इस्तेमाल करते हुए सरकार को बर्खास्त कर दिया और बी.पी. कोइराला सहित सभी मंत्रियों को जेल में बंद कर दिया। बंदी बनाये जाने वालों में डा. तुलसी गिरि भी थे जो बी.पी. कोइराला के मंत्रिमंडल में विदेश मंत्री थे। परंतु बाद में पता चला कि यह महज एक नाटक था और थोड़े दिनों बाद राजा ने उन्हें प्रधानमंत्री बना दिया।

डा. तुलसी गिरि के प्रधानमंत्री बनने पर शिशिर कुमार ने "जनता" में एक लेख लिखा, "श्री पांच सरकार के श्री एक गुलाम मंत्री"। इसका इतना असर हुआ कि नेपाल में बहुत से लोग इसी नाम से डा. गिरि को संबोधित करने लगे। इस लेख में शिशिर कुमार ने लिखा कि तुलसी गिरि ने बी.पी. कोइराला के साथ गद्दारी की। दरअसल, शिशिर कुमार ''जनता'' में नेपाल की राजनीति पर बराबर लिखते रहते थे। जब बी.पी. कोइराला की सरकार को बर्खास्त किया गया तो सबसे पहले यह समाचार जनता में छपा क्योंकि उसी

दिन जनता का अंक प्रकाशित होनेवाला था। जनता के संपादकीय में बर्खास्तगी की कठोर शब्दों में निंदा की गयी कि यह अलोकतांत्रिक और असंवैधानिक है। बाद में नेपाली कांग्रेस के 39 सांसद पटना आये और अंजुमन इस्लामिया हाल में उनकी बैठक हुई। उस बैठक में उसी आशय का प्रस्ताव पारित हुआ जो जनता के संपादकींय में प्रकाशित हुआ था। उस प्रस्ताव की प्रति विभिन्न देशों के दूतावासों और सोशलिस्ट इंटरनेशनल को भेजी गयी। सोशलिस्ट इंटरनेशनल ने उस प्रस्ताव से सहमति व्यक्त करते हुए बर्खास्तगी की निंदा की। इतना ही नहीं सोशलिस्ट इंटरनेशनल ने अपने बुलेटिन में जनता के योगदान की सराहना की।

सन् 1968 में डा. योगेन्द्र झा के भाई की शादी में सम्मिलित होने डा. गिरि पटना आये। डा. झा और डा. गिरि के बीच काफी गहरी दोस्ती थी। उस शादी में शिशिर कुमार तथा सूरज नारायण सिंह को भी निमंत्रण था। तुलसी गिरि ने शिशिर बाबू से मिलने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन उन्होंने मना कर दिया। बाद में फिर डा. गिरि ने मिलने की इच्छा व्यक्त की। तब शिशिर बाबू ने डा. गिरि से भेंट की।

शिशिर कुमार ने डा. तुलसी गिरि से कहा, "आप बी.पी. (कोइराला) के इतने नजदीक थे कि आपके छोटे होने के बावजूद उन्होंने आपको विदेश मंत्री बना दिया और आपने भी उनका साथ छोड़ दिया।"

तुलसी गिरि ने कहा, "मैं भी बी.पी. की रिहाई चाहता हूं और इसके लिए मैं सादे कागज पर हस्ताक्षर कर सकता हूं। किंतु यह काम जे.पी. से हो सकता है। उन्हीं का इतना असर है राजा के ऊपर। यदि वे पहल करें तो यह संभव हो सकता है।"

शिशिर कुमार ने पूछा, "राजा के ऊपर जे.पी. का इतना प्रभाव होने का क्या कारण है?"

तुलसी गिरि ने जवाब दिया, "जे.पी. पंचायती व्यवस्था के समर्थक हैं जो नेपाल में लागू है।"

शिशिर कुमार ने कहा, "जे.पी. पंचायती व्यवस्था का अर्थ समझते हैं जो निचले स्तर से आती है। लेकिन नेपाल में यह ऊपर से थोपी गयी है। खैर, जो भी हो, जे.पी. अभी पटना में नहीं हैं। तीन-चार दिनों में आ जायेंगे। आप इंतजार कर लीजिये।"

तुलसी गिरि बोले, "मैं रुक नहीं पाऊंगा। आप राजा के नाम जे.पी. का पत्र लेकर आइये। या कोई और आ जाये।"

शिशिर बाबू ने इस बारे में देवेन्द्र बाबू को बताया। देवेन्द्र बाबू ने कलकत्ता में जे.पी. और सुवर्ण शमशेर को इसकी जानकारी दी। जे.पी. पत्र लिखने को राजी हो गये। श्री रामशरण प्रसाद सिंह उनका पत्र लेकर काठमांडू गये और उन्होंने डा. तुलसी गिरि को पत्र दे दिया। डा. गिरि ने राजा को चिट्ठी सौंप दी। उस पत्र में जे.पी. ने राजा से

मिलने की इच्छा व्यक्त की थी। कुछ दिनों बाद लंदन जाने के क्रम में महेन्द्र दिल्ली आये। जे.पी. ने दिल्ली में ही उनसे मुलाकात की। ऐसा समझा जाता है कि जे.पी. ने उनसे बी.पी. को छोड़ने का अनुरोध किया। कुछ समय बाद सन् 1968 में ही स्वास्थ्य के आधार पर बिना किसी शर्त उन्हें रिहा कर दिया गया।

जेल से छूटने के बाद काफी लंबे समय तक बी.पी. भारत में रहे। 30 दिसंबर, 1976 को वे पटना से काठमांडू के लिए हवाई जहाज से रवाना हुए। पटना हवाई अड्डे पर जे.पी. तथा कई अन्य मित्रों ने उन्हें विदा किया। काठमांडू में उतरते ही उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। इस बार जे.पी. ने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर से अनुरोध किया कि वे बी.पी. की रिहाई के लिए राजा पर दबाव डालें। जे.पी. ने भारत में अमेरिका के राजदूत के माध्यम से जिम्मी कार्टर को संदेश भेजा कि अमेरिकी सरकार को बी.पी. की रिहाई के लिए प्रयास करना चाहिए। कार्टर को जे.पी. का यह संदेश जब दिया गया उस वक्त वह कहीं जाने के लिए हवाई जहाज पर चढ़ रहे थे। उन्होंने जे.पी. को जवाब भिजवाया कि उनकी सरकार इस बारे में नेपाल सरकार से बात करेगी और बी.पी. की रिहाई का सुझाव देगी। ऐसा उन्होंने किया भी।

सन् 1977 में भारत में जनता पार्टी की सरकार बन गयी। जे.पी. ने तब भारत सरकार को इस दिशा में पहल करने की सलाह दी। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने नेपाल सरकार के साथ यह मामला उठाया। इस तरह कई देशों के सम्मिलित प्रयास के बाद बी.पी. रिहा हुए।

देश के भीतर शांति के प्रयास

जिस तरह जे.पी. ने अन्य देशों में मानवाधिकार की रक्षा और शांति की स्थापना के लिए हर संभव कोशिश की, उसी प्रकार देश के अंदर की भी अहम् समस्याओं के प्रति वे बराबर संवेदनशील बने रहे। राजनीति से संन्यास लेने के बावजूद राजनीतिक प्रश्नों पर वे हमेशा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे।

कई बार उनके दृष्टिकोण से गंभीर विवाद भी हो गया, किंतु अपनी लोकप्रियता को दांव पर लगाकर उन्होंने अपना विचार खुलकर व्यक्त किया और उनके प्रयासों से ठोस परिणाम सामने आये। इस प्रसंग में कश्मीर और नागालैंड की समस्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कश्मीर पर उनका पक्ष

कश्मीर के बारे में शुरू से उनकी मान्यता यह रही कि भारत में कश्मीर के केवल वैधानिक विलय से विवाद खत्म नहीं हो जाता, बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी उसका विलय होना चाहिए। इसके साथ ही उनका यह भी मानना था कि शेख अब्दुल्ला को अलग-थलग कर कश्मीर समस्या का हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता। उनका विचार था कि शेख अब्दुल्ला के कारण ही कश्मीर के लोग भारत की ओर मुखातिब हुए हैं। उस समय शेख अब्दुल्ला की छवि भारत-विरोधी थी क्योंकि उन्होंने वक्तव्य दिया था कि कश्मीर का भविष्य कश्मीर की जनता तय करेगी। सन् 1953 में जब शेख को गिरफ्तार किया गया तो जे.पी. ने उसका प्रबल विरोध किया। उन्होंने शेख अब्दुल्ला के वक्तव्य से भी सहमति व्यक्त की। उन्होंने इस तर्क का भी खंडन किया कि कश्मीर के नागरिकों ने तीन आम चुनावों में अपनी इच्छा व्यक्त कर दी है और अब उनकी इच्छा जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। जे.पी. ने जोर देकर कहा कि शेख की गिरफ्तारी के बाद कश्मीर में कोई भी चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं हुए हैं। सन् 1964 में उन्होंने जनमत संग्रह का भी समर्थन किया, "मुझमें देशभक्ति या अन्य गुणों की कमी हो सकती है, लेकिन यह कहना मुझे हमेशा एक झूठ प्रतीत हुआ है कि कश्मीर के लोगों ने पहले ही भारत से मिलने का फैसला कर लिया था। वे ऐसा कर सकते हैं, किंतु अभी तक उन्होंने ऐसा नहीं किया है। चुनावों की निष्पक्षता के अलावा जम्मू और कश्मीर राज्य का भविष्य कभी

चुनावी मुद्दा नहीं बनाया गया।...अंत में, यदि हमें लोगों के फैसले में इतना विश्वास है तो हम उन्हें इसे दुहराने का एक दूसरा मौका देने के खिलाफ क्यों हैं?"[1]

उनके वक्तव्य से बहुत बड़ा विवाद खड़ा हो गया। कुछ लोगों ने तो उन्हें देशद्रोही तक कह दिया। कांग्रेस के 27 सांसदों ने संयुक्त वक्तव्य जारी कर कठोर शब्दों में उनकी आलोचना की। कुछ लोगों ने तो भारत-रक्षा-कानून के अंतर्गत उन्हें गिरफ्तार करने की भी मांग की। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्यों ने सन् 1964 में दिल्ली में उनकी एक सभा में भारी हंगामा किया और उनका कुर्ता फाड़ दिया। इस विवाद के तुरंत बाद एक प्रतिनिधिमंडल के साथ वे पाकिस्तान गये और भारत-पाक मित्रता पर राष्ट्रपति अयूब खां के साथ विचार विमर्श किया। अयूब खां ने जब भारत और पाकिस्तान के बीच संयुक्त प्रतिरक्षा का विचार रखा तो जे.पी. ने इसका पूरा समर्थन किया।

कश्मीर के बारे में दृष्टिकोण में बदलाव

सन् 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद कश्मीर के बारे में जे.पी. का दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया। पहले जहां वे कश्मीर मसले पर किसी भी बातचीत में पाकिस्तान को शामिल करने के पक्षधर थे, वहीं युद्ध के बाद उन्होंने जोर देकर कहा कि पाकिस्तान के लिए कश्मीर अध्याय बंद हो चुका है, "अब विवाद के मात्र दो पक्ष हैं—भारत सरकार तथा जम्मू और कश्मीर की जनता और नेता। दुनिया, चाहे उसकी जो भी सहानुभूतियां हों, को कुछ भी कहने को नहीं रहेगा जब एक बार यह विश्वसनीय ढंग से दिखा दिया जाये कि कश्मीर के लोग और भारत सरकार पारस्परिक ढंग से एक सहमति पर पहुंच चुके हैं। यहां तक कि पाकिस्तान को भी कहने को कुछ नहीं रहेगा।"[2]

जे.पी. का तब तक यह पक्का मत हो गया था कि कश्मीर की भलाई इसी में है कि वह भारत का अंग रहे। इसलिए आत्मनिर्णय के मुद्दे पर भी उनका विचार बदल गया और उन्होंने प्लेबिसिट फ्रंट से इस मांग को छोड़ देने की अपील की। समस्या के हल के लिए उन्होंने सलाह दी कि भारत सरकार को शेख अब्दुल्ला और मिरजा अफजल बेग से वार्ता करनी चाहिए। युद्ध के बाद उन्हें लगने लगा कि कश्मीर यदि स्वतंत्र हो गया तो पाकिस्तान उसे बर्बाद कर देगा। इसलिए उन्होंने कश्मीर में सर्वाधिक स्वायत्ता की हिमाकत की, लेकिन स्पष्ट किया कि वह भारत का ही अंग रहे।

गोवा के विलय पर प्रतिक्रिया

गोवा, दमन और दीव पर पुर्तगाल का कब्जा था। दिसंबर, 1961 में भारत सरकार ने इन तीनों पुर्तगाली उपनिवेशों पर कब्जा कर लिया। वैसे तो उपनिवेशवाद की समाप्ति पर जे.पी. प्रसन्न ही थे, किंतु जिस ढंग से भारत सरकार ने उस पर कब्जा किया, उससे

उन्हें पीड़ा हुई, "मुझ जैसे व्यक्ति को, जो हिंसा को अनैतिक और मानवता के लिए घातक मानता है, इस बात का खेद है कि उसके अपने ही देश को हिंसा का सहारा लेना पड़ा। अहिंसा की मदद से पूरे देश की आजादी हासिल की, लेकिन मातृभूमि के एक छोटे-से हिस्से को अहिंसक साधनों द्वारा मुक्त कराने में हम असफल रहे।"[3]

नागा समस्या हल करने में योगदान

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में स्थित म्यांमार की सीमा से लगा नागालैंड भारत-मंगोल उत्पत्ति की 14 जातियों का एक अलग राज्य है। नागाओं की संस्कृति देश के अन्य हिस्सों से काफी भिन्न है। 19वीं शताब्दी के पहले तक का नागाओं का इतिहास युद्धों से भरा है। वहां एक-दूसरे गांवों के बीच लड़ाई होती रहती थी। बगल के क्षेत्रों में वे बराबर छापा मारते थे। स्थिति इतनी बिगड़ गयी थी कि नागाओं को ठीक करने के लिए अंग्रेज सरकार को वहां सेना भेजनी पड़ी थी। उस क्षेत्र के लिए सन् 1877 में कोहिमा में मुख्य प्रशासनिक केंद्र की स्थापना की गयी और वोरवा में उसका एक उपकेंद्र बनाया गया। इससे वहां प्रभावकारी प्रशासन की शुरुआत हुई, किंतु तुएनसांग जिला प्रशासन से मुक्त रहा। शुरू से उन लोगों ने अपने प्रदेश को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में देखा। आजादी की लड़ाई के समय भी वे लोग स्वतंत्र रूप से ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़ रहे थे। सन् 1930 में अंग्रेजों ने नागा विद्रोह को बर्बरता से कुचल दिया और उनके नेता जादुनाम को फांसी दे दी गयी। इतना ही नहीं जादुनाम की बहन को भी अंग्रेजों ने बंदी बना लिया जिन्हें 18 वर्ष बाद सन् 1948 में भारत सरकार ने रिहा कर दिया।

सन् 1947 में जब देश स्वाधीन हुआ तो नागाओं को लगा कि भारत की तरह ही उनकी भूमि भी स्वतंत्र हो गयी है। बल्कि सन् 1946 में ही फीजो ने एक नागा राष्ट्रीय परिषद् का गठन कर स्वतंत्र नागालैंड की मांग की थी। परिषद् ने गांधी जी, नेहरू जी एवं भारत सरकार के साथ इस बारे में वार्ता भी की थी। नरमपंथियों ने नागा पीपुल्स कंवेंशन की स्थापना की थी और वे स्वायत्तता की शर्त पर भारत के अंदर रहने को राजी हो गये। लेकिन उसी साल असम के राज्यपाल सर अकबर हैदरी ने नागा नेताओं से एक नौ सूत्री समझौता किया। समझौते की प्रमुख शर्तें थीं—नागाओं का विकास उनकी इच्छाओं के अनुरूप हो, राज्य या केंद्र द्वारा पारित कोई भी कानून वहां तब तक अमल में नहीं आयेगा जब तक कि नागा राष्ट्रीय परिषद् उसकी पुष्टि न कर दे, इस परिषद् को राजस्व एवं गृहकर लगाने का और इससे होनेवाली आय को खर्च करने का अधिकार हो।

थोड़े ही दिनों के बाद नागा राष्ट्रीय परिषद् पर उग्रवादियों का वर्चस्व हो गया और उन्होंने नये सिरे से आजादी की मांग शुरू की। पहले उन्होंने असहयोग का कार्यक्रम चलाया। इसके अंतर्गत उन लोगों ने कर देना और विकास योजनाओं में सहयोग देना बंद कर दिया,

छात्रों ने स्कूल-कालेजों का बहिष्कार किया और सभी स्कूलों के शिक्षकों ने त्यागपत्र दे दिया। धीरे धीरे आंदोलन हिंसक होता गया और वहां की सड़कें काट दी गयीं। पुल उड़ा दिये गये तथा सरकारी भवनों को जला दिया गया। सन् 1952 के आम चुनाव का भी उन्होंने बहिष्कार किया। सन् 1953 में नेहरू जी के सम्मान में आयोजित एक सभा से उठकर वे लोग चले गये।

नागाओं की समानांतर सरकार

सन् 1955 में भारतीय सेना और नागा विद्रोहियों के बीच घमासान लड़ाई हुई। मार्च, 1950 में नागाओं ने भूमिगत स्वतंत्र सरकार का गठन किया। उस सरकार के बारे में प्रोफेसर सच्चिदानंद ने लिखा है, "इसका अपना झंडा था। इस समानांतर सरकार में जनता द्वारा चुना गया राष्ट्रपति था। इसकी सौ सदस्यों की एक संसद थी और 15 मंत्रियों की एक परिषद् थी। प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक गवर्नर भी नियुक्त किया गया था। उच्च न्यायालय एवं बृहत सैन्य-संगठन का भी प्रावधान किया। इस भूमिगत सेना में करीब 15 हजार बंदूकधारी सैनिक थे।"[4]

इस भूमिगत सरकार के बनने के बाद वहां हिंसा और तेज हो गयी। भारतीय सेना और भूमिगत सेना के बीच बराबर संघर्ष होता रहा। यह ऐसा विनाशकारी संघर्ष था जिसमें हर परिवार तबाह हुआ और बहुत बृहत पैमाने पर जान-माल की क्षति हुई। इस बीच, फीजो सन् 1958 में भारत से भाग निकले और बाहर जाकर नागालैंड के पक्ष में जनमत तैयार करने लगे। वे रेवरेण्ड माइकेल स्काट से मिले जिन्होंने नागा समस्या के समाधान के लिए पहल करने के लिए जे.पी. को लिखा। जे.पी. ने नेहरू जी को समझाया कि नागालैंड को एक पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाना चाहिए। अंत में उसे राज्य का दर्जा दिया गया और सन् 1962 में वहां की विधानसभा की पहली बैठक हुई।

पीस मिशन का गठन

वहां के चर्च नेता हिंसा के वातावरण से बेहद परेशान और चिंतित थे। फरवरी, 1964 में वोरवा में नागालैंड बैप्टिस्ट की महासभा हुई। इसमें युद्ध समाप्त करने के लिए नागालैंड विधानसभा के नाम अपील जारी की गयी जिसे बिना किसी विरोध के विधानसभा में स्वीकार कर लिया गया। प्रस्ताव में यह भी सुझाव दिया गया कि नागालैंड सरकार और फीजो के बीच बातचीत होनी चाहिए। इसके साथ ही, हिंसा को रोकने के लिए एक "पीस मिशन" गठित किया गया जिसके चार सदस्य मनोनीत किये गये—जयप्रकाश नारायण, शंकर राव देव, विमला प्रसाद चालिहा (असम के तत्कालीन मुख्यमंत्री) और रेंमाइकेल स्काट। शंकर राव देव खराब स्वास्थ्य के कारण उसमें सम्मिलित नहीं हो पाये।

शांति बहाल करने की दिशा में "पीस मिशन" ने काम शुरू किया। चर्च नेताओं की सहायता से उन लोगों ने बीहड़ जंगलों में जाकर विद्रोहियों से बातचीत की। यह एक अत्यंत दुष्कर कार्य था क्योंकि इसके लिए उन्हें मीलों पर्वतों पर पैदल भी चलना पड़ता था। जे.पी. पहले राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने जंगलों में जाकर भूमिगत नेताओं से मुलाकात की। नागाओं की स्वाधीनता की मांग पर जे.पी. ने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि आज के युग में बड़े से बड़ा राष्ट्र भी सच्चे अर्थों में स्वाधीन नहीं है। अभी स्वतंत्रता की जगह अंतर्निभरता बढ़ती जा रही है। दुनिया के तमाम देश क्षेत्रीय संगठनों की ओर बढ़ रहे हैं।

युद्ध स्थगन पर सहमति

मई, 1964 में "पीस मिशन" के सदस्य 'सकरावा' गांव में विद्रोही नेताओं से जा मिले और युद्ध-स्थगन प्रस्ताव पर हस्ताक्षर हुए। अपने भाषण में जे.पी. ने इन लोगों को आश्वासन दिया कि पीस मिशन निष्पक्ष होकर सत्यनिष्ठा के साथ काम करेगा। नागा समस्या को एक मानवीय और आध्यात्मिक समस्या बताते हुए उन्होंने कहा कि हमारा काम आपस में समझौते के क्षेत्र को बढ़ाना है। जे.पी. ने भारत सरकार के सम्मुख "पीस मिशन" की ओर से जो प्रस्ताव रखा उसमें कहा गया कि ऐतिहासिक एवं अन्य परिस्थितियों के कारण देश के अलग अलग राज्यों के लिए अलग अलग व्यवस्था करनी पड़ सकती है। प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया कि ऐसे उपाय किये जायें कि नागा अपनी इच्छा से ही भारत के अंग बने रहें। जे.पी. ने सुझाव दिया कि सभी आंतरिक मामलों में नागालैंड को पूर्ण स्वायत्ता प्राप्त होनी चाहिए एवं अपने क्षेत्र के लिए संविधान की रचना करने हेतु उसे संविधान सभा के गठन का भी अधिकार होना चाहिए।[5] अगस्त, 1964 तक पीस मिशन की पहचान एक निष्पक्ष एजेंसी के रूप में बन चुकी थी और भारत सरकार के साथ साथ नागाओं के मन में भी उसके काम के लिए सम्मान था। युद्ध-स्थगन प्रस्ताव पर हस्ताक्षर होने के कुछ दिन बाद भारत सरकार और नागाओं ने प्रस्ताव को मान लिया। 6 सितंबर, 1964 को नागालैंड के गृह मंत्री किलो-किलोस्नर ने 6 सिंतबर से 5 अक्तूबर तक युद्ध-स्थगन का आदेश जारी किया। 6 सिंतबर को सारे नागालैंड में खुशियां मनायी गयीं, जनसभाएं हुई और गिरिजाघरों में विशेष कार्यक्रम हुए। एक दशक में रक्त रंजित युद्ध और कलह के बाद वहां शांति बहाल हुई और लोग अपने अपने पारंपरिक व्यवसाय में लग गये। यह तय हुआ कि सरकारी सेनाएं गांवों या जंगलों में नहीं जायेंगी, भूमिगत ठिकानों पर छापा नहीं मारेंगी एवं दंड के रूप में लोगों से श्रम नहीं लिया जायेगा। विद्रोही नेताओं ने भी शांति बनाये रखने का आश्वासन दिया।

जे.पी. के प्रयासों से सर्वोदयी नेता भी इस समस्या के हल में सक्रिय रूप से दिलचस्पी

लेनें लगे। सन् 1964-65 में कई प्रमुख सर्वोदयी नेता नागालैंड गये। सबसे पहले जाने वाले थे सुरेश राम और उनके बाद दादा धर्माधिकारी, अमल प्रभा दास, नारायण देसाई, गोविन्द राव देशपांडे आदि। सन् 1964 में ही सर्व सेवा संघ की कार्यकारिणी ने नागालैंड में शांति की स्थापना के पक्ष में प्रस्ताव पारित किया था। जे.पी. की ही सलाह पर फरवरी, 1965 में प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने नागालैंड की समस्या का अध्ययन और अवलोकन करने सांसदों का एक दल वहां भेजा। जे.पी. का विचार यह था कि स्थायी शांति की स्थापना के लिए जो भी हल हो वह दोनों पक्षों को मान्य हो और यह तभी संभव होगा जब दोनों एक-दूसरे को ठीक से समझेंगे। इसलिए उन्होंने लाल बहादुर शास्त्री को सांसदों का दल भेजने का सुझाव दिया था। फरवरी, 1965 में इन सांसदों ने वहां जाकर चंदेमा में भूमिगत नेताओं से बातचीत की और दिल्ली लौटने पर रिपोर्ट दी कि नागा लोग शांति चाहते हैं।

शांति दल की स्थापना

अप्रैल, 1965 में जे.पी. के प्रयत्नों से ही शांति दल की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य था पीस मिशन को उसके कामों में सहायता देना। दरअसल, शांति दल का गठन पीस मिशन के द्वारा ही किया गया था। शांति दल के सदस्य थे—विनय कृष्ण चौधरी, डॉ. एस.आराम, अमल प्रभा दास और मार्जौरी साइक्स। उसी वर्ष जे.पी. ने कोहिमा में शांति केंद्र की स्थापना की। डा. आराम को उसका निदेशक बनाया गया।

पीस मिशन से त्यागपत्र

जे.पी. का हमेशा यह प्रयास रहा कि नागालैंड भारत का ही हिस्सा बना रहे, किंतु उन्हें विशेष सुविधाएं देने के लिए संविधान में व्यवस्था की जानी चाहिये। उनका मानना था कि नागालैंड यदि स्वतंत्र हो गया तो चीन उसके साथ वही व्यवहार करेगा जो उसने तिब्बत के साथ किया। वह पूरी निष्ठा से अपने काम में लगे रहे। 13 नवंबर, 1969 को उन्होंने राष्ट्रपति डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को पत्र लिखा कि मिशन उनका एक पवित्र कर्तव्य है। किंतु फरवरी, 1966 में उन्होंने पीस मिशन की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। पंजाब में उन्होंने एक भाषण में कुछ बातें कही थीं जिस पर नागालैंड के भूमिगत नेताओं ने आपत्ति की। जे.पी. सबको साथ लेकर काम करना चाहते थे। इसलिए जब उन्हें लगा कि उन्होंने एक पक्ष का विश्वास खो दिया है तो उन्होंने उससे अपने को अलग कर लिया।

त्यागपत्र देने का अर्थ यह नहीं हुआ कि जे.पी. नागालैंड की समस्याओं के प्रति उदासीन हो गये। लगातार वह इस समस्या के प्रति संवदेनशील रहे। सन् 1969 में वह कोहिमा गये और एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने कहा कि यह कानूनी समस्या नहीं है और न

हिंसक तरीके से इसे सुलझाया जा सकता है। उस साल राजगृह (बिहार) में सर्वोदय सम्मेलन हुआ जिसमें नागालैंड का भी एक शिष्टमंडल आया। धीरे धीरे सर्व सेवा संघ की गतिविधियों में वहां के लोगों की दिलचस्पी बढ़ी। बहुत सारे लोगों का विचार है कि यदि जे.पी. ने प्रेम से नागाओं के दिलों को नहीं जीता होता तो नागालैंड एक दूसरा वियतनाम बन जाता।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 243
2. वही, पृ. 282
3. जयप्रकाश, पृ. 403
4. प्रो. सच्चिदानंद : नागा समस्या और जयप्रकाश (ज्योत्स्ना), पृ. 75
5. नारायण, जयप्रकाश : नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 92-3

चम्बल के खूंखार बागियों का आत्मसमर्पण

सन् 1972 में अप्रैल माह में बड़ी संख्या में चम्बल के खूंखार डाकुओं ने जे.पी. के सामने हथियार डाल दिये और नये ढंग से जीवन जीने का संकल्प लिया। इन बागियों, जो दहशत और आतंक के प्रतीक बन चुके थे, के आत्मसमर्पण को कुछ लोगों ने इस शताब्दी का सबसे बड़ा आत्मसमर्पण माना है। साथ ही यह घटना प्रमाणित करती है कि अहिंसा और प्रेम के जरिये खूंखार से खूंखार व्यक्ति के हृदय में भी क्रांति लायी जा सकती है। आखिर अंगुलिमाल ने भी तो बुद्ध के सामने आत्मसमर्पण किया था।

विनोबा के समक्ष आत्मसमर्पण (1960)

सन् 1972 की घटना की पृष्ठभूमि में मई, 1960 की घटना है जब चम्बल के ही बीस बागियों ने आचार्य विनोबा भावे के समक्ष आत्मसमर्पण किया था। ये बागी थे—राम औतार सिंह, पातीराम, श्री किशन मोहरमन, लक्ष्मी नारायण शर्मा (लच्छी), प्रभुदयाल (परभु), लोकमन (लुक्का) कन्हई, तेज सिंह, हरे लाल, राम सनेही, दुर्जन, विद्याराम, भूपसिंह (भूपा) जगजीत,महरे, भगवान सिंह, राम दयाल, बदन सिंह और खचेरे। ये सभी व्यक्तिगत पश्चाताप के बाद कानूनी पश्चाताप के तहत फांसी के तख्त पर चढ़ने को भी तैयार थे। सबसे पहले इसके लिए पहल की मानसिंह के पुत्र तहसीलदार सिंह ने। उन्हें फांसी की सजा सुनायी जा चुकी थी। नैनी जेल से उन्होंने विनोबा को पत्र लिखा कि फांसी पर चढ़ने से पहले एक बार वह उनका दर्शन कर इस क्षेत्र की समस्या उन्हें बताना चाहते हैं। विनोबा ने मेजर जेनरल यदुनाथ सिंह, जो चम्बल घाटी के ही रहने वाले थे, को अपना प्रतिनिधि बनाकर तहसीलदार सिंह के पास भेजा।

इसके बाद मई, 1960 में विनोबा अपनी पदयात्रा के सिलसिले में उस क्षेत्र में पहुंचे तो बागियों ने उनके चरण छूकर आत्मसमर्पण किया। इस अभूतपूर्व घटना का काफी प्रभाव पड़ा समाज पर। अलग अलग वर्गों के लोगों ने उनके तथा उनके द्वारा तबाह किये गये परिवारों के पुनर्वास के लिए भिन्न भिन्न तरह से मदद की। कुछ वकीलों ने उनके मुकदमे मुफ्त लड़े। कुछ बागियों को सजा हुई, किंतु अच्छे व्यवहार के कारण उन्हें समय पूरा होने से पहले रिहा कर दिया गया।

इस घटना के लगभग ग्यारह वर्ष बाद फिर कुछ बागियों ने हिंसा की राह छोड़कर

समाज की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए हथियार डालने पर विचार किया। सरदार माधो सिंह ने जगरूप सिंह को विनोबा के पास इस संदेश के साथ भेजा कि कई बागी समर्पण करना चाहते हैं और आपकी मदद चाहते हैं। विनोबा ने यह निमंत्रण स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे संन्यास ले चुके थे। उन्होंने जगरूप सिंह को जयप्रकाश नारायण के पास जाने की सलाह दी। माधो सिंह ने इसके पहले राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और भारत सरकार के गृहमंत्री सहित कई मंत्रियों, सांसदों और विधायकों को चिट्ठियां भेजी थीं, लेकिन उससे कुछ हुआ नहीं।

जे.पी. और माधो सिंह की मुलाकात

इस समस्या के हल के लिए माधो सिंह जे.पी. की खोज में निकल पड़ा। इसके लिए 26 सितंबर, 1971 को वह दिल्ली पहुंचा। बहुत भटकने के बाद गांधी शांति प्रतिष्ठान से जे.पी. का पटना का पता मिला। वहां से वह पटना आया और जे.पी. से मिला। उसने अपना नाम राम सिंह बताया और बोला कि वह मध्य प्रदेश का बहुत बड़ा ठेकेदार है और डाकुओं ने उसे भेजा है। शुरू में जे.पी. ने यह काम अपने हाथ में लेने से इंकार करते हुए उसे विनोबा के पास जाने को कहा। फिर उसने बताया कि विनोबा की ही सलाह पर वह उनसे मिलने आया है। उसने उन्हें काफी समझाने का प्रयास किया कि बड़ी संख्या में बागी आत्मसमर्पण करेंगे जिससे उस क्षेत्र की डाकू समस्या ही समाप्त हो जायेगी। जे.पी. ने उससे फिर आने को कहा। दोबारा बातचीत हुई। तीसरी बार अचानक उसने अपना असली नाम बता दिया। इसके बारे में उसने स्वयं कहा है, "जब हमने जे.पी. साहब से कहा कि मैं माधो सिंह हूं तो उसने चश्मा उतार के रख दिया और दो मिनट कुछ सोचा। और सोचकर यह कहा कि आपने तो मेरे ऊपर बहुत बड़ा वचन डाल दिया।...मैं मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की गवर्नमेंट से बात करूंगा। अगर बात वो सही होगी और मुझे पक्की मालूम पड़ेगी वे कुछ मदद करेंगे, तो मैं इस काम को हाथ में लूंगा। और नहीं तो मैं कुछ नहीं कर सकता।

"जे.पी. ने जो कुछ किया उसके लिए मैं अहसानमंद हूं।...ये जो मेरी बात जे.पी. साहब से हुई थी वो बंगलादेश के मामले से पहले हुई थी। उनका स्वास्थ्य खराब होने से पहले ही से चल रही थी। और हाथ में ये सबसे बड़ा काम था जो दिखाई देता था। पूरी दुनिया को दिखाई देता था बंगलादेश का काम। लेकिन उस काम के साथ साथ उन्होंने हमारे काम को भी स्वीकार किया और कहा मेरे पास जितना भी टाईम होगा, जितना भी कर सकता हूं करूंगा इस भलाई के लिये।

"मैं हमेशा सोचता रहा हूं कि अगर हो सके तो डाकू नाम यहां से मिट जाये। क्योंकि इस बात को मैं कभी भूलूंगा नहीं मरते दम तक कि यहां डाकू जो नाम पुकारा जाता

है वह विदेशी चिड़िया नहीं आयी है वो यहीं के नागरिक हैं यहीं के बच्चे हैं, यहीं पैदा हुए हैं।"[1]

माधो सिंह ने उनसे अनुरोध किया कि बागियों को सजा चाहे जितनी लंबी दी जाये पर फांसी किसी को न हो। जे.पी. ने सहमति जताई कि यह बहुत वाजिब शर्त है। माधो सिंह ने आगे कहा कि पहले लोकमन आदि के साथ जैसा व्यवहार हुआ वैसा उन लोगों के साथ नहीं होना चाहिए। मुकदमे एक ही जगह चलाए जायें। पुलिस छह महीने में सारे मामले पेश कर दे और तीन महीने में अदालत फैसला कर दे। साथ ही जेल में उन लोगों के साथ मानवीय व्यवहार होना चाहिए। जे.पी. ने उसकी हर बात पर हामी भरी। उन्होंने माधो सिंह को अपने शेखोदेवरा आश्रम में छिपाकर कुछ दिन रखा भी।

उन्होंने मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखे। केंद्र सरकार से भी संपर्क स्थापित किया। इसके अलावा चम्बल घाटी शांति समिति के मंत्री श्री महावीरभाई और श्री हेमदेव शर्मा को भी बुलाया। इन दोनों ने विनोबा के साथ 12 वर्ष पूर्व इस इलाके में काम किया था। जे.पी. ने "चम्बल घाटी शांति समिति मिशन" का गठन किया और इसका काम महावीर भाई और हेमदेव को सौंप दिया था।

बागियों के नाम जे.पी. की अपील

कठोर परिश्रम और मानसिक तनाव के कारण दिसंबर में जे.पी. बीमार हो गये और तीन महीने उन्हें विश्राम करना पड़ा। इस बीच माधो सिंह ने पटना से लौटकर बागियों को जे.पी. के साथ हुए वार्तालाप के बारे में बताया। वह पहाड़गढ़ के जंगलों में था। वहीं से वह मिशन और जे.पी. को संदेश भेजता था। बाद में मिशन के कार्यों से संतुष्ट होकर 13 दिसंबर को जे.पी. ने बागियों के नाम अपील जारी की, "आजकल हमारा देश नाजुक दौर से गुजर रहा है। संकट की इस घड़ी में जबकि सारा देश अपनी सुरक्षा और आत्मसम्मान के लिए प्रयत्नशील है, चम्बल घाटी के बागी भाइयों से मेरी अपील है कि वे भी अपना गलत रास्ता छोड़कर देश के साथ सहयोग करें। इस काम में मैं केंद्रीय गृह राज्यमंत्री श्री कृष्ण चंद्र पंत, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुख्यमंत्री सर्वश्री श्यामाचरण शुक्ल, कमलापति त्रिपाठी और बरकातुल्लाह खां से संपर्क में हूं और इस काम के साथ उनकी पूरी सहानुभूति है।"[2]

इस अपील की हजारों प्रतियां मिशन की ओर से चम्बल घाटी में बांटी गयीं। माधो सिंह ने जे.पी. को पत्र लिखा कि हम हथियार डालने को तैयार हैं, पर क्या समाज हमें वापस स्वीकार करेगा?

जब इस पत्र के कुछ अंश अखबारों में प्रकाशित हुए तो लोगों को जे.पी. की अपील के असर का पता चला। मिशन का काम चल रहा था। फरवरी में जे.पी. के प्रयासों से

मानसिंह के पुत्र तहसीलदार सिंह रिहा हुए। फरवरी, 1972 में जे.पी. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में इलाज कराने दिल्ली पहुंचे। महावीर भाई, हेमदेव शर्मा और तहसीलदार सिंह उनसे दिल्ली में मिले। इसके बाद मध्य प्रदेश के पुलिस महानिरीक्षक ने पहाड़गढ़ क्षेत्र में बागियों से संपर्क करने की छूट मिशन को दे दी। हिमालय सेवा संघ ने मिशन को एक जीप दी जिससे मिशन का काम तेज हो गया। इस बीच प्रकाश चन्द्र सेठी मध्य प्रदेश के नये मुख्यमंत्री हो गये। उन्होंने भी जे.पी. से मिलकर भरपूर सहयोग देने का आश्वासन दिया।

माधो सिंह ने जे.पी. से 15 दिन तक घाटी में रहने का अनुरोध किया। जे.पी. का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था, इसलिए उन्होंने संदेश भिजवाया कि पांच-छह दिन के लिए वे जायेंगे। माधो सिंह ने मोहर सिंह से मुलाकात की। मोहर सिंह को सेठ जी के वक्तव्य पर भरोसा नहीं था, किंतु जब जे.पी. का पत्र उसे सुनाया गया तो वह तैयार हुआ। उसके माध्यम से सरूप सिंह, तिलक सिंह, पंचम सिंह, कालीचरण आदि के दलों से संपर्क हो पाया।

केंद्र सरकार ने 2 अप्रैल को मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुख्यमंत्रियों की बैठक बुलायी। बैठक में कमलापति भाग नहीं ले पाये लेकिन उन्होंने उसके निर्णय के प्रति सहमति प्रकट की और बैठक सफल रही। लगभग ढाई सौ डाकू समर्पण के लिए तैयार थे। समर्पण ग्वालियर में होना तय हुआ। उन्हें पगारा बांध की कोठी में ठहराने और जौरा आश्रम में समर्पण समारोह आयोजित करने की व्यवस्था की गयी। समर्पण के लिए राजी होने वालों में दो लाख के इनाम वाला मोहर सिंह, डेढ़ लाख के इनाम वाला माधो सिंह और 12 से 15 हजार के इनाम वाले माखन सिंह, जगजीत सिंह आदि शामिल थे। केंद्रीय गृह मंत्रालय की पहल पर 10 अप्रैल को जे.पी. संसद भवन में इंदिरा गांधी से मिले। 11 अप्रैल को मध्य प्रदेश के राजकीय विमान से जे.पी. को ग्वालियर लाया गया। प्रभावती जी भी साथ गयीं। हवाई अड्डे पर गर्मजोशी से लोगों ने उनका स्वागत किया। वहां से वे चम्बल घाटी क्षेत्र में पहुंचे जहां जौरा गांव के पास पगारा बांध के विश्राम गृह में उनके ठहरने की व्यवस्था थी। उनसे सबसे पहले मिलने वाला था कुख्यात डाकू मोहर सिंह। 11 अप्रैल को रात में वह जे.पी. से मिला और बोला, "न हमारी कोई मांग है, और न कोई शर्त है। हमने तो अपना सिर आपके चरणों में रख दिया है। और चाहें, तो बचा लें। हम कुछ नहीं कहेंगे।"

जे.पी. ने कहा, "मैं यह देखने को तैयार नहीं हूं कि मेरे सामने आत्मसमर्पण वाले किसी बागी को फांसी हो जाए। आप में से हरेक की जान मेरी जान के बराबर है। किसी को भी फांसी हो गयी, तो मैं उपवास करके मर जाऊंगा।"[3]

वहां बागियों के साथ साथ गांव वालों की भीड़ जमा हो गयी। एक के बाद एक

बागियों का दल आता गया। सबसे खूंखार समझे जाने वाले मोहर सिंह ने सबसे पहले आत्मसमर्पण कर सबको भौंचक्का कर दिया। जे.पी. ने बड़े स्नेह के साथ उसे पुत्रवत उठाया। उसने जे.पी. और प्रभावती के पैर छुए। उस रात स्निग्ध वातावरण में बैठक समाप्त हुई। सबने उठने के पहले जे.पी. और प्रभावती जी के पैर छुए।

13 अप्रैल को पारिवारिक स्नेह-मिलन का कार्यक्रम आयोजित किया गया। जे.पी. के अनुरोध पर गांधी और विनोबा के चित्र वहां रखे गये। भजन के साथ स्नेह-मिलन की शुरुआत हुई। प्रभावती जी ने सबको तिलक लगाया, जे.पी. ने उन्हें गले लगाया और बहनों ने उन्हें राखियां बांधीं। जे.पी. ने उनसे कहा, "हमारा एक छोटा-सा परिवार है—ईश्वर को मानने वालों, प्रेम और अहिंसा को मानने वालों और गांधी-विनोबा के मार्ग पर चलने वाले लोगों का सर्वोदय परिवार। आज हमने आपको अपने इस परिवार में शामिल कर लिया है। इस परिवार की लाज रखने की जिम्मेदारी आपकी है। यह आपका कर्तव्य है।"[4]

बागियों ने बहनों को राखी बांधने के लिए एक एक रुपया दिया।

आत्मसमर्पण

14 और 16 अप्रैल को खुले समारोहों में बागियों ने आत्मसमर्पण किया। गांधी जी की तस्वीर के सामने हथियारों का अंबार लग गया—स्टेनगन, मशीनगन, ऑटोमेटिक रायफल, टेलिस्कोपिक रायफल, कारतूस और कई अन्य विदेशी हथियार। माधो सिंह ने बागियों की ओर से प्रतिज्ञा पत्र पढ़ा, "हम अपने आपको समाज की सेवा के लिए समर्पित करते हैं। बाबा विनोबा जी और बाबू जयप्रकाश जी के आशीर्वादों के साथ हम अपनी नयी जिन्दगी शुरू कर रहे हैं। हमसे बहुत भूलें हुई हैं। इसके लिए हमें दिल से पछतावा हो रहा है। हमारी वजह से जिन जिन को दुख और तकलीफ हुई है, उन सबसे हम माफी मांगते हैं।"[5]

सभी बागियों को ग्वालियर की केंद्रीय जेल में रखा गया। किसी को हथकड़ी नहीं पहनाई गयी। न ही उनके साथ किसी ने दुर्व्यवहार किया। कुछ को खुली जेलों में रखा गया। जे.पी. स्वयं शांति मिशन के अध्यक्ष थे और मिशन ने अपना काम जारी रखा। मिशन का काम था—बागियों की समस्या हल करना, अदालती कामों में उनकी मदद करना, उनके परिवारों की देखभाल करना, जेल में शिविर चलाकर उन्हें शिक्षित और सुसंस्कृत करना, जेल से छूटने के बाद उनके पुर्नवास की व्यवस्था करना आदि। अप्रैल, 1972 और उसके बाद कुल 654 बागियों ने आत्मसमर्पण किया।

जे.पी. ने महसूस किया कि इन बागियों का दिल निर्मल है और अन्य अपराधियों से इनकी मानसिकता भिन्न है। इनमें ज्यादातर किसी न किसी अन्याय के शिकार हैं और किसी निराशा या कुंठा में इन्होंने यह रास्ता अपना लिया। जे.पी. यह भी कहते थे कि विनोबा के इस काम को आगे बढ़ाने में वे ईश्वर की असीम अनुकंपा के कारण ही निमित्त बने हैं।

उद्धरण

1. जोशी, प्रभाष; मिश्र,अनुपम; गर्ग, श्रवण कुमार : चम्बल की बंदूकें : गांधी के चरणों में (गांधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली), 1973, पृ. 18-9
2. वही, पृ. 22
3. जयप्रकाश, पृ. 436
4. वही, पृ. 437
5. वही, पृ. 437

प्रभावती का निधन

बंगलादेश के प्रश्न पर विश्व जनमत तैयार करने के लिए कई देशों की यात्रा करके जे. पी. जून, 1971 में स्वदेश वापस लौटे। लौटने के बाद विनोबा से मिलने पवनार गये और फिर वहां से मुसहरी पहुंचे। वहां पहुंचने के कुछ ही समय बाद वे बीमार पड़ गये। उन्हें प्रभावती जी की चिंता सताने लगी कि उनके बाद उन्हें कौन देखेगा, किंतु प्रभावती जी ने आत्मविश्वास के साथ जबाव दिया, "मैं आपसे पहले जानेवाली हूं।"

प्रभावती जी को कैंसर

हुआ भी कुछ ऐसा ही। प्रभावती जी को काफी लंबे अरसे से रक्तस्राव की तकलीफ थी। उनका कष्ट बढ़ता गया और उन्हें जांच के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नयी दिल्ली ले जाया गया। डाक्टरों को कैंसर का संदेह हुआ इसलिए उन्हें बंबई ले जाया गया। प्रभावती जी ने 19 अगस्त, 1971 की अपनी डायरी में लिखा, "मेरी बीमारी से जे. पी. बहुत चिंतित थे। लेटे तो चुप थे। शायद आंखों से आंसू भी निकले।" बंबई में काफी जांच के बाद भी यह निश्चित नहीं हो पाया कि उन्हें कैंसर ही है।

11 अक्तूबर, 1971 को जे. पी. ने अपने जीवन के 69 वर्ष पूरे किये। उस समय उन्होंने एक वक्तव्य जारी किया कि सत्तर वर्ष पूरे होने पर एक साल के लिए वे सार्वजनिक जीवन से अपने को हटाकर एकांतवास करेंगे। उस समय यह निश्चित नहीं था कि एक वर्ष के एकांतवास के बाद क्या करेंगे।

उनका अपना स्वास्थ्य तो उन दिनों ठीक नहीं ही था, प्रभावती जी की बीमारी की चिंता से उनका स्वास्थ्य और भी खराब हो गया। 16 नवंबर, 1971 को उन्हें मुजफ्फरपुर में दिल का दौरा पड़ा और उन्हें दिल्ली के एक अस्पताल में भर्ती कराया गया। 28 फरवरी, 972 को उन्हें अस्पताल से छोड़ा गया।

इस बीच जे. पी. और प्रभावती जी दोनों दादाजी के नाम से विख्यात अमित राय चौधरी के संपर्क में आये और उनके चमत्कारों से बेहद प्रभावित हुए। प्रभावती जी का एल्युमीनियम का लॉकेट दादाजी के हाथ में आते ही चांदी में परिवर्तित हो गया। खाली हाथ में दादाजी अचानक घड़ी ले आये। जे. पी. के बहनोई के यहां दादाजी ने पूजा की और पूरा घर सुगंधित हो गया। नारियल का पानी दूध में बदल गया। जे. पी. ने जब

उनसे इस सबका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि सब कुछ ईश्वर करता है। जे. पी. के लिए यह अनुभव बहुत महत्वपूर्ण था। वे पहले से भी अध्यात्म की ओर तो अग्रसर हो ही रहे थे, इन घटनाओं को देखने के बाद एक अदृश्य शक्ति में उनका विश्वास और भी गहन होने लगा। उन्होंने एक लेख लिखा "सत्य का शोध" जिसमें उन्होंने इन बातों की व्याख्या की।

27 मार्च, 1972 को दिल्ली में वे प्रभावती जी के साथ सत् श्री साईं बाबा से मिले। उनसे भी वे दोनों बहुत प्रभावित हुए। बाबा ने कहा कि प्रेम, सेवा और सत्य ही भगवान है। उन्होंने जे. पी. को एक अंगूठी भी दी जिसे उन्होंने कुछ दिनों तक पहना भी। किंतु बाद में उसे खोल दिया। इस बारे में जे. पी. ने प्रभावती जी से कहा कि बीमारी के दिनों में शायद मेरे मन में कुछ कमजोरी आ गयी थी, जिसके कारण मैंने स्वीकार किया। लेकिन इन झंझटों में नहीं पड़ना चाहिए।

11 अक्तूबर, 1972 को 70 वर्ष पूरे करने के बाद पूर्व घोषित कार्यक्रम के अनुसार एकांतवास के लिए जे. पी. अपने गांव सिताब दियारा पहुंचे। दो-तीन सप्ताह के बाद उनके बांये हाथ में कारबंकल हो गया और आपरेशन के लिए उन्हें वाराणसी जाना पड़ा। वहां उनके घाव का आपरेशन हुआ। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल अकबर अली खान उनके आपरेशन के वक्त शुरू से अंत तक अस्पताल में मौजूद रहे।

जे. पी. के आपरेशन के एक-दो दिन बाद प्रभावती जी ने वहीं एक स्त्री रोग विशेषज्ञ से अपनी जांच करवाई। जे. पी. को चिंता मुक्त रखने के लिए प्रभावती जी ने अपनी स्थिति के बारे में पिछले एक वर्ष से जे. पी. को कुछ नहीं बताया था। वहां बायप्सी के बाद कैंसर पता चला। नवंबर के अंत में जे. पी. उन्हें लेकर बंबई पहुंचे और टाटा अस्पताल में जांच की गयी तो पता चला कि गर्भाशय का कैंसर है। 4 दिसंबर, 1972 को अस्पताल के निदेशक डा. पेमास्टर ने प्रभावती जी का आपरेशन किया। दो सप्ताह के बाद उन्हें छुट्टी दे दी गयी। वहां से वे अपने भाई एस. एन. प्रसाद के पास कलकत्ता गयीं और कलकत्ता से पटना पहुंचीं। पटना में पी. एम. सी. एच. में उनका इलाज चलता रहा। स्थिति फिर बिगड़ने लगी और उन्हें दोबारा बंबई ले जाया गया। वहां पता चला कि कैंसर पेट में फैल चुका है और उसका कोई इलाज नहीं है। पुनः दिल्ली होते हुए उन्हें पटना लाया गया।

प्रभावती जी को विश्वास हो गया था कि उनके दिन गिने हुए हैं, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। जब जे. पी. ने पहली बार उन्हें कैंसर के बारे में बताया तो मुश्किल से एक क्षण के लिए उन्हें चिंता हुई, किंतु उसके बाद वे लगातार जे. पी. को ही ढाढ़स देती रहीं। जे. पी. ने उनसे कैंसर के बारे में इसलिए बता दिया क्योंकि कभी कुछ उनसे छुपाया नहीं था। कैंसर की तीव्र पीड़ा को झेलते हुए भी वह सामान्य रहीं। 10 अप्रैल

की अपनी डायरी में उन्होंने लिखा है, "आज दोपहर को जब मेरी पीठ और कमर में जोर का दर्द हुआ, तब मन जरा बेचैन हुआ और घबरा गयी, और मैं बोलने लगी : भगवान, इतना कष्ट क्यों दे रहे हैं? मुझे जल्दी बुला लें। फिर एक क्षण में ही ऐसा ख्याल आया, इसमें अपना क्या वश है? जैसी ईश्वर की इच्छा होगी, करेंगे। घबराने से क्या होगा? ... आनंद सिनेमा देखा था। उस समय से मेरे मन पर उसका बहुत असर पड़ा। आनंद अपनी बीमारी जानता था कि जल्दी मरने वाला है। फिर भी बराबर प्रसन्न रहता था, और सबको हंसाता था। मृत्यु के बाद भी भजन सुनता रहा। ईश्वर ऐसी शक्ति सबको दें। मुझे जे. पी. की चिंता है कि मेरी बीमारी से वे बहुत चिंतित हैं और घबरा गये हैं। ऊपर से मालूम नहीं पड़ता।"[1]

प्रभावती जी की इच्छा थी कि जे. पी. के छोटे भाई राजाबाबू के लड़के अनिल की शादी अपने सामने करवायें। शादी की तिथि 17 अप्रैल निश्चित हुई, परंतु उनकी बिगड़ती स्थिति को देखते हुए अंतिम वक्त में विवाह की तिथि 15 अप्रैल कर दी गयी। उस स्थिति में भी प्रभावती जी ने विवाह की पूरी व्यवस्था स्वयं की, विधि-विधान, रस्म-रिवाज, गीत-नाद सब करवाया। किंतु नियति को यह मंजूर नहीं था कि वे विवाह देख सकें।

14 अप्रैल की रात में उनकी स्थिति में काफी गिरावट हुई। जे. पी. ने उनसे सभी चिंताएं छोड़कर राम नाम लेने को कहा। उन्होंने भी जे. पी. को साथ साथ राम नाम लेने को कहा। 15 अप्रैल की सुबह में एक उल्टी हुई और पौने नौ बजे सवेरे वे इस दुनिया से कूच कर गयीं। इस तरह 52 वर्षों के साहचर्य के बाद 67 वर्ष की उम्र में वे जे. पी. को छोड़कर विदा हो गयीं। जे. पी. ने सब को कमरे से निकाल दिया और 15-20 मिनट अकेले शव के पास रहे।

प्रभावती की इच्छा को देखते हुए अनिल की शादी रोकी नहीं गयी। उनका शव पड़ा रहा और शादी सम्पन्न हुई। शादी के बाद वर-वधू ने आकर उनका चरण स्पर्श किया।

शाम में उन्हें बांसघाट ले जाने के लिए अर्थी तैयार हो गयी। जे. पी. उनके माथे को पकड़कर कुछ देर खामोश रहे, फिर बोले, "अब तू जा"। शव-यात्रा में सैकड़ों लोगों ने हिस्सा लिया जिनमें नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री बी. पी. कोइराला, हिंदी के मूर्धन्य कवि रामधारी सिंह दिनकर, बिहार सरकार के कई मंत्री और गांधीवादी कार्यकर्ता शामिल थे। बांसघाट पर रामधुन के बीच में जे. पी. ने उनकी चिता को अग्नि दी और कुछ घंटों में उनका शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया। उनकी मृत्यु पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी सहित विश्व के कोने कोने से संवेदना संदेश आये। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने अपने शोक संदेश में कहा कि उन्होंने उन सब को प्रेरित किया जिन्होंने उनके साथ काम किया। विनोबा ने कहा कि एक पवित्र जीवन की समाप्ति हुई।

विरह-वेदना से मन में वैराग्य-भाव

प्रभावती जी के निधन से जे. पी. पूरी तरह टूट गये। दिनकर जी के शब्दों में जे. पी. विधुर नहीं बल्कि अनाथ हो गये। वे प्रभावती जी की मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे और बराबर रोते रहते थे। उनसे मिलने वाले लोगों को भी ऐसा लगता था कि विरह-वेदना ने उनके अंदर वैराग्य-भाव पैदा कर दिया है। उन्होंने एलेन एंडी वेंडी स्कार्फ को पत्र लिखा कि उनकी जिजीविषा समाप्त हो गयी है।[8] उनका स्वास्थ्य भी गड़बड़ रहने लगा और 15 दिनों के लिए उन्हें बंबई के एक अस्पताल में भी भर्ती होना पड़ा।

धीरे धीरे जे. पी. का रुझान तो अध्यात्म की ओर बढ़ ही रहा था, प्रभावती जी की मृत्यु के बाद वे और भी आस्तिक हो गये। एक बार एस. एम. जोशी के साथ वे ट्रेन में सफर कर रहे थे। रात में अचानक एस. एम. जोशी की नींद खुली तो उन्होंने देखा कि जे. पी. रामचरितमानस पढ़ रहे हैं। उन्होंने पूछा, ''जे. पी., आप कब से ये सब पढ़ने लगे?''

जे. पी. ने कहा, ''मैंने प्रभा को वचन दिया था कि तू जो रामायण, गीता, हनुमान चालीसा, विष्णु सहस्रनाम आदि का पाठ करती है मैं उसे जारी रखूंगा।''

जीवन के अंतिम वर्षों में जे. पी. बहुत धार्मिक हो गये, खुद तो गीता-रामायण का पाठ करते ही थे, भजन सुनना भी पसंद करते थे। वे बराबर राम प्रसाद बिस्मिल की ये पंक्तियां गुनगुनाते रहते थे :

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूं न मेरी आरजू रहे।

इन पंक्तियों को एक फ्रेम में मढ़वाकर उन्होंने अपने कमरे में टांग दिया था जो आज भी वहां देखी जा सकती हैं।

कमला नेहरू के पत्र इंदिरा गांधी को वापस किये

प्रभावती जी ने अपना सभी सामान बड़े करीने से दो बक्सों में सहेज कर रखा था जिनमें उनकी शादी के कपड़े, सिंदूरदानी, फोटो, व्यक्तिगत पत्र एवं अन्य सामान थे। उनकी मृत्यु के कुछ दिनों बाद जे. पी. ने उन बक्सों से उनके पत्र निकाल लिये। उन पत्रों में जे. पी. द्वारा अमेरिका से प्रभावती जी को लिखे गये प्रेम-पत्र तथा कमला नेहरू द्वारा लिखे गये आत्मीय पत्र भी शामिल थे। जे. पी. स्वयं द्वारा लिखे पत्रों को पढ़ पढ़ कर एक के बाद एक कर फाड़ने लगे।

जगदीश सिंह ने जब जे. पी. को चिट्ठियां फाड़ते हुए देखा तो उन्होंने डा. रजी अहमद को फोन कर इस बारे में बताया। यह सूचना मिलते ही रजी साहब वहां गये और दोनों बक्से ले आये। उसमें कमला नेहरू की 16 चिट्ठियां सुरक्षित मिल गयीं जो उन्होंने प्रभावती

जी को लिखी थीं। उसमें जे. पी. के कुछ महत्वपूर्ण फोटो भी थे जिन्हें रजी साहब ने नयी दिल्ली के नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एंड लाइब्रेरी में रखवा दिया। वहां के मुख्य लाइब्रेरियन धर्मवीर से उनकी व्यक्तिगत मित्रता थी, इसलिए धर्मवीर के माध्यम से ऐसा हो पाया और वे फोटो सुरक्षित रह गये।

उन दिनों प्रभा स्मृति के प्रकाशन की तैयार चल रही थी और उसके लिए कमला नेहरू के पत्रों की आवश्यकता थी। वे पत्र बहुत ही आत्मीय और व्यक्तिगत थे और उनसे प्रभावती जी एवं कमला जी के संबंधों की गहराई का पता चलता है। कोई भी चिट्ठी चार पृष्ठों से कम की नहीं थी और उसमें कुछ ऐसी बातें थी कि उन्हें प्रकाशित करना जे. पी. को उचित नहीं लगा। जब प्रभा स्मृति के लिए उन चिट्ठियों की मांग की गयी तो जे. पी. ने कहा कि यदि इंदू (इंदिरा गांधी) अनुमति देगी तभी उन्हें प्रकाशित किया जायेगा।

जे. पी. ने रजी अहमद से उन सभी पत्रों के साथ वाराणसी आने को कहा। वे स्वयं छपरा होकर वाराणसी जाने वाले थे, किंतु उन्होंने अपने पास पत्र नहीं रखे क्योंकि उन्हें कई जगह जाना था जिससे उन पत्रों के खो जाने का डर था। वाराणसी से पत्र लेकर वे दिल्ली गये और वहां इंदिरा गांधी से मिलकर उन्हें सारे पत्र सौंप दिये। जे. पी. की इस उदारता से श्रीमती गांधी बहुत प्रभावित हुईं और भावुक होकर उन्होंने कहा, "यू अलोन कुड डू दिस" (अकेले आप ही ऐसा कर सकते थे)। उस समय तक जे. पी. और इंदिरा गांधी के बीच मतभेद सार्वजनिक रूप से उभर चुके थे, फिर भी जे.पी. ने ऐसी मर्यादा दिखायी।[3]

उद्धरण

1. जयप्रकाश, पृ. 443
2. स्कार्फ, एलेन एंड वेंडी : जे.पी. : हिज बायोग्राफी पृ. 416
3. श्री सच्चिदानंद एवं डा. रजी अहमद के साथ बातचीत पर आधारित

1974 के बिहार आंदोलन का नेतृत्व

मार्च, 1974 में बिहार के छात्रों ने कुछ सार्वजनिक प्रश्नों को लेकर आंदोलन शुरू किया। कुछ दिनों बाद उसका नेतृत्व जे. पी. ने संभाल लिया तथा धीरे धीरे वह आंदोलन पूरे देश में फैल गया और जयप्रकाश-आंदोलन के रूप में जाना जाने लगा।

सन् 1974 में छात्र-आंदोलन की शुरुआत कोई आकस्मिक घटना नहीं थी और न ही जे. पी. का उससे जुड़ना आश्चर्यजनक था। आंदोलन की पृष्ठभूमि पर गौर करने पर पता चलेगा कि बिहार में बहुत पहले से छात्र-आंदोलन का वातावरण तैयार हो रहा था। जहां तक जे. पी. का प्रश्न है, पहले के अध्यायों में चर्चा की जा चुकी है कि सर्वोदय आंदोलन में जीवनदान करने के बावजूद वे समसामयिक परिस्थिति के प्रति कभी निर्विकार नहीं हुए, हालांकि कुछ लोग ऐसा ही समझते हैं।

सन् 1968 में शेख अब्दुल्ला पटना आये और जे. पी. से मिलने उनके निवास पर गये। वहां शेख अब्दुल्ला ने कई लोगों की उपस्थिति में कहा, "हिंदुस्तान की किश्ती भंवर में फंसी है और जे. पी. किनारे में खड़े होकर तमाशा देख रहे हैं। इस किश्ती को यदि कोई बचा सकता है तो जे. पी. ही बचा सकते हैं। मैं तो उनसे कहूंगा कि वे या तो नाव के साथ डूब जायें या उसे किनारे ले आयें।"

जे. पी. ने जवाब दिया, "मैं किनारे खड़े होकर तमाशा नहीं देख रहा हूं। मैं राजनीति के कुएं में फिर से नहीं उतर सकता, लेकिन मैं जनता के समुद्र में डुबकियां लगा रहा हूं।"

सन् 1960 के दशक में जे. पी. को लगने लगा कि कांग्रेस सरकार जनता की आकांक्षा पर खरी नहीं उतर रही है। सन् 1967 के आम चुनाव के पहले उन्होंने वक्तव्य दिया कि यदि कांग्रेस कुछ राज्यों में हार जाती है तो यह लोकतंत्र के हित में होगा। उन्होंने महसूस किया कि सत्तारूढ़ पार्टी को एक झटका लगना चाहिए।[1]

छात्रों से जे. पी. को आशा

सन् 1967 में बिहार के छात्रों ने पहली बार सक्रिय रूप से चुनाव प्रचार में हिस्सा लिया और कांग्रेस के खिलाफ प्रचार किया। बिहार विधान सभा की 318 सीटों में कांग्रेस के प्रत्याशी 128 स्थानों पर विजयी हुए जबकि विपक्षी दलों को एक साथ मिलाकर 178

सीटें प्राप्त हुईं। 12 निर्दलीय उम्मीदवार भी जीतकर आये। 5 मार्च, 1967 को पहली बार महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। सन् 1967 से 1970 तक अस्थायित्व का दौर चला जिस बीच कई मिली जुली सरकारें आयीं। इस दौरान दलबदल भी व्यापक पैमाने पर हुआ।

सन् 1972 के विधान सभा चुनाव में बिहार में कांग्रेस (आई) 167 सीटें जीतकर स्पष्ट बहुमत में आ गयी। 19 मार्च, 1972 को केदार पांडेय शक्ति परीक्षण में हार गये और अब्दुल गफूर मुख्यमंत्री बन गये। सत्तर के दशक में आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में बहुत वृद्धि हो गयी और आम आदमी महंगाई के बोझ से दब गया। जे. पी. ने आर्थिक संकट के लिए सरकार एवं भ्रष्ट पदाधिकारियों को जिम्मेदार माना। वे उस समय की परिस्थिति से काफी चिंतित थे और उनके दिल में यह बात बैठी थी कि युवा छात्र ही देश को इस संकट से बाहर निकाल सकते हैं।

जे. पी. को सन् 1968 में फ्रांस में हुई छात्र-क्रांति से प्रेरणा मिली। फ्रांसीसी छात्रों ने मांग की थी-'पावर एट वर्क प्लेस' यानी सत्ता काम करने की जगह पर होनी चाहिए। जे. पी. ने उन छात्रों का समर्थन किया कि वे लोग महात्मा गांधी आदर्शों को अपना रहे हैं। बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में दुनिया के कई देशों में छात्र-आंदोलन के कारण वहां की सरकारें गिर गयीं। उदाहरण के लिए सन् 1958 में विनेजुएला में मार्कोस पेरेज जिमेनेज, सन् 1960 में जापान में नोबुसुके किशि, टर्की में अदनान मेंदेरस एवं दक्षिण कोरिया में सिंगमन री, सन् 1963 में दक्षिण वियतनाम में एन. डी. दियान, सन् 1964 में बोलिविया में विक्टर पाज एस्टेनसोरो, सूडान में इब्राहिम अबाउंद तथा सन् 1966 में इंडोनेशिया में सुकार्णो को छात्र-आंदोलनों के कारण सत्ताच्युत होना पड़ा।

युवकों के नाम अपील

उनके मन में भी छटपटाहट थी कि देश में हो रही गिरावट को युवा-शक्ति की मदद से रोका जाये। दिसंबर, 1973 में जे. पी. विनोबा से मिलने पवनार गये। देश की वर्तमान परिस्थिति को लेकर वे चिंतित थे। उन दिनों उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव होने वाले थे। वे महसूस कर रहे थे कि लोकतांत्रिक मूल्यों में ह्रास हो रहा है जिसे रोकना आवश्यक है इसके लिए उन्होंने युवकों को प्रेरित करने का सोचा और इसी उद्देश्य से देश के युवकों के नाम एक अपील 'यूथ फॉर डिमाक्रेसी' (लोकतंत्र के लिए युवा) शीर्षक से जारी कीः

''प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 'वर्ल्ड यूनियन पार्लियामेंट ऑफ यूथ' के नाम संदेश भेजते हुए कहा है, 'एक नयी शक्ति का अवतरण हो रहा है-युवा शक्ति का। सारी दुनिया के युवकों के मन में बेचैनी है और वे एक या दूसरे प्रकार का विरोध करने में जुट गये हैं।... ऐसा बहुत कुछ है जिससे बेचैनी हो और प्रतिकार करना पड़ जाये।'

"हमारे देश के नौजवानों के लिए भी विरोध करने लायक बहुत कुछ है। आजकल शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थियों के विविध प्रकार के विरोधों के दृश्य देखने को मिलते हैं। ... अवश्य ही आज शिक्षा क्रांतिकारी परिवर्तन करने का प्रश्न महत्वपूर्ण है। लेकिन मैं जिन कारणों से यह अपील कर रहा हूं, उनके मूल में इससे भी गहरी और बुनियादी समस्याएं छिपी पड़ी हैं। उनमें एक समस्या लोकतंत्र की है। लोकतंत्र का मतलब यह होना चाहिए कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में हाथ बंटाने का सबसे अधिक अवसर लोगों को मिलना चाहिए।

"दुर्भाग्यवश नागरिक जीवन की इस पहली शर्त पर आज कई दिशाओं से भय मंडराने लगा है। सबसे अधिक और गंभीर भय चुनावों की प्रक्रिया के दूषित हो जाने के कारण उत्पन्न हुआ है।...

"जब लोकतंत्र की प्रक्रिया के जन्मकाल में ही उसका गला घोंटा जा रहा हो, क्या ऐसे समय में हमारा युवक वर्ग आलसी की तरह सिर्फ देखता ही रहेगा? आज और इस घड़ी सक्रिय बनकर कार्यवाही करने का समय आ गया है। युवकों को स्वयं ही निश्चित करना है कि उनकी इस कार्यवाही का स्वरूप क्या हो। मेरी सिफारिश सिर्फ इतनी ही है कि लोकतंत्र की आत्मा और इसके मर्म के अनुरूप उनका व्यवहार पूरी तरह शांतिपूर्ण और निष्पक्ष होना चाहिए।...

"दुनिया के कई देशों में विद्यार्थियों ने अपने देश की भाग्यरेखा को बदलने में निर्णायक रूप से हाथ बंटाया है। भारत में भी यहां के राष्ट्रीय रंगमंच पर अपना निर्णायक पार्ट अदा करके नौजवानों की शक्ति को लोगों की सर्वोपरिता की स्थापना करनी चाहिए और पैसा, झूठ और पशुबल के बोलबाले पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। इसके लिए घड़ी पक चुकी है।"[2]

गुजरात में आह्वान

जे. पी. ने यह अपील जारी करने के पहले विनोबा को दिखायी थी और उन्होंने भी इन बातों में सहमति जताई थी। इसके कुछ दिनों बाद गुजरात में व्यापक पैमाने पर छात्र आंदोलन शुरू हो गया। वहां के सर्वोदयी एवं अन्य कार्यकर्ताओं का एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली जाकर जे. पी. से मिला और उनसे गुजरात आने का आग्रह किया। वह तुरंत गुजरात गये। 13 फरवरी को साबरमती आश्रम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में उन्होंने कहा, "यह एक ऐतिहासिक अवसर है। उसको आपने या मैंने पैदा नहीं किया, परिस्थिति ने पैदा किया है। जो परिस्थिति आज सारे देश में फैली हुई है, उसने गुजरात में इस प्रकार का रूप लिया। अन्यत्र उसका दूसरा भी स्वरूप हो सकता है। आज परिस्थिति का तकाजा है। एक क्रांतिकारी परिस्थिति है, उसमें एक मांग है—परिवर्तन की। मैं स्वास्थ्य के कारण लाचार हूं। दिल में हिम्मत है, लेकिन नाजुक स्वास्थ्य के कारण हिचकता हूं। वरना विद्यार्थियों

का आह्वान करता कि एक वर्ष के लिए कालेज छोड़कर निकल पड़ो। चलो हमारे साथ। इस देश में हम लोकतंत्र का एक नया ढांचा खड़ा करें।"[3]

14 फरवरी को गुजरात विश्वविद्यालय के छात्रों की सभा में भी उन्होंने युवकों का आह्वान किया कि वे देश की मौजूदा चुनौतियों को स्वीकार कर संघर्ष छेड़ें। अहमदाबाद में वे चार दिन रहे और कई जगह उनके भाषण हुए। इन भाषणों में उन्होंने देश की वर्तमान राजनीति, चुनाव पद्धति, आर्थिक नीति, भ्रष्टाचार एवं बेरोजगार जैसे मुद्दों पर करारी चोट की। उन भाषणों में जे. पी. हरिवंश राय बच्चन की एक पंक्ति बराबर उद्धृत करते थे; "आज लहरों में निमंत्रण, तीर पर कैसे रुकूं मैं?" इसी से यह प्रमाणित हो जाता है कि जे. पी. नदी किनारे खड़े होकर देश की किश्ती को डूबते नहीं देख सकते थे, जैसा कि सन् 1968 में शेख अब्दुल्ला को उन्होंने जवाब दिया था। इन्हीं दिनों वे यह भी कहते थे कि देश में कोई व्यापक राजनीतिक परिवर्तन होने वाला है। इस तरह का आभास उन्हें हो रहा था।

नौजवानों ने गुजरात आंदोलन को नवनिर्माण आंदोलन का नाम दिया था। इसलिए उन्होंने नवयुवकों को सलाह दी कि चुनाव-पद्धति में सुधार आवश्यक है। इसलिए विधान सभा भंग होने के बाद जो चुनाव हो उसमें मतदाता-परिषद् और ग्राम सभा-प्रतिनिधि-परिषद् द्वारा लोक उम्मीदवार खड़े किये जायें जो किसी दल के नहीं हों। वह आंदोलन उतना फैल नहीं पाया, किंतु जे. पी. की नजर में उसका बहुत महत्व था क्योंकि पहली बार विद्यार्थियों ने अपने वर्ग की मांगों से अलग हटकर जनता के हित के लिये संघर्ष किया। इसके साथ ही स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पहली बार देश में लोक शक्ति के दबाव में राज्य सरकार का इस्तीफा और विधान सभा का विसर्जन हो पाया। इससे यह प्रमाणित हुआ कि राज्य-शक्ति से जन-शक्ति ऊपर है।

15 फरवरी को जे. पी. अहमदाबाद से दिल्ली लौटे और उसी दिन इंदिरा गांधी से भेंटकर उन्हें गुजरात की स्थिति से अवगत कराया। इंदिरा जी ने उनसे विरोधी दलों का सहयोग दिलवाने में मदद करने का अनुरोध किया। जे. पी. ने मदद करने का आश्वासन दिया लेकिन दूसरे दिन ही वे बीमार पड़ गये। तबीयत ठीक होते ही उन्होंने अटल बिहारी वाजपेयी को बुलाया और उनसे बातचीत की। 4 मार्च को उन्होंने इंदिरा जी को पत्र लिखकर बताया कि अटल जी से बातचीत अच्छी रही और उनकी प्रतिक्रिया भी सकारात्मक थी। उनसे पहले बात करने का कारण यह था कि जनसंघ का सहयोग ज्यादा महत्वपूर्ण है। उन्होंने आगे लिखा कि सोशलिस्ट मित्रों से भी बातचीत हुई है और मार्च के अंतिम सप्ताह में दिल्ली आऊंगा तो अन्य नेताओं से भी बात करूंगा। इसी पत्र के साथ उन्होंने अमृतलाल नागर का उपन्यास 'मानस का हंस' और अपनी पुस्तक 'मेरी विचार-यात्रा' के बारे में लिखा, "तुम समझती हो कि मेरे कुछ विचार अटपटे हैं, और मैं कभी कुछ और कभी

कुछ बोल दिया करता हूं। यदि तुम यह पुस्तक देख जाओगी तो तुम्हें मुझे समझने में मदद मिलेगी। हां, यदि तुम मुझे समझना चाहो तो।"

बिहार में छात्र-असंतोष

इधर बिहार में स्थिति विस्फोटक बनती जा रही थी। छात्रों के बीच असंतोष बढ़ता जा रहा था और अलग अलग मांगों को लेकर वे छोटे छोटे आंदोलन कर रहे थे। दिसंबर, 1973 में छात्रों ने राज्य पथ परिवहन निगम की दो बसों का अपहरण कर कर लिया और बाद में परिवहन अधिकारियों से उनकी भिड़ंत हो गयी। इसके बाद पटना विश्वविद्यालय के छात्रों और गैर-शिक्षण कर्मचारियों ने आनंदमार्गियों के साथ मिलकर पटना सचिवालय के समक्ष प्रदर्शन किया। उन्हें तितर-बितर करने के लिए पुलिस को 17 चक्र गोलियां चलानी पड़ीं।

7-8 जनवरी, 1974 को दिल्ली में छात्रसंघों के निर्वाचित प्रतिनिधियों का अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ। इसमें भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महंगाई, शिक्षा में आमूल परिवर्तन एवं विश्वविद्यालय प्रशासन में लोकतांत्रिक मूल्यों के निरंतर ह्रास के मुद्दों पर देशव्यापी आंदोलन शुरू करने की योजना बनायी गयी। सितंबर, 1973 में पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ के चुनाव में विद्यार्थी परिषद् तथा युवजन सभा ने मिलकर चुनाव में हिस्सा लिया। युवजन सभा की ओर से लालू प्रसाद अध्यक्ष पद के उम्मीदवार बने और विद्यार्थी परिषद् की ओर से सुशील कुमार मोदी महासचिव पद के लिए खड़े किए गये। युवजन सभा और विद्यार्थी परिषद् के उम्मीदवार निर्वाचित हुए।

पटना विश्वविद्यालय में जे. पी. का भाषण

22 जनवरी को पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ का उद्घाटन समारोह आयोजित किया गया। पत्रकार कुलदीप नय्यर ने उद्घाटन भाषण में छात्रों के राष्ट्रीय सरोकार और संघ की आवश्यकता पर अपने विचार रखे। इस समारोह में बिहार स्टूडेंट्स एसोसिएशन (बी. एस. ए.) के छात्रों ने तथा कथित रूप से उपद्रव किया। फिर छात्रसंघ के ही तत्वावधान में उसी दिन शाम को पटना विश्वविद्यालय के व्हीलर सीनेट हाल में 'लोकतंत्र के लिए युवा' विषय पर जे. पी. का भाषण हुआ। इस कार्यक्रम में उन लोगों ने फिर से व्यवधान उत्पन्न किया और दुखी होकर जे. पी. ने पंद्रह मिनट में ही अपना भाषण समाप्त कर दिया।

जे. पी. के इस भाषण के आयोजन के लिए भवेश चन्द्र प्रसाद ने सुशील कुमार मोदी को सलाह दी थी और तब सुशील मोदी ने जे. पी. को बोलने के लिए आमंत्रित किया। भवेश जी सर्वोदय एवं गांधी शांति प्रतिष्ठान से जुड़े थे और गांधी जे. पी. के विचारों को विश्वविद्यालय छात्रों के बीच ले जाने का काम करते थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं लेखक को बताया, सन् 1970 के आसपास वे छात्रों के बीच जाकर जे. पी. के बारे में बताते

थे। वे छात्रों को रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित जे.पी. की जीवनी दिखाकर जे.पी. के व्यक्तित्व से उन्हें अवगत कराते थे। गांधी जी के दर्शन का प्रचार करने के लिए उन्होंने सन् 1971 में पटना के राजेन्द्र नगर मोहल्ले में पाटलिपुत्र अहिंसा विद्यालय खोला था, जिसमें सप्ताह में एक दिन पढ़ाई होती थी। वहां पुस्तकालय एवं वाचनालय भी थे। जे.पी., दादा धर्माधिकारी एवं रामनन्दन मिश्र जैसे व्यक्ति वहां जाकर भाषण दिया करते थे। राम जतन सिन्हा, नरेन्द्र सिंह, वशिष्ठ नारायण सिंह तथा नितीश कुमार जैसे छात्र नेता भी उसके कार्यक्रमों में हिस्सा लेते थे। इस तरह जे.पी. छात्रों के संपर्क में थे।

22 जनवरी के बाद 1 फरवरी को जे.पी. का दूसरा कार्यक्रम पटना कालेज के प्रांगण में हुआ। अपने भाषण में उन्होंने गुजरात के नवनिर्माण आंदोलन की विस्तार से चर्चा की और कहा कि देश में फिर से सन् 1942 की स्थिति आ गयी है। इस भाषण के बाद जे.पी. पुनः शांत हो गये, लेकिन छात्रों ने अपनी गतिविधियां जारी रखीं। 3 फरवरी को मुजफ्फरपुर में छात्र नेताओं का सम्मेलन हुआ। 9 फरवरी को मुजफ्फरपुर में ही छात्रों ने मुनाफाखोरी के विरुद्ध अभियान शुरू किया।

छात्रों द्वारा आंदोलन का फैसला

17-18 फरवरी को पटना में पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ ने बिहार के सभी छात्र संघों और छात्र संगठनों का सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन लाइब्रेरी हाल में हुआ। इसमें राज्य भर के 70 महाविद्यालयों के लगभग 250 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। पटना से प्रकाशित होने वाले दैनिक "प्रदीप" के संपादक श्री राम सिंह भारतीय ने सम्मेलन का उद्घाटन किया और इसके मुख्य अतिथि थे पटना विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डाक्टर योगेन्द्र नाथ शर्मा।

सम्मेलन में निश्चित हुआ कि छात्रों की ओर से 8 सूत्री मांगें सरकार के समक्ष रखी जायें और इनके लिए संघर्ष किया जाये। ये मांगें थीं—

1. बिहार में सभी विश्वविद्यालयों और कालेजों में छात्र संघों का गठन हो और उसकी सदस्यता अनिवार्य हो।
2. शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाने के लिए उसमें आमूल परिवर्तन किया जाये।
3. शिक्षित बेरोजगार युवकों को अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए राष्ट्रीयकृत बैंकों से ऋण दिये जाने का प्रावधान हो।
4. शिक्षित बेरोजगारों के लिए रोजगार की व्यवस्था या बेरोजगारी भत्ते का प्रावधान हो।
5. महंगाई पर तुरंत रोक लगे, कालाबाजारी एवं जमाखोरी के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाये तथा छात्रों को कम कीमत पर राशन, पुस्तकें एवं अन्य स्टेशनरी सामग्री मुहैया की जाये।

6. बिहार के सभी कालेजों में छात्रावास की व्यवस्था हो।
7. छात्रवृत्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो और मूल्य सूचकांक के अनुरूप उनकी राशि बढ़ायी जाये।
8. सिनेट, सिंडिकेट तथा अकादमिक काउंसिल में छात्रों का प्रतिनिधित्व हो।

18 फरवरी को सम्मेलन में वारसा संधि की निंदा की गयी। इसके विरोध में वामपंथी छात्रों ने सम्मेलन का बहिष्कार किया। छात्र दो वर्गों में विभक्त हो गये। गैर-साम्यवादी छात्र संगठनों ने 'बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति' के गठन की घोषणा की। वामपंथियों ने 'बिहार राज्य छात्र नौजवान मोर्चा' का गठन किया। दोनों गुटों ने अलग अलग काम करना शुरू किया। बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति ने फैसला किया कि इश्तहारों, पैम्फलेटों और नुक्कड़ सभाओं के माध्यम से वह लोगों को अपनी मांगों से अवगत करायेगा। आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए एक बारह सदस्यीय समिति गठित की गयी। इसके सदस्य थे—लालू प्रसाद (अध्यक्ष, पटना वि.वि. छात्र संघ), सुशील कुमार मोदी (महासचिव, पटना वि.वि. छात्र संघ), राम जतन सिन्हा (पूर्व अध्यक्ष, पटना वि.वि. छात्र संघ), नरेन्द्र सिंह, पूर्व महासचिव, प. वि.वि. छात्र संघ, राम बहादुर राय (विद्यार्थी परिषद्), विक्रम कुंवर (भारतीय युवा मोर्चा), मिथिलेश कुमार सिंह (युवा संगठन कांग्रेस), उदय नारायण सिन्हा (आयुर्वेदिक महाविद्यालय), रघुवंश नारायण सिंह, वशिष्ठ नारायण सिंह, नितीश कुमार एवं भवेश चन्द्र प्रसाद इस समिति के संयोजक बनाये गये। बाद में कुछ और लोग इसमें शामिल हो गये। बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति ने अपनी संयुक्त अपील में जे.पी. से अनुरोध किया कि वे छात्रों की संघर्ष में मदद करें।[4]

बाद में बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति ने 18 मार्च को विधान सभा का घेराव करने का निर्णय लिया। इसे देखते हुए बिहार राज्य छात्र नौजवान मोर्चा ने 16 मार्च को बिहार के विभिन्न हिस्सों में रैलियां आयोजित कीं। इसमें बेतिया और बाढ़ में पुलिस ने कई चक्र गोलियां चलायीं। जिसमें तीन व्यक्ति मारे गये और दस घायल हो गये। 17 मार्च तक बेतिया में मृतकों की संख्या 7 हो गयी। बिहार राज्य छात्र संघर्ष समिति के 18 मार्च के प्रस्तावित विधान सभा घेराव के लिए सर्वोदय मंडल का समर्थन प्राप्त करने भवेश चन्द्र प्रसाद 17 मार्च को त्रिपुरारी शरण से मिले। त्रिपुरारी जी ने इस शर्त पर समर्थन देने का वायदा किया कि आंदोलन शांतिपूर्ण रहेगा।

विधानसभा के समक्ष छात्रों का प्रदर्शन—जे.पी. से नेतृत्व स्वीकारने का अनुरोध

18 मार्च को मात्र चार-पांच सौ विद्यार्थी पटना विश्वविद्यालय से विधान सभा का घेराव करने के लिए जुलूस लेकर निकले। भवेश जी ने बताया कि उन लोगों को कल्पना नहीं थी कि ज्यादा लोग इस जुलूस में शामिल होंगे, किंतु स्टेशन पहुंचते ही हजारों विद्यार्थी

उसमें शामिल हो गये जो आरा, बक्सर, गया, भागलपुर आदि स्थानों से आये थे। अपनी बारह सूत्री मांगों के समर्थन में प्रदर्शनकारी छात्रों ने विधान सभा के सामने राज्यपाल के मार्ग में धरना दिया और उन्हें भाषण नहीं करने दिया। पुलिस और छात्रों के बीच चार-पांच घंटे तक झड़प हुई। पुलिस ने आंसू गैस के गोले छोड़े, लाठी चार्ज किया और फिर गोलियां चलायीं जिसमें कई छात्र मारे गये। शहर में व्यापक स्तर पर हिंसा और आगजनी की घटनाएं हुईं, होटलों और समाचार पत्रों के कार्यालयों पर हमले किये गये। इसमें प्रदीप-सर्चलाईट प्रेस तो पूरी तरह जल गया। अभी छात्र वहां से तितर-बितर हुए भी नहीं थे कि शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया। भागलपुर में भी स्थिति तनावपूर्ण हो गयी। बड़ी संख्या में छात्रों की गिरफ्तारी हुई।

शाम में भवेश जी, वशिष्ठ नारायण सिंह और रघुनाथ गुप्ता जे.पी. से मिलने गये। लेकिन वे लोग इतने सहमे हुए थे कि कुछ बोल नहीं पाये। तब जे.पी. ने उनसे कहा कि आप लोग कुछ और मित्रों के साथ कल मेरे पास आइए। 19 मार्च को पुनः वे लोग उनके पास गये। इस बार लालू प्रसाद, सुशील कुमार मोदी, नरेन्द्र सिंह, नितीश कुमार और राम बहादुर राय भी साथ गये। उन लोगों ने जे.पी. से आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार करने का आग्रह किया। लेकिन वे तैयार नहीं हुए। उन्होंने केवल इतना कहा, "ठीक है, मेरा नैतिक समर्थन रहेगा। मैं तो बूढ़ा हो चला, बीमार रहता हूं।"

19 मार्च को प्रांत के विभिन्न हिस्सों में हिंसा भड़की। पांच प्रमुख शहरों में कर्फ्यू लग गया और पुलिस की गोली से दस लोगों के मरने का समाचार फैला। राज्य के सभी स्कूल-कालेजों को सरकारी आदेश के तहत अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया गया। 20 तारीख को पटना, धनबाद और मुंगेर में 'शूट एट साइट' (देखते ही गोली मारने) का आदेश जारी किया गया। पुलिस गोली से पूरे राज्य में मरने वालों की संख्या 25 हो गयी। पटना में सीमा सुरक्षा बल और केंद्रीय रिजर्व पुलिस की टुकड़ियां तैनात कर दी गयीं। 18 मार्च की घटना के लिए लालू प्रसाद, सुशील कुमार मोदी और रविशंकर प्रसाद को मुख्य अभियुक्त बनाया गया और 21 मार्च को इन तीनों को गिरफ्तार कर लिया गया। इस बीच छात्रों ने पूरे राज्य में हर स्तर पर 'छात्र संघर्ष समिति' का गठन कर लिया। समिति ने 23 मार्च को बिहार बंद का आह्वान किया। उस समय सभी अखबार बंद थे। इसलिए बंद के बारे में ज्यादा लोगों को जानकारी नहीं थी, हालांकि आंदोलनकारी इसे सफल बनाने के लिए सक्रिय रूप से लगे थे। इसी बीच जे.पी. ने बंद से अपनी असहमति व्यक्त की। उनका मानना था कि इतने बड़े पैमाने पर हिंसा होने से जो आतंक का माहौल बना है उसमें बंद के आयोजन से और हिंसा भड़केगी। उनका वक्तव्य आकाशवाणी, पटना से प्रसारित हो गया और उसी से लोगों को प्रस्तावित बंद के बारे में पता चला। बंद काफी सफल रहा।

जे.पी. द्वारा पुलिस फायरिंग की निंदा

इस बीच छात्र नेता जे.पी. से मिलकर नेतृत्व स्वीकार करने का अनुरोध करते रहते थे। उन्होंने फिर इसे टाल दिया, किंतु एक वक्तव्य जारी कर पुलिस फायरिंग की निंदा की। उन्होंने कहा कि मुख्यमंत्री श्री अब्दुल गफूर को छात्रों से बात करनी चाहिए थी, और अभी भी करनी चाहिए। असामाजिक तत्वों ने होटलों और प्रेस में आग लगा दी और निर्दोष छात्र मारे गये जो निंदनीय है। वक्तव्य में उन्होंने आगे कहा, "पहले यह जरूरी है कि सरकार अपने तंत्र को दुरुस्त करे, भ्रष्ट मंत्रियों तथा अफसरों को बरखास्त करे, प्रशासन को चुस्त बनाए तथा कालाबाजारियों, जमाखोरों, मुनाफाखोरों से सख्ती से पेश आए, भुखमरी से राहत देने की व्यवस्था करे और छात्रों की समस्या को सहानुभूति से सुने तथा विचार विमर्श करके इनका समाधान निकाले।

"सरकार को यह जान लेना चाहिए कि (उसके रवैये से) अभी हर आदमी के दिल में हिंसा की आग सुलगने लगी है।...

"जहां तक मेरी बात है, मैं कुशासान, भ्रष्टाचार आदि के प्रति मौन तटस्थ दृष्टा बनकर नहीं रह सकता, चाहे वह दुःस्थितियां पटना में हों या दिल्ली में या और कहीं। देश की ऐसी दुर्दशा के लिए, कम से कम मैंने स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं लड़ी थी।..."[5]

इंदिरा गांधी द्वारा जे.पी. पर अप्रत्यक्ष प्रहार

31 मार्च को पुणे में भाषण करते हुए जे.पी. ने कहा कि जनतंत्र इंदिरा के हाथों खतरे में है। सोवियत अधिनायकवाद का आतंक यहां भी हो चला है। इसके जवाब में[1] अप्रैल को भुवनेश्वर में बोलते हुए श्रीमती गांधी ने कहा, "कांग्रेस वालों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये जाते हैं। अगर विरोधी पक्ष वाले लोग ऐसे आरोप लगाते हैं, तो मैं उन्हें समझ सकती हूं। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि अव सर्वोदय वाले भी ऐसे आरोप लगाने लगे हैं। धनवालों के साथ स्थायी संबंध रखने वाले और उनकी कृपा-दृष्टि चाहने वाले ऐसे लोग भ्रष्टाचार की बात करने की हिम्मत कैसे करते होंगे?"[6] फिर 3 अप्रैल को बिहार के सांसदों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि कुछ लोगों को एक ऊंचे नैतिक स्तर पर सलाह देते रहने की आदत होती है। हालांकि वे खुद तो बड़े उद्योगपतियों के वैभवपूर्ण अतिथि भवनों में ही रहते हैं। उनके यात्रा खर्च और दूसरे खर्च भी ये उद्योगपति ही दिया करते हैं।

श्रीमती गांधी ने इसमें किसी का नाम नहीं लिया, किंतु यह जे.पी. पर सीधा प्रहार था। अखबारों में भी यही प्रकाशित हुआ कि जयप्रकाश नारायण की ओर स्पष्ट इशारा करते हुए श्रीमती गांधी ने ये आरोप लगाये। ३ अप्रैल को ही जे.पी. ने इन आरोपों को 'नॉनसेंस' कहते हुए कहा कि इंदिरा जी मूर्खों के स्वर्ग में रह रही हैं। स्वयं द्वारा संपादित

पत्रिका 'एवरीमेन्स' में उन्होंने इसका विस्तृत ब्यौरा दिया कि वे अपना निजी खर्च किस तरह चलाते हैं। उन्होंने साफ लिखा कि जिस आदमी के पास आमदनी का कोई स्वतंत्र स्रोत नहीं होता, ऐसे पूरे समय के किसी भी सामाजिक कार्यकर्ता के लिये अपने मित्रों से आजीविका के लिए व्यापक आर्थिक सहायता लेना जरूरी है। वैसे, अगर इंदिरा जी का मापदंड माना जाये, तब तो गांधी जी सबसे अधिक भ्रष्टाचारी सिद्ध होंगे, क्योंकि उनका पूरे का पूरा खर्च उनके धनिक प्रशासकों की ही सहायता से चलता था। 9 अप्रैल, 1974 को पटना के गांधी मैदान में आम सभा में भी बोलते हुए उन्होंने अपने खर्च का हिसाब दिया कि उनके पिता के पास लगभग 105 एकड़ जमीन थी, जिसका आधा हिस्सा उन्हें मिला। इसमें अपने खर्चे के लिए करीबन 16 एकड़ भूमि जमीन रखकर बाकी उन्होंने बांट दी। उस जमीन से कुछ अनाज उन्हें मिल जाता था। इसके अलावा मैग्सेसे पुरस्कार की राशि बैंक में पड़ी थी जिससे लगभग चार सौ रुपये प्रतिमाह ब्याज के रूप में मिलते थे। उनके घर का फर्नीचर प्रो. ज्ञानचंद का दिया हुआ था। ज्ञानचंद जब पटना छोड़कर जाने लगे तो अपना सारा फर्नीचर जे.पी. को दे दिया। अंत में उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें मित्रों से सहायता मिलती है।

आंदोलन का विस्तार

इस बीच बिहार में छात्र संघर्ष समिति की ओर से आतंक के माहौल को खत्म करने के लिए तीन-तीन के समूह में कई स्थानों पर अनशन किया गया। 8 अप्रैल को पटना में मौन जुलूस निकालने की योजना बनायी गयी। और घोषणा की गयी कि जे.पी. इसका नेतृत्व करेंगे। 4 अप्रैल को आरा में पूर्व केंद्रीय मंत्री राम सुभग सिंह की पत्नी के नेतृत्व में महिलाओं का जुलूस निकला। 5 अप्रैल को पटना में महिलाओं का पहला विशाल मौन जुलूस निकला। 6 तारीख को भी महिलाओं ने करछुल, छोलनी, बेलन, झाडू आदि के साथ भ्रष्टाचार एवं महंगाई के विरोध तथा छात्रों की रिहाई के समर्थन में पटना की सड़कों पर प्रदर्शन किया।

7 अप्रैल को बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री अब्दुल गफूर ने जे.पी. से उनके निवास पर मुलाकात की। श्री गफूर ने उनसे इलाज के लिए उत्तर प्रदेश जाने के लिए राजकीय विमान उलब्ध कराने की पेशकश की। लेकिन जे.पी. ने उसे स्वीकार नहीं किया। उन दिनों उन्हें प्रोस्टेट की शिकायत रहती थी।

8 अप्रैल को पटना में मौन जुलूस निकालने का प्रस्ताव था। सर्वोदय मंडल ने जिला दंडाधिकारी से इसके लिए अनुमति मांगी, किंतु अनुमति नहीं दी गयी। जे.पी. ने कहा कि जब अनुमति इन्होंने नहीं दी तो हम कर्फ्यू तोड़ेंगे। 8 अप्रैल को विशाल मौन जुलूस निकला जिसमें छात्र, शिक्षक, वकील, साहित्यकार, सर्वोदयी कार्यकर्ता एवं अन्य लोग

शामिल हुए। सबके हाथ पीछे बंधे हुए थे, मुंह पर काली पट्टी लगी थी और तख्तियों पर लिखा था : क्षुब्ध हृदय है, बंद जुबान; हमला चाहे जैसा हो, हाथ हमारा नहीं उठेगा। मकान की छतों से लोगों ने जूलस पर पुष्प वृष्टि की। पूर्व मुख्यमंत्री महामाया प्रसाद सिन्हा ने अब्दुल गफूर से इस्तीफे की मांग की।

जे.पी. को 'लोकनायक' की उपाधि

9 अप्रैल को पटना के गांधी मैदान में एक जनसभा का आयोजन किया गया जिसमें विद्यार्थियों ने जे.पी. को 'लोकनायक' की उपाधि से विभूषित किया। सभा में जे.पी. ने कहा कि यह एक शांतिपूर्ण आंदोलन की शुरुआत है और इसके आगे हमें सत्याग्रही की भूमिका में काम करना होगा। एक सरकार के जाने और दूसरी के आने भर से काम नहीं चलेगा। हमें तो समाज की बीमारियों की जड़ में जाना है।

इतना सब होने के बावजूद जे.पी. ने अभी तक नेतृत्व स्वीकार नहीं किया था। घटनाओं का क्रम चलता रहा। 10 अप्रैल को श्रीमती चन्द्रशेखरन पटना आयीं और मुख्यमंत्री सहित 40 मंत्रियों का इस्तीफा आलाकमान को सौंपा गया। डा. राम सुभग सिंह ने इसे नाटक बताया। बाद में 18 अप्रैल को गफूर ने 14 सदस्यीय मंत्रिमंडल का गठन किया। 11 अप्रैल को उत्तर प्रदेश में 'जनतंत्र बचाओ दिवस' मनाया गया। उधर दिल्ली में अटल बिहारी वाजपेयी (जनसंघ), पीलू मोदी (स्वतंत्र पार्टी), श्यामनन्दन मिश्र (संगठन कांग्रेस), विश्वनाथन (द्रमुक), आदि नेताओं ने मधु लिमये के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बिहार आंदोलन को उचित बताया। छात्र संघर्ष समिति ने बिहार विधान सभा को भंग करने तथा इंदिरा सरकार से इस्तीफे की मांग की और देशव्यापी छात्र आंदोलन की तैयारी शुरू हो गयी।

जे.पी. ने आंदोलन का नेतृत्व स्वीकारा

जे.पी. ने स्पष्ट घोषणा की कि 'सत्ता की राजनीति से अलग रहूंगा।' आंदोलन आगे बढ़ता रहा। विभिन्न स्थानों पर विशाल रैलियां, मौन जुलूस, मशाल जुलूस, भैंसों का जुलूस, गधों का जुलूस आयोजित किये गये। 12 अप्रैल को गया में छात्रों के प्रदर्शन पर पुलिस ने तीन स्थानों पर गोलियां चलायीं जिसमें पांच मरे और 25 घायल हुए। जे.पी. ने तुरंत वहां जाकर पांच प्रतिष्ठित नागरिकों की जांच समिति का गठन किया। समिति ने बाद में अपनी रिपोर्ट में पुलिस फायरिंग को अनावश्यक और अनुचित बताया। राज्य सरकार ने एक अधिकारी को जांच के लिए वहां भेजा जिन्होंने एक दिन में ही रिपोर्ट दे दी कि फायरिंग उचित थी। जे.पी. तिलमिला उठे। उन्होंने लिखा कि यह सरकार झूठ और हिंसा के सहारे चल रही है। जिसकी एक ही ताकत है पुलिस, फौज और टैंक। उन्होंने कहा कि यह सरकार 'एंटी पीपुल' बन गयी है।

प्रजातंत्र को सुरक्षित रखने और सशक्त बनाने के लिए 14 अप्रैल को जे.पी. ने दिल्ली में 'जनतंत्र समाज' की स्थापना की। आचार्य कृपलानी ने भी देश की मौजूदा परिस्थिति की तुलना मुगल साम्राज्य के पतन के दिनों से की। जे.पी. की प्रोस्टेट की तकलीफ बढ़ गयी थी और उन्हें वेल्लोर जाकर उसका आपरेशन कराना था। 23 अप्रैल को वे पटना से वेल्लोर के लिए रवाना हुए। इसी दिन उन्होंने औपचारिक रूप से आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार किया। इस बारे में उन्होंने स्वयं कहा, "तरुणों से, छात्रों से बराबर कहता रहा हूं—जब पहला हमने आह्वान किया था, 'यूथ फार डेमोक्रेसी' (का), लोकतंत्र में युवकों का क्या रोल है, यह हमने जो बताया था, उसमें लिखा था और उसके बाद बराबर कहता रहा हूं, संचालन समिति में बहस करता रहा हूं—हम बूढ़े हो गये, हमारी सलाह लीजिए। हम दूसरी पीढ़ी के हो गये। आप नयी पीढ़ी के लोग हैं। देश का भविष्य आपके हाथों में है। उत्साह है आपके अंदर, शक्ति है आपके अंदर, जवानी है आपके अंदर, आप नेता बनिये। मैं आपको सलाह दूंगा। तो छात्रों ने कहा—जयप्रकाश जी, मार्गदर्शन से काम नहीं चलेगा, आपको नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा। मैं टालता रहा, टालता रहा। लेकिन अंत में (वेल्लोर) जाते समय उनके आग्रह को स्वीकार किया।"[7] नेतृत्व स्वीकार करने के पहले उन्होंने दो शर्तें रखीं—पहला यह कि आंदोलन पूरी तरह शांतिपूर्ण होगा और दूसरा, सभी मेरे नेतृत्व को मानेंगे।

वेल्लोर जाते समय उन्होंने सर्वोदय के अपने चार वरिष्ठ सहयोगियों (आचार्य राममूर्ति, नारायण देसाई, मनमोहन चौधरी एवं त्रिपुरारी शरण) को आंदोलन का नेतृत्व सौंप दिया। नारायण देसाई की गुजरात के नवनिर्माण आंदोलन में भी सक्रिय भूमिका थी। जे.पी. ने पांच सप्ताह का आंदोलन विस्तृत कार्यक्रम भी तैयार कर अपने मित्रों को दे दिया। इसमें हर सप्ताह अलग अलग काम के लिए निर्धारित किया गया— 1. जनजागरण सप्ताह, 2. संगठन सप्ताह, 3. विधानसभा भंग करो सप्ताह, 4. मितव्ययितता सप्ताह और 5. शिक्षा में क्रांति एवं बेरोजगारी सप्ताह।

पटना में डा. आर.वी.पी. सिंह उनका इलाज कर रहे थे। इसलिए वह भी जे.पी. के साथ वेल्लोर गये। अप्रैल को उनके प्रोस्टेट का ऑपरेशन किया गया। हृदय में भी कुछ तकलीफ थी, जिसकी जांच मद्रास और वेल्लोर दोनों जगह हुई। आपरेशन के बाद उनका स्वास्थ्य तेजी से सुधरने लगा। वेल्लोर से भी तार एवं टेलीप्रिंटर के माध्यम से वे पटना के संपर्क में रहते थे और आवश्यक निर्देश देते थे। 2 जून को मद्रास और कलकत्ता होते हुए वे पटना वापस आये।

इस बीच, बिहार में आंदोलन काफी फैल चुका था। आंदोलनकारियों ने जमाखोरी, मुनाफाखोरी एवं कालाबाजारी के खिलाफ अलग अलग जगह पर कार्रवाई की। कई स्थानों पर उन्होंने व्यापारियों को जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को एक निश्चित दर पर बेचने

के लिए मजबूर किया। जनता छापा में सैकड़ों की संख्या में जाली राशन कार्ड पकड़े गये। बड़ी संख्या में छात्रों का जत्थेवार अनशन चलता रहा। विधानसभा भंग के लिए हस्ताक्षर अभियान चलाया गया। 22 अप्रैल को महामाया प्रसाद सिन्हा ने विधानसभा से अपना त्यागपत्र जे.पी. के सुपुर्द किया। दूसरे दिन कर्पूरी ठाकुर ने भी विधानसभा से त्यागपत्र दिया। 8 मई को जनसंघ के 9 विधायकों का इस्तीफा स्वीकार कर लिया गया। 24 अप्रैल से राज्य के गैर सरकारी माध्यमिक स्कूलों के लगभग 38 हजार शिक्षकों एवं कर्मचारियों ने राज्यव्यापी हड़ताल शुरू कर दी। 7 मई से देशव्यापी रेल हड़ताल शुरू हुई। इस तरह स्थिति विस्फोटक हो गयी थी। बड़ी संख्या में गिरफ्तारियां हुईं। कई बड़े नेताओं को भी गिरफ्तार किया गया।

संपूर्ण क्रांति का आह्वान

5 जून, 1974 को विधानसभा के विघटन की मांग को लेकर जे.पी. के नेतृत्व में ऐतिहासिक जुलूस निकला। सबसे आगे एक ट्रक था जिसमें लाखों हस्ताक्षर वाले आवेदन पत्र पड़े थे। उसके पीछे जे.पी. की जीप थी और उसके पीछे 5-7 कि.मी. लंबा जुलूस। जे.पी. और छात्र नेताओं ने राज्यपाल को ज्ञापन दिया। राजभवन से लौटते समय इंदिरा ब्रिगेड के कार्यकर्ताओं ने जुलूस पर गोलियां चलायीं जिससे कई लोग घायल हो गये। घटना के तुरंत बाद जिला प्रशासन की ओर से वहां छापा मारा गया और छह लोगों को हथियारों के साथ रंगे हाथ पकड़ा गया।

शाम में गांधी मैदान में एक महती जनसभा में जे.पी. ने संपूर्ण क्रांति का आह्वान किया, "यह क्रांति है मित्रो, और संपूर्ण क्रांति है। यह कोई विधान सभा के विघटन का ही आंदोलन नहीं है। वह तो एक मंजिल है जो रास्ते में है। दूर जाना है, दूर जाना है।" जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में—"अभी न जाने कितने मीलों इस देश की जनता को जाना है उस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके लिए देश के हजारों-लाखों जवानों ने कुर्बानियां की हैं,...लेकिन आज सत्ताईस-अठाईस वर्ष के बाद का जो स्वराज्य है, (उसमें) जनता कराह रही है। भूख है, महंगाई है, भ्रष्टाचार है, कोई काम नहीं जनता का निकलता है बगैर रिश्वत दिये।"[8]

उन्होंने आगे कहा कि पुलिस ने इस जुलूस में शामिल होने के लिए बिहार के भिन्न भिन्न हिस्सों से आ रहे लोगों और छात्रों को जहां तहां रोका है, बिना कारण उन्हें पीटा है और गिरफ्तार किया है और जो लोग जनता से घबराते हैं वे जनता के प्रतिनिधि नहीं हो सकते। उन्होंने मांग की कि यदि इस सरकार ने विधानसभा की सम्मति से यह सब किया है तो विधानसभा का विघटन लाजिमी हो जाता है क्योंकि विधानसभा की सम्मति से सरकार चल रही है। अगर ऐसा नहीं है तो 18 मार्च से इस सरकार ने जो भी काम

किये हैं, कांग्रेस पार्टी उनकी निंदा करे और दूसरा मंत्रिमंडल बनाने की घोषणा करे। उन्होंने चुनाव पद्धति में सुधार और दलविहीन लोकतंत्र की स्थापना पर बल देते हुए स्पष्ट किया कि झगड़ा किसी व्यक्ति से नहीं, बल्कि नीतियों से है। उन्होंने जनता का आह्वान किया कि विधानसभा के सामने सत्याग्रह करें, विधायकों के निवास स्थानों का घेराव करें, जहां तक संभव हो और जनता की कोई हानि इस कार्यक्रम से न हो, वहां सरकार के साथ असहयोग कर सरकार को ठप कर दें। उन्होंने कहा, "यह संघर्ष केवल सीमित उद्देश्यों के लिए नहीं हो रहा है। इसके उद्देश्य तो बहुत दूरगामी हैं, भारतीय लोकतंत्र को "रीयल" यानी वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का सच्चा राज कायम करना, समाज से अन्याय, शोषण आदि का अंत करना, एक नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रांति करना, नया बिहार बनाना और अंततोगत्वा नया भारत बनाना है।"[9]

पुलिस को गैर कानूनी आदेश न-मानने की सलाह

इसके साथ ही उन्होंने पुलिस के सिपाहियों का आह्वान किया कि वे अनुचित और अन्यायपूर्ण हुक्म को न मानें। उन्होंने साफ कहा, "इसके माने यह नहीं हैं कि मैं पुलिस को बगावत सिखा रहा हूं। मैं केवल उनको कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान करा रहा हूं।" सेना के जवानों को भी उन्होंने यही सलाह दी। इस पर बहुत बड़ा विवाद खड़ा हो गया कि जे.पी. पुलिस और सेना को विद्रोह के लिए उकसा रहे हैं। विवाद इतना बढ़ गया कि जे.पी. ने फिर स्पष्ट किया कि उन्होंने जो कुछ भी कहा वह पुलिस मैनुअल में लिखा हुआ है कि अनुचित आदेशों का पालन न किया जाये।

लेफ.जन.एस.के. सिन्हा, जो उस समय मिलिटरी इंटेलिजेंस के प्रमुख थे, ने लिखा है कि वह आधिकारिक तौर पर कह सकते हैं कि सेना के किसी जवान ने जे.पी. के कथन को बगावत के लिए आह्वान के रूप में नहीं लिया।[10] भारत तथा पूरे विश्व में ऐसे कई उदाहरण हैं जहां अवैध आदेशों का पालन करने के लिए सैनिकों को कठोर सजा दी गयी है। एक संदिग्ध नागा विद्रोही को एक सूबेदार तथा एक हवलदार ने कैप्टेन के आदेश पर इतनी यातना दी जिससे पूछताछ के क्रम में ही उसकी मृत्यु हो गयी। कोर्ट मार्शल में उन दोनों ने दलील दी कि उन्होंने सिर्फ कैप्टेन के आदेश का पालन किया है। उनकी दलील नहीं मानी गयी और कैप्टेन, सूबेदार एवं हवलदार को बर्खास्त कर दिया गया और उन तीनों को अलग-अलग अवधियों के लिए जेल की सजा हुई। जर्मनी के फील्ड मार्शल-मैन्सटाइन को अधिकृत रूसी क्षेत्र में यहूदियों तथा अन्य नागरिकों की सामूहिक हत्या करने के अपराध के लिए लंबे समय तक जेल की सजा भुगतनी पड़ी। हालांकि स्थगित कर दी गयी।

लगभग पांच हजार लोगों ने सत्याग्रह में हिस्सा लिया जिनमें 3,407 गिरफ्तार हुए।

30 विधायकों ने विधानसभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[11]

आंदोलन का सांस्कृतिक आयाम

आंदोलन की लपट पूरे राज्य में फैल चुकी थी और इससे बड़ी संख्या में साहित्यकार, कलाकार, संस्कृतिकर्मी एवं रंगकर्मी भी जुड़ गये। बाबा नागार्जुन तथा फणीश्वरनाथ रेणु जैसे यशस्वी साहित्यिक जगह जगह पर नुक्कड़ सभाओं, नुक्कड़ गोष्ठियों एवं नुक्कड़ नाटकों का आयोजन करने लगे। बिहार के बाहर से भी कई लेखक, पत्रकार आदि आंदोलन के समर्थन में पहुंचे। हिंदी के नाटककार-कथाशिल्पी डा. लक्ष्मीनारायण लाल, मराठी नाटककार विजय तेंदुलकर, कवि-पत्रकार अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय, अंग्रेजी पत्रकार कुलदीप नय्यर, अजीत भट्टाचार्य, वी.जी. वर्गीज तथा गोविन्द तलवालकर आंदोलन में जुड़े। इनमें से कई पहले से जे.पी. से जुड़े थे। डा. लक्ष्मीनारायण लाल और अजीत भट्टाचार्य ने अपनी "मुनादी" शीर्षक कविता से अधिनायकवाद पर प्रहार किया तो डा. रघुवंश ने मीसा के तहत जेल की सजा भी काटी। प्रफुल्ल चंद्र ओझा 'मुक्त' ने जे.पी. के द्वारा संपादित पत्र 'एवरीमेन्स' के हिंदी संस्करण के संपादन की जिम्मेदारी ले ली। इससे इस आंदोलन को एक सांस्कृतिक आयाम भी मिल गया।

आंदोलन का अगला चरण—विभिन्न कार्यक्रम

7 जून से आंदोलन का नया चरण आंरभ हुआ जिसमें विधानसभा के सामने सत्याग्रह और मंत्रियों, विधायकों का घेराव आदि शामिल था। 5 जुलाई को जे.पी. ने कलकत्ता में घोषणा की कि एक वर्ष के अंदर देशभर में बिहार जैसा आंदोलन फैल जायेगा। 12 जुलाई को विधानसभा अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गयी। लगभग पांच हजार लोगों ने सत्याग्रह में हिस्सा लिया, जिनमें 3,407 गिरफ्तार हुए। 30 विधायकों ने विधानसभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[11]

13 जुलाई को जे.पी. ने आंदोलन के अन्य कार्यक्रमों की घोषणा की। इनमें हर स्तर पर संघर्ष समितियों का गठन, सभी निर्वाचन क्षेत्रों में विधायकों से त्यागपत्र की मांग के समर्थन में जुलूस तथा 1972 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी का घोषणा पत्र पढ़कर लोगों को सुनाना, जिससे लोगों को पता चल सके कि कितने वायदे पूरे नहीं किये गये, आदि शामिल थे। एक अगस्त को दिनभर उपवास रखा गया। शाम में गांधी मैदान में जे.पी. का भाषण हुआ, जिसमें मूसलाधार बारिश के बावजूद काफी बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे। जे.पी. ने सबों से प्रतिज्ञा करवाई कि हम अपने जीवन में किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार को प्रवेश नहीं करने देंगे, समाज में फैले भ्रष्टाचार को भी सहन नहीं करेंगे और उसे समाप्त करने के लिए पूरा प्रयत्न करेंगे।

9 अगस्त "संपूर्ण क्रांति दिवस" के रूप में मनाया गया। उस दिन शराब की दुकानों, शराब भट्ठियों तथा सरकारी दफ्तरों के समक्ष धरना दिया गया। 15 अगस्त "लोक स्वराज्य दिवस" के रूप में मनाया गया, जिसमें छात्रों एवं युवकों ने सरकारी समारोहों का बहिष्कार किया और अपने झंडे फहराये। कई जगहों पर पुलिस ने आंसू गैस छोड़ी और भीड़ पर लाठियां चलायीं। 16 अगस्त को बिहार के तत्कालीन लोकायुक्त एस.बी. सोहनी ने राज्य के दो मंत्रियों को कारण बताओ नोटिस जारी किया। दारोगा प्रसाद राय के विरुद्ध 6 करोड़ के पंम्पिंग सेट की खरीद में गोलमाल का आरोप लगा।

27 सितंबर को जे.पी. ने आगे के कार्यक्रम की घोषणा की। 2 अक्तूबर को गांधी जयंती पर 'संकल्प दिवस' मनाया गया। जे.पी. ने कहा कि महात्मा गांधी ने पूर्ण स्वाधीनता की कल्पना की थी। आधी स्वाधीनता ब्रिटिश हुकूमत के समाप्त होने से आयी है और बाकी आधी स्वाधीनता तब आयेगी जब देश से गरीबी, शोषण और निरंकुशता को खत्म कर समतामूलक समाज का निर्माण किया जायेगा। 3,4 और 5 अक्तूबर को उन्होंने बिहार बंद का आह्वान किया। यह पूर्ण बंद का कार्यक्रम था जिसमें होटलों और दवा की दुकानों को छोड़कर सभी चीजों को शामिल किया गया। बंद पूरी तरह सफल रहा। इस दौरान ट्रेन तक नहीं चल पायी। जे.पी. के नेतृत्व में 3 तारीख को सचिवालय के मुख्य द्वार पर धरना दिया गया। समाचार पत्रों ने बंद को ऐतिहासिक बताया। गृह सचिव के अनुसार लगभग 1,200 प्रदर्शनकारी और आंदोलनकारी इन तीन दिनों में गिरफ्तार किये गये।

14 अक्तूबर को जे.पी. ने वक्तव्य जारी कर बिहार में गांव, पंचायत और प्रखंड स्तरों पर समानांतर जनता सरकार के गठन के लिए चार सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की:

1. यदि विधान सभा का विघटन न हो तो जनता की विधानसभा बुलायी जाये,
2. 4 नवंबर को सचिवालय का घेराव,
3. पूरे राज्य में सरकारी गतिविधियों को ठप करने का अभियान, और
4. कर नहीं देने का अभियान।

इस बीच जे.पी. बिहार के अलावा दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और अन्य राज्यों में घूमकर जन-सभाओं को संबोधित करते रहे और हर जगह लोगों को बिहार के जैसा आंदोलन प्रारंभ करने की उन्होंने सलाह दी। श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ 12 जुलाई से ही उनका पत्राचार शुरू हो गया था। नवंबर को दिल्ली में उन्होंने इंदिरा जी से बातचीत की, लेकिन इंदिरा जी विधानसभा भंग करने को तैयार नहीं हुई। जे.पी. इससे कम कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। उसी दिन शाम को एक आम सभा में इंदिरा गांधी ने कहा कि मैं इस्तीफा देना पसंद करूंगी, किंतु बिहार विधानसभा का विघटन नहीं, और यदि जनता जे.पी. के साथ है, जैसा कि वे दावा करते हैं, तो इसका फैसला चुनाव में होगा। जे.पी. ने चुनौती को स्वीकार कर लिया।

जे.पी. लाठी से घायल

4 नवंबर को दिल्ली बंद का आयोजन किया गया और प्रधानमंत्री के बंगले का घेराव किया गया। इधर पटना में धरने और प्रदर्शन के कार्यक्रम को देखते हुए पूरे शहर की नाकेबंदी कर दी गयी। समाचार पत्रों के अनुसार लाखों लोगों को पटना आने नहीं दिया गया। फिर भी बहुत बड़ी संख्या में जे.पी. के नेतृत्व में लोगों ने वित्तमंत्री दारोगा प्रसाद राय के निवास स्थान का घेराव किया।

पुलिस ने आंसू गैस और लाठियों से आंदोलनकारियों पर प्रहार किया। जे.पी. को भी लाठी लगी जिससे वे घायल हो गये। उन्हें बचाने के लिए नानाजी देशमुख ने अपना हाथ बढ़ा दिया जिससे उनका हाथ टूट गया। लगभग तीन हजार लोगों को गिरफ्तार किया गया। नानाजी देशमुख, सत्येन्द्र नारायण सिंह और दिग्विजय नारायण सिंह आदि भी गिरफ्तार किये गये। 15 नवंबर को तत्कालीन केंद्रीय गृह मंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने जे.पी. पर हुए प्रहार के लिए लोकसभा में क्षमायाचना की। 27 नवंबर को कुरुक्षेत्र में जे.पी. की कार पर पुनः कुछ लोगों ने हमला किया।

विनोबा और जे.पी. में मतभेद

इस बीच एक विवाद यह उठाया गया कि जीवनदान करने के बाद जे.पी. फिर से राजनीति में कैसे आ गये। आंदोलन से जुड़ने के बाद से ही वे इस बात के लिए प्रयासरत थे कि विनोबा से मिलकर इस बारे में विस्तार से चर्चा की जाये। विनोबा का विचार था कि आंदोलन से भ्रष्टाचार, महंगाई, बेकारी जैसी समस्या खत्म नहीं होगी क्योंकि ये विषय चिंतन के हैं। उनकी मान्यता थी कि सरकार को हटाने से लोकतंत्र का विरोध होगा। लेकिन ऐसा दृष्टिकोण होने के बावजूद उन्होंने शुरू में जे.पी. का विरोध नहीं किया। जून, 1974 में एक बातचीत के बीच उन्होंने कहा था, "जयप्रकाश जी जो भी काम करेंगे, उसमें मेरी सहमति रहेगी, क्योंकि (1) जयप्रकाश जी सज्जन हैं, (2) जो काम अच्छा होगा, वे उसी को करेंगे और सो भी निःस्वार्थ भाव से करेंगे, (3) अगर उन्हें अपने काम में कोई भूल दिखाई देगी, तो वे तुरंत ही सुधार लेंगे, (4) इससे कुछ बनने वाला नहीं है। समस्याएं तो खड़ी रहती हैं, और होती रहेंगी। जबकि 'मैन मे कम एंड मैन मे गो' यानी आदमी तो आते और जाते रहेंगे।"[12]

जुलाई, 1974 में पवनार में सर्व सेवा संघ का अधिवेशन हुआ। जे.पी. और विनोबा में कई बार बातचीत हुई। विनोबा ने सलाह दी कि विधानसभा के विघटन की मांग को सिद्धांत का रूप नहीं दिया जाना चाहिए। जे.पी. ने कहा कि लाचार होकर उन्हें यह मांग रखनी पड़ी है। विनोबा ने आंदोलन के प्रति अपनी नापसंदगी का भी इशारा किया। विनोबा का हमेशा यह मत रहा कि संघर्ष से संघर्ष-मुक्त समाज की रचना नहीं हो सकती। इसके

अलावा वे मानते थे कि देश की स्थिति ऐसी है कि आंदोलन से देश कमजोर होगा। सीमा के पार से देश को खतरा है और वैसे वक्त में आंदोलन करना उचित नहीं है। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने अपना निर्णय संघ पर नहीं थोपा और कहा कि संघ सर्वसम्मति से फैसला करे। इस विषय पर सर्वसम्मति हो नहीं पायी। प्रचंड बहुमत आंदोलन के पक्ष में था और संघ टूटने की स्थिति में आ गया। इस पर विनोबा ने सबको अपने अपने विवेक से काम करने की सलाह दी और कहा कि सिर्फ तीन मर्यादाओं का ख्याल रखा जाना चाहिए—सत्य, अहिंसा और संयम।

इस अधिवेशन के कुछ ही दिन बाद 19 जुलाई को द हिंदुस्तान टाइम्स में निर्मला देशपांडे का साक्षात्कार छपा जिसमें उन्होंने कहा था कि जयप्रकाश नारायण के बिहार आंदोलन के खिलाफ सर्वोदय का विरोध इस दृढ़ मान्यता पर आधारित है कि कोई भी हिंसक आंदोलन आज के समाज की बीमारियों का निदान नहीं ढूंढ़ सकता। विनोबा इस आंदोलन के साथ सहमत नहीं हैं और उन्होंने इसे अपने आशीर्वाद नहीं दिये हैं। फिर भी वे इस प्रयोग का निरीक्षण कर रहे हैं।

उस साक्षात्कार को पढ़कर जे.पी. दुखी हुए। उन्होंने 22 जुलाई को कुसुम देशपांडे को पत्र लिखा, "निर्मला की यह अखबारी मुलाकात पढ़कर बहुत दुख हुआ। सबसे अधिक दुख यह देखकर हुआ कि उसने अपनी बातें ऐसे ढंग से कहीं है कि पढ़ने वालों पर यह प्रभाव पड़े कि बाबा के ही मत का प्रतिपादन कर रही हो।"[13]

जब लेखक ने निर्मला देशपांडे से इस पूरे विवाद के बारे में पूछा तो उनका जवाब था, "अधिवेशन के समय मैं पवनार में थी, किंतु मैं विनोबा-जे.पी. की चर्चा में नहीं थी। मैं जानबूझ कर नहीं गयी क्योंकि मुझे पता था कि मेरे बारे में झूठा प्रचार होगा। विनोबा जी आंदोलन के खिलाफ थे। वे भूदान-ग्रामदान के जरिये अहिंसक क्रांति की शक्ति का निर्माण करना चाहते थे। 'लोक सेवक का प्रतिज्ञापत्र' पर हजारों लोगों ने हस्ताक्षर किये थे। जे.पी. ने भी उस पर हस्ताक्षर किये थे। उसमें यह जाति, धर्म, पंथ और राजनीति से अलग रहने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी। इसलिए विनोबा ने विरोध किया कि आपने एक संकल्प लिया है और फिर आंदोलन में जा रहे हैं।

"विनोबा ने कहा कि यदि यह आंदोलन सिर्फ भ्रष्टाचार के विरुद्ध और अहिंसा की मर्यादा के अंदर हो तो मैं विरोध नहीं करूंगा। यही विनोबा ने जे.पी. से मौन तोड़कर भी कहा था। जे.पी. ने कहा—सोचूंगा। जे.पी. भावुक थे, विनोबा जी के प्रति श्रद्धा भी थी, इसलिए वे सोचने लगे। लेकिन उनके इर्दगिर्द जो लोग थे उन्होंने उन पर दबाव डाला और सोचने नहीं दिया।

"सन् 1974 के अंत या 1975 के शुरू में अच्युत पटवर्धन ने पहल की कि आंदोलन से उत्पन्न समस्या का निदान हो और इसके लिए जे.पी. को राजी किया। वाराणसी में

अच्युत ने मुझे इस बारे में बताया। वह पहले जे.पी. से मिले और इंदिरा जी से मिलने आये थे। मुझे स्मरण नहीं है कि उनका निदान क्या था। जे.पी. ने अच्युत के सामने उनका फार्मूला स्वीकार किया, लेकिन वाराणसी से दिल्ली जाने के पहले उन्हें फोन आया कि जे.पी. को यह स्वीकार्य नहीं है। उनके लोगों ने अच्युत के जाते ही उन्हें अपने ढंग से समझा दिया।

"विनोबा ने मार्च, 1974 में सर्व सेवा संघ की जलगांव में हुई बैठक में संदेश भेजा कि 2,000 वर्ष बाद भारत एक हुआ है। इसलिए ऐसा कोई काम नहीं किया जाये जिससे देश की एकता खंडित हो। उन्होंने केंद्र सरकार के विरुद्ध अहिंसक आंदोलन तक का विरोध किया। इसके बावजूद लोगों ने संघ में आंदोलन करने का फैसला किया। चूंकि संघ का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित होता था, इसलिए हर व्यक्ति को वीटो का अधिकार था। मैंने इस कारण वीटो किया क्योंकि मैं विनोबा की लाइन पर काम करना चाहती थी।

"1975 में 54 लोगों ने सर्व सेवा संघ विरोध स्वरूप छोड़ दिया। मैंने भी छोड़ दिया क्योंकि वीटो को ये लोग मानते नहीं थे और संघ के कोष, लेटर पैड और कार्यालय का इस्तेमाल आंदोलन के लिए करने लगे। विनोबा और अमृत कोष में लगभग 80 लाख रुपये थे। इसका और अन्य कोष का बिना प्रस्ताव के इस्तेमाल हो रहा था।"

इसके विपरीत आंदोलन से जुड़े संघ के कार्यकर्ताओं ने निर्मला देशपांडे पर ही राजनीति करने का आरोप लगाया कि वह इंदिरा जी से मिलकर राजनीति कर रही हैं। आंदोलन में संघ की भूमिका को लेकर विवाद चल ही रहा था कि 25 दिसंबर, 1974 को विनोबा ने एक वर्ष के लिए मौन धारण कर लिया। मौन की अवस्था में भी विनोबा ने जे.पी. के समक्ष अपने विचार रखे जो पहले प्रकाशित हो चुके थे। उनका विचार था कि जो रणछोड़ होगा उसकी जीत होगी। कृष्ण के रण छोड़कर भागने से अंततः युद्ध टल गया। ज्यादा तनाव न हो, इसलिए जयप्रकाश जी भी यदि रण छोड़ देते हैं तो उनकी जीत होगी।

जे.पी. ने इसका जवाब दिया कि रण छोड़ने का अर्थ होगा—गद्दारी। उन्होंने विनोबा को समझाया कि उनका संघर्ष सिर्फ सत्ता के विरुद्ध नहीं, बल्कि व्यापक अर्थ में समाज-परिवर्तन के लिए है।

इस पर विनोबा ने अचानक दो मिनट के लिए मौन तोड़कर कहा, "आपकी संघर्ष की जो कल्पना है, वह मुझे मालूम है। वह जारी रहे, अच्छी चीज है, बाबा उसे पसंद करता है। उसमें बाबा की मदद भी आपको मिल सकती है। सिर्फ एक बात है, राजसत्ता के विरोध में जो संघर्ष है, उसे छोड़िए।...देशहित में अभी आपको राजसत्ता के विरोध का संघर्ष छोड़ना चाहिए।...मान लीजिए कि पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया, तो आप क्या करेंगे? आप आंदोलन तुरंत बंद कर देंगे। मेरा कहना यही है कि हम आक्रमण की राह क्यों देखें?..."[14]

जे.पी. इस बात से बहुत प्रभावित हुए कि प्रसंग की महत्ता को देखते हुए विनोबा ने/मौन तोड़ा, लेकिन उनकी बातों से जे.पी. सहमत नहीं हुए। जे.पी. ने कहा कि आंतरिक प्रश्नों को लेकर सत्ता के साथ शांतिमय संघर्ष होने से राष्ट्र दुर्बल नहीं होगा। बल्कि इस भयंकर परिस्थिति में जनता की समस्याओं के समाधान के लिए कोई शांतिमय आंदोलन नहीं हुआ तो उसी से देश कमजोर हेगा। विनोबा पुनः मौन हो गये।

आंदोलन को राजनीतिज्ञों से दूर रखने का प्रयास

जे.पी. शुरू से इस आंदोलन को राजनीति और राजनेताओं से अलग रखना चाहते थे। जब आंदोलन प्रारंभ हुआ तो छात्र-युवा ही इसके मुख्य कर्ता-धर्ता थे। कई बार ऐसा भी हुआ कि छात्रों के मंच पर नेताओं को चढ़ने तक नहीं दिया गया। संपूर्ण क्रांति के लिए चलाये जा रहे इस आंदोलन को वह निर्दलीय लोगों के समर्थन से आगे बढ़ाना चाहते थे। इसी उद्देश्य से 1 जनवरी, 1975 को उन्होंने एक निर्दलीय एवं स्वतंत्र युवा संगठन की घोषणा की —"छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी"। जे.पी. ने स्पष्ट कर दिया कि संपूर्ण क्रांति के प्रति समर्पित युवकों का एक अनुशासित संगठन है यह।

इस आंदोलन को चुनाव की राजनीति से भी वे अलग रखना चाहते थे, किंतु जब श्रीमती गांधी ने 1 नवंबर को कह दिया कि चुनाव में ही इसका फैसला होगा कि जनता किसके साथ है तो जे.पी. को 18 नवंबर को पटना की विराट सभा में कहना पड़ा, "जब इंदिरा जी ने यह चुनौती दी है, तो मैं उसे मंजूर करता हूं।...इस तरह वे अपने ही हाथों चुनावों को संघर्ष के मैदान में घसीट लायी हैं।...वैसे, चुनावों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है।"[15]

इतना होने के बावजूद उन्होंने कोशिश की कि आंदोलन राजनीतिक दलों की लड़ाई में न बदल जाये। 25 नवंबर को दिल्ली में उन्होंने विरोधी दलों का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें गैर-कम्युनिस्ट पार्टियों के लगभग 50 नेताओं ने हिस्सा लिया। इसमें भारतीय लोकदल के नेता चौधरी चरण सिंह ने सुबह के सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रस्ताव किया कि वे एक राष्ट्रीय विकल्प का नेतृत्व करने के लिए तैयार हैं। जे.पी. ने इसे तुरंत अस्वीकार कर दिया। उन्होंने साफ कहा कि आंदोलन सत्ता पक्ष और प्रतिपक्ष के बीच का संघर्ष नहीं है।

चुनावों के बारे में भी जे.पी. ने कहा कि यदि सभी विरोधी दल मिलकर एक उम्मीदवार खड़ा कर दें तो इतने मात्र से वह जनता का उम्मीदवार नहीं हो जाता। जब उन्होंने कहा कि उम्मीदवारों के बारे में निर्णय संघर्ष समितियां करेंगी तो विभिन्न राजनीतिक दलों के लोग उन समितियों पर कब्जा करने की होड़ में लग गये। इससे जे.पी. बहुत क्षुब्ध हुए।

आंदोलन तीव्र से तीव्रतर होता गया। 2 जनवरी, 1975 को मोहन धारिया को जे.पी. के प्रति सहानुभूति रखने के लिए केंद्रीय मंत्रिमंडल से बर्खास्त कर दिया गया। आंदोलन पूरे देश में फैल चुका था। 6 मार्च को दिल्ली में जे.पी. के नेतृत्व में विशाल रैली का आयोजन किया गया। जिसका नारा था—"सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।" 5 जून को कलकत्ता में उनके नेतृत्व में विशाल प्रदर्शन आयोजित किया गया।

इंदिरा गांधी के विरुद्ध उच्च न्यायालय का निर्णय

इसी बीच 12 जून, 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इंदिरा गांधी के खिलाफ राजनारायण द्वारा दायर की गयी अर्जी पर फैसला सुनाया जिसमें चुनाव संबंधी भ्रष्टाचार के लिए श्रीमती गांधी को जिम्मेदार मानते हुए उनके चुनाव को रद्द कर दिया गया । सर्वोच्च न्यायालय में अपील के लिए उन्हें 20 दिन का समय दिया गया, हालांकि इस बीच वे लोकसभा की सदस्य नहीं रह गयी थीं। जे.पी. ने सलाह दी कि सर्वोच्च न्यायालय के फैसले तक उन्हें प्रधानमंत्री के पद से हट जाना चाहिए। इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

विरोधी दलों ने प्रधानमंत्री से त्यागपत्र की मांग करने के लिए राष्ट्रपति भवन के सामने प्रदर्शन करने की योजना बनायी। जे.पी. ने कह दिया था कि उसमें भाग नहीं लूंगा। लेकिन मित्रों के आग्रह और दबाव में आकर उस कार्यक्रम में शामिल होने 23 जून को वे दिल्ली पहुंचे। 25 जून को रामलीला मैदान में आम सभा का आयोजन किया गया जिसमें जे.पी. को ही मुख्य वक्ता बनाया गया । वह एक ऐतिहासिक सभी थी जिसमें कई लाख लोग सम्मिलित हुए।

आपातकाल लागू , जे.पी. गिरफ्तार

उसी रात पूरे देश में आंतरिक आपातकाल की घोषणा कर दी गयी। 26 तारीख की सुबह 4 बजे जे.पी. को नयी दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में, जहां वे ठहरे हुए थे, गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय उनके मुंह से स्वतः स्फूर्त निकल पड़ा—'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।'

गिरफ्तार कर उन्हें हरियाणा के सोहना नामक स्थान पर ले जाया गया। मोरारजी भाई को भी वहीं रखा गया था, लेकिन दोनों को मिलने नहीं दिया गया। तीन दिन के बाद जे.पी. की तबीयत खराब हो गयी और उन्हें नयी दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती किया गया। दो दिन के उपचार के बाद 1 जुलाई को हवाई जहाज से उन्हें चंडीगढ़ ले जाया गया। वहां के अस्पताल की पहली मंजिल पर उन्हें रखा गया। 24 घंटे एक सिपाही उनके कमरे के सामने पहरे देता था। उन्होंने सरकार से आग्रह किया कि किसी व्यक्ति को उनके साथ रहने दिया जाये, परंतु उनके आग्रह को नहीं माना गया।

7 जुलाई को उन्होंने भारत सरकार के गृह सचिव को पत्र लिखकर आग्रह किया कि उन्हें बिहार भेज दिया जाये, किंतु उसका कोई जवाब नहीं आया। साढ़े चार महीने तक उन्हें एकदम अकेला रहना पड़ा। कुछ दिनों के बाद उन्हें अखबार दिये जाने लगे, लेकिन सेंसर के बाद जो खबरें प्रकाशित होती थीं उनपर उनका विश्वास नहीं था, इसलिए बीच बीच में वे समाचार पत्र पढ़ना ही छोड़ देते थे। 21 जुलाई की अपनी जेल डायरी में उन्होंने लिखा, "मेरी दुनिया मेरे चारों ओर बिखरी पड़ी है। मुझे डर है कि अपने जीवन में इसे दोबारा एक साथ नहीं देख पाऊंगा। हो सकता है मेरे भतीजे-भतीजियां उसे देखेंगे।"[16]

उनकी जेल डायरी को पढ़ने से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि जेल में जे.पी. गहन चिंतन में लगे थे। 21 जुलाई को ही उन्होंने इंदिरा गांधी को एक लंबा पत्र लिखा कि मनुष्य की आत्मा अजेय है और उसे चाहे जितना भी दबाया जाये वह मरेगी नहीं। अगस्त महीने में बिहार में प्रलयकारी बाढ़ आयी। ऐसी प्राकृतिक विभीषिका में जनता की सेवा करना उन्हें अपना दायित्व लगा। उन्होंने 27 अगस्त को प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर एक महीने के लिए पेरोल पर छोड़ने का आग्रह किया ताकि वे राहत काम कर सके। इसका जवाब न मिलने पर पुनः 17 सितंबर को उन्होंने प्रधानमंत्री को पत्र भेजा। इसमें उन्होंने लिखा कि जब मानवता दुख झेल रही हो वैसी स्थिति में राजनीति का कोई स्थान नहीं है। इसलिए उन्होंने फिर से पेरोल पर छोड़ने का आग्रह किया।

स्वास्थ्य में गिरावट

इस बीच उनके स्वास्थ्य में भी बहुत गिरावट आ गयी थी। उन्हें बीच बीच में उल्टी होती रहती थी और चक्कर आते रहते थे। 27 सितंबर को अचानक बाथरूम में उनके पेट में जोर से दर्द शुरू हुआ। बहुत पसीना निकला। बड़ी मुश्किल से बाहर निकले। कई घंटे तक दर्द बना रहा। फिर 8 अक्तूबर को वैसा ही तेज दर्द शुरू हुआ। धीरे धीरे याददाश्त भी कमजोर होने लगी। 5 नवंबर को डाक्टरों ने बताया उनके दोनों गुर्दों ने काम करना बंद कर दिया है। जेल जाने के पहले उनके गुर्दे बिल्कुल ठीक थे। सन् 1977 में जनता सरकार ने एक जांच समिति का भी गठन किया था कि किन परिस्थितियों में उनके गुर्दे खराब हुए, लेकिन उसकी रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं बनायी गयी।

धीरे धीरे उनकी स्थिति नाजुक होती गयी। विनोबा ने प्रधानमंत्री को संदेश भेजा कि जे.पी. की बीमारी का समुचित इलाज हो। 12 नवंबर को उन्हें एक महीने के पेरोल पर छोड़ा गया और 4 दिसंबर को उनकी नजरबंदी का हुक्म वापस ले लिया गया। 16 नवंबर को उन्हें दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती किया गया और 22 नवंबर को बंबई के जसलोक अस्पताल में दाखिल किया गया। लगभग डेढ़ महीने बाद अस्पताल से उन्हें छुट्टी मिली, लेकिन हर तीसरे दिन डायलिसिस के लिए उन्हें जाना

पड़ता था। डायलिसिस की मशीन खरीदने के लिए उनके मित्रों ने आम लोगों से चंदा देने की अपील की जिससे करीब चार लाख रुपये जमा हो गये। विनोबा ने भी एक रुपये का अंशदान किया। फिर इंदिरा गांधी ने प्रधानमंत्री राहत कोष से 90 हजार रुपये दिये जिन्हे जे.पी. ने बड़ी विनम्रता के साथ वापस कर दिया।

इधर इंदिरा गांधी का मुकदमा उच्चतम न्यायालय में लंबित था और उन्होंने जन प्रतिनिधि अधिनियम में कई संशोधन कर दिये। उच्चतम न्यायालय में पूरे 32 दिन सुनवाई चली और संशोधित कानून के तहत नवंबर में उसने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करते हुए श्रीमती गांधी के पक्ष में निर्णय सुनाया।

1977–लोकसभा चुनाव

लोकसभा का चुनाव सन् 1976 में होना था जिसे एक साल के लिए बढ़ा दिया गया। एक साल के बाद फिर लोकसभा का कार्यकाल एक साल के लिए बढ़ा दिया गया। किंतु अचानक जनवरी, 1977 में इंदिरा गांधी ने आम चुनाव की घोषणा कर दी। जे.पी. ने सभी विरोधी दलों को एक साथ मिलकर चुनाव लड़ने को कहा। इससे जनता पार्टी का जन्म हुआ। बीमारी की हालत में भी जहां तक संभव हो सका उन्होंने चुनाव सभाओं को संबोधित किया। जहां नहीं जा सके वहां उनका टेप लोगों को सुनाया गया। चुनाव में जनता पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ। असम से लेकर गुजरात तक कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली। राजस्थान में सिर्फ एक स्थान पर कांग्रेस की जीत हुई। स्वयं श्रीमती गांधी रायबरेली से राजनारायण के हाथों चुनाव हार गयीं। संजय गांधी भी अमेठी से हार गये।

जे.पी. ने सबसे पहले जनता पार्टी के सांसदों को दिल्ली में बापू की समाधि राजघाट पर शपथ दिलायी। पार्टी को बहुमत प्राप्त होते ही प्रधानमंत्री पद के लिए भाग-दौड़ शुरू हो गयी। चूंकि कई पार्टियों को मिलाकर जनता पार्टी का गठन किया गया था इसलिए गुटबाजी भी उभरकर सामने आयी। राजनारायण ने सच्चिदानंद को फोन कर जे.पी. के नाम संदेश दिया कि उन्होंने एक क्रांति तो पूरी कर दी है और अब चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाकर वे दूसरी क्रांति भी पूरी कर दें। जब सच्चिदा बाबू ने राजनारायण का संदेश जे.पी. को दिया तो वे बिगड़ गये, "मैं क्यों किसी को प्रधानमंत्री बनाऊंगा?"[17] जगजीवन राम को शायद उम्मीद थी कि जे.पी. उनका समर्थन करेंगे क्योंकि कांग्रेस छोड़ने पर जे.पी. ने उन्हें बधाई दी थी। परंतु जब उन्होंने भी जे.पी. से पूछा कि प्रधानमंत्री कौन बनेगा तो जे.पी. ने स्पष्ट कह दिया कि यह सांसदों को तय करना है। अंत में काफी विवाद के बाद गांधी शांति प्रतिष्ठान में एक अनौपचारिक बैठक में राजनारायण ने घोषणा की, कि जे.पी. प्रधानमंत्री नामजद करेंगे। हुकुमदेव नारायण यादव को छोड़कर किसी ने

इस पर आपत्ति नहीं की।

जे.पी. और कृपलानी ने सभी सांसदों से बात की। उसी वक्त पार्टी के टूटने का खतरा पैदा हो गया क्योंकि एक गुट दूसरे को मानने को तैयार नहीं था। इसलिए यह भार जे.पी. को दिया गया कि यदि वे प्रधानमंत्री के नाम की घोषणा करेंगे तो तभी वह नाम सबको स्वीकार्य होगा। अंत में जे.पी. ने मोरारजी देसाई के नाम की घोषणा की। जगजीवन राम मंत्रिमंडल में शामिल होने को तैयार नहीं थे। फिर जे.पी. ने उनसे मंत्रिमंडल में शामिल होने का आग्रह किया तो वे तैयार हुए।

इंदु के लिए स्नेह

एक ओर तो जे.पी. जनता पार्टी की जीत पर अत्यधिक प्रसन्न थे वहीं दूसरी ओर सरकार के गठन् के बाद वे इंदिरा गांधी से मिलने उनके निवास स्थान पर चले गये। उन्होंने इंदिरा जी से कहा, "इंदु यही लोकतंत्र है। तुम घबराना मत।" जब जे.पी. वहां से लौटने लगे तो इंदिरा जी कार तक उन्हें विदा करने आयीं। उस समय फिर जे.पी. ने कहा, "इंदु, जनता की सेवा मत छोड़ना। वही सबसे बड़ा धर्म है।" इस पर इंदिरा जी की आंखें छलछला आयीं।

13 अप्रैल, 1977 को आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से उनका राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित हुआ। उनका संदेश बंबई के जसलोक अस्पताल में टेप किया गया था। इस संदेश में उन्होंने सबसे पहले जन प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार पर बल दिया। इसके साथ ही उन्होंने राजनीतिक तथा सरकारी क्षेत्रों से भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए कारगर कदम उठाने, प्रशासनिक और चुनाव संबंधी सुधार करने, निरक्षरता समाप्त करने, बुनियादी शिक्षा दिये जाने और ऊंच-नीच पर आधारित जाति प्रथा को समाप्त कर समानता एवं भाईचारे के आधार पर नया समाज बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

उद्धरण

1. दि इंडियन नेशन, अक्तूबर 13, 1966
2. जयप्रकाश, पृ. 451-2
3. सिन्हा, डा. अमरनाथ : जयप्रकाश आंदोलन की पृष्ठभूमि (ज्योत्स्ना), पृ. 85
4. द्विवेदी, आर.एन : ग्लिम्प्सेज आफ द जे.पी. मूवमेंट (विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी), 1989, पृ. 57
5. सिन्हा, डा. अमरनाथ (ज्योत्स्ना), पृ. 87
6. जयप्रकाश, पृ. 455
7. नारायण, जयप्रकाश : संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान, पृ. 9

8. वही, पृ. 6
9. वही, पृ. 41
10. सिन्हा, लेफ. जनरल एस.के. : अ सोल्जर्स व्यू ऑफ जे.पी. (स्मारिका) पृ. 29
11. द्विवेदी आर.एन. : ग्लिम्प्सेज आफ द जे.पी. मूवमेंट, पृ. 64
12. जयप्रकाश, पृ. 459
13. वही, पृ. 460
14. वही, पृ. 467
15. वही, पृ. 463
16. नारायण, जयप्रकाश : प्रिजन डायरी (पॉपुलर प्रकाशन, बंबई), 1977, पृ. 2
17. श्री सच्चिदानंद से बातचीत के आधार पर

महाप्रयाण

जनता सरकार के गठन के बाद दिल्ली से पटना आने के बाद फिर उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। एक दिन अचानक वह नली बंद हो गयी जिससे होकर रक्त कृत्रिम गुर्दे में जाता है। उन्हें तत्काल जसलोक अस्पताल ले जाया गया। वहां भी जब पूरा आराम नहीं हुआ तो उन्हें अमेरिका ले जाया गया जहां सिएटल के अस्पताल में ग्राफ्ट आपरेशन द्वारा नया शंट लगाया गया। सिएटल से वे बंबई आये और वहां से 17 जुलाई को पटना वापस आये।

इसके बाद नियमित रूप से पटना में उनका डायलिसिस होता था जिस कारण पांच-सात घंटे उन्हें तकलीफ में रहना पड़ता था। इसके अलावा उनकी कमर में दर्द रहता था और नींद भी कम आती थी। लेकिन अपनी अदम्य इच्छा और सहनशक्ति से वे सब दर्द झेलते रहे।

जनता सरकार से निराशा

उन्होंने शुरू में ही स्पष्ट कर दिया कि सत्ता-परिवर्तन मात्र से कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं होगा, और संपूर्ण क्रांति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए काम जारी रखना होगा। फिर भी उन्हें उम्मीद थी कि जनता सरकार उस दिशा में काम करेगी। किंतु थोड़े ही दिनों के बाद से उनका मोहभंग होने लगा। अगस्त, 1977 में उन्होंने बड़े दुख से कहा कि ये लोग भी उसी तरह, उन्हीं बंगलों में रह रहे हैं और वैभवूपर्ण बंगला प्राप्त करने के लिए मंत्रियों के बीच होड़ लगी हुई है। सांसदों ने अपनी संपत्ति की घोषणा नहीं की, उन्हें जिंदगी भर पेंशन देने की योजना को भी तुरंत बंद करने की बात थी, लेकिन इस बारे में भी कुछ नहीं किया गया। चुनाव खर्च कम करने, भ्रष्टाचार समाप्त करने और जन प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के मामले पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी।

इन सबसे उन्हें हार्दिक व्यथा हुई। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने जनता सरकार के इरादों पर संदेह न करते हुए उसे एक वर्ष का समय दिया। जब उनके मापदंडों पर सरकार खरी नहीं उतर पायी तो 5 जून, 1978 को उन्होंने सार्वजनिक रूप से वक्तव्य दिया, "जनता सरकार भी पिछली कांग्रेस सरकार के ही रास्ते पर चल रही है। लोग उम्मीद खो रहे हैं क्योंकि जनता पार्टी उनकी अपेक्षा पर खरी नहीं उतरा रही है।"[1]

जीवन के अंतिम वर्षों में उनकी वेदना भी गांधी जी जैसी थी। गांधी जी को अंतिम समय में उपेक्षा की पीड़ा झेलनी पड़ी। उसी तरह जे.पी. को भी महसूस होने लगा कि उनकी बातों की ज्यादा अहमियत जनता सरकार के लिए नहीं है। प्रधानमंत्री मोराराजी भाई तो उन्हें "बाहरी व्यक्ति" कहने लगे थे। 20 अगस्त, 1978 को जे.पी. ने आचार्य कृपलानी को पत्र लिखा, "भले ही आपने और मैंने प्रधानमंत्री पद के लिए मोरारजी भाई का वरण किया हो, लेकिन इसका कोई आभार उनके मन में हो, अथवा हमारी सलाह पर वे गंभीरतापूर्वक कोई ध्यान देते हों, इस बारे में मेरे मन में बड़ा संदेह है।...प्रधानमंत्री बनने के बाद इन सब महीनों में उन्होंने व्यक्तिगत रूप से मेरे साथ बातचीत करने की अथवा मुझे एक पत्र तक लिखने की चिंता नहीं रखी है। इसलिए मेरी भूमिका अलग रहने की बनी है।"[2]

मृत्यु का गलत समाचार

वे बराबर कहते थे कि यदि उनका स्वास्थ्य साथ देता तो वे संपूर्ण क्रांति के लिए अपनी देशव्यापी यात्राएं बंद न करते। एक बार उन्होंने यहां तक कह दिया यदि मैं अस्वस्थ न होता तो इन लोगों (जनता पार्टी के नेताओं) को सबक सिखा देता। लेकिन स्वास्थ्य एक बड़ी समस्या बनी रही। मार्च, 1979 में उनके स्वास्थ्य में फिर गिरावट आयी। जसलोक में उनका इलाज चल रहा था। 22 मार्च को उनकी हालत नाजुक हो गयी। इंटेलिजेंस के लोगों को लगा कि कुछ ही देर में उनकी मृत्यु हो जायेगी। इंटेलिजेंस के अधिकारी अस्पताल के बाहर बात कर रहे थे कि जे.पी. को पटना ले जाने के लिए हवाई जहाज तैयार रखा जाना चाहिए। पी.टी.आई. के एक संवाददाता ने यह बात सुन ली और समझ लिया कि जे.पी. की मृत्यु हो गयी है। सबसे पहले समाचार देने की हड़बड़ी में उसने तुरंत यह समाचार फ्लेश कर दिया। आकाशवाणी से यह समाचार प्रसारित हो गया और लोकसभा में मोरारजी देसाई ने भी उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी।

उनकी मृत्यु की घोषणा के बाद भी राजकीय शोक की घोषणा नहीं की गयी। उस समय लेफ्टीनेंट जनरल एस.के.सिन्हा थल सेना में एड्ज्यूटेंट जनरल थे। इस आशा में कि जे.पी. का अंतिम संस्कार राजकीय सम्मान के साथ किया जायेगा, उन्होंने रांची से गन कैरेज पटना भेजने तथा अन्य चीजों की व्यवस्था करने का आदेश दे दिया। कुछ देर बाद तत्कालीन रक्षा सचिव ने लेफ्टिनेंट जनरल सिन्हा को फोन किया कि ऐसी कोई व्यवस्था करने की जरूरत नहीं है क्योंकि प्रधानमंत्री ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि जे.पी. किसी पद पर नहीं थे, इसलिए उन्हें राजकीय सम्मान नहीं दिया जायेगा।[3] बाद में घोषणा की गयी कि उनकी मृत्यु का समाचार ही गलत है।

दिल्ली की राजनीति से वे पूरी तरह उदासीन हो चुके थे। फिर भी सन् 1979 में

चौधरी चरण सिंह के जनता पार्टी छोड़ने से जो संकट खड़ा हुआ तो फिर उनकी मदद प्राप्त करने के लिए कुछ लोग उनके पास आये। एस.एम.जोशी ने जे.पी. को व्यक्तिगत पत्र लिखकर आग्रह किया कि जगजीवन राम को प्रधानमंत्री बनाने के पक्ष में वे मोरारजी भाई और चंद्रशेखर को पत्र लिखें। जे.पी. ने दोनों को इस आशय का पत्र लिख दिया। इससे दोनों बहुत नाराज हुए, लेकिन चंद्रशेखर ने जे.पी. के निर्देश को अंतिम मानते हुए उनकी बात मान ली। मोरारजी देसाई ने बात नहीं मानी। अंत में चौधरी चरण सिंह की सरकार बनी।

निधन

7 अक्तूबर, 1979 को उनको सांस लेने में तकलीफ हुई। आक्सीजन देने से थोड़ा आराम हुआ। शाम में डायलिसिस किया गया। 8 अक्तूबर को सुबह पौने पांच बजे जे.पी. उठकर बाथरूम गये। लौटकर फिर सो गये। 5 बजकर 40 मिनट पर उनके निजी सेवक गुलाब कमरे में गये तो देखा कि जे.पी. बिस्तर पर एक तरफ पड़े थे, हाथ बाहर लटक रहा था, आंखें बंद थीं और मुंह खुला था।

तुरंत डा. सी.पी. ठाकुर को फोन किया गया। वह आये और उन्होंने जे.पी. को मृत घोषित किया। चारों ओर शोक की लहर फैल गयी। जे.पी. के अंतिम दर्शन के लिए उनका शव श्री कृष्ण मेमोरियल हाल में रखा गया। उन्हें देखने के लिए कुछ घंटों में ही विशाल जन सैलाब उमड़ पड़ा। प्रधानमंत्री चरण सिंह ने सात दिनों के राष्ट्रीय शोक की घोषणा की। बिहार में मुख्यमंत्री राम सुन्दर दास ने 13 दिनों के राजकीय शोक की घोषणा की।

9 अक्तूबर को उनका अंतिम संस्कार पूरे राजकीय सम्मान के साथ पटना के बांस घाट में किया गया। राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी, उपप्रधानमंत्री यशवंत राव चह्वाण, पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई और इंदिरा गांधी, जनता पार्टी अध्यक्ष चंद्रशेखर, अटल बिहारी वाजपेयी, शेख अब्दुल्ला, केंद्र सरकार के मंत्री कई राज्यों के मुख्य मंत्री और नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री बी.पी. कोइराला सहित दस लाख से भी अधिक लोगों ने उनकी शव यात्रा में हिस्सा लिया। उनके भतीजे अनिल ने उनकी चिता को अग्नि दी और इस तरह उनका पार्थिव शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया।

उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर विनोबा उस दिन दो बार भोजन नहीं कर पाये। आश्रमवासियों से उन्होंने कहा, “लोगों ने उन्हें लोकनायक की उपाधि दी। परंतु उन्होंने कभी अपने को लोकनायक माना नहीं था। लोकसेवक ही माना। यदि वे चाहते, तो प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति बन सकते थे। किंतु ऐसी कोई इच्छा उनके मन में कभी उत्पन्न नहीं हुई। वे लोगों के बीच रहकर ही आम लोगों की सेवा करते रहे।”[1] 36 देशों से संवदेना संदेश आये। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी झंडा झुकाया गया। अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर

ने राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी को लिखा, "जयप्रकाश नारायण की मृत्यु का समाचार जानकर मुझे गहरा दुख हुआ। जे.पी. एक महान और सज्जन व्यक्ति थे। दुनिया जिसकी कद्र करती है, ऐसी एक अनोखी गांधीवादी विशेषता उनमें थी। अभी दुनिया को इस बात का पक्का विश्वास होना शेष है कि शक्ति नैतिकता में से उत्पन्न होती है और स्थायी परिवर्तन केवल शांतिपूर्ण क्रांति के कारण ही होता है, और सरकारें अपनी सत्ता जनता से ही प्राप्त करती हैं।

"जे.पी. पचास साल पहले अमेरिका में रहकर पढ़े थे, लेकिन आज भी हम उन्हें अपना कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। सन् 1977 में जब वे अंतिम बार अमेरिका आये थे, तब अमेरिका को अपना दूसरा घर कहकर उन्होंने हमें गौरवान्वित किया था।"[5]

उद्धरण

1. जयप्रकाश नारायण, अ लीडर बिट्रेड (इंडिया टुडे, अप्रैल 1-15, 1979), पृ. 9
2. जयप्रकाश, पृ. 487
3. लेफ्टिनेंट जनरल एस.के. सिन्हा से बातचीत के आधार पर
4. जयप्रकाश, पृ. 493
5. वही, पृ. 38

चिंतन और वैचारिक योगदान

सन् 1978 में जाने माने अर्थशास्त्री प्रो. अम्लान दत्त के साथ एक बातचीत में जे.पी. ने कहा था कि मेरा व्यक्तित्व मार्क्स, लेनिन और गांधी का संगम है। इस वक्तव्य से उनके विचारों के अंदर झांकने में सहायता मिलती है। जैसा कि लेखक ने भूमिका में लिखा है कि जे.पी. राजनीतिज्ञ से ज्यादा सत्य के अन्वेषक थे और सत्य के अन्वेषण के क्रम में वे विभिन्न विचारधाराओं के प्रभाव में आये—मार्क्सवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद, गांधीवाद, सर्वोदय एवं संपूर्ण क्रांति। विभिन्न विचारधाराओं के प्रभाव में आने के कारण कुछ लोगों को उनके विचारों में एकरूपता नजर नहीं आती है। किंतु ऐसा सोचना भ्रामक है। उनके अपने कुछ आदर्श थे और उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए उनकी रणनीति में बदलाव आता रहा जिस कारण उनकी विचारधारा में परिवर्तन देखने को मिलता है। यह आदर्श था सत्य को जानना और अन्याय, असमानता एवं शोषण पर टिकी व्यवस्था को समाप्त कर समता पर आधारित शोषण मुक्त समाज की रचना करना जहां असली शक्ति आम लोगों में निहित हो। चूंकि उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक था इसलिए वे हठधर्मी नहीं हो सकते थे। जे.पी. ने स्वयं लिखा है :

> किसी बाहरी व्यक्ति को मेरा अतीत जीवन-पथ अस्थिरता तथा अंधान्वेषण का टेढ़ा-मेढ़ा, वक्र रेखाचित्र जैसा प्रतीत होगा। लेकिन जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं, तो उसमें मुझे विकास की एक जैसी शृंखला दिखायी पड़ती है। इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वहां अन्वेषण तो था, परंतु वह अंधान्वेषण नहीं था, सामने प्रकाश के स्पष्ट संकेत थे जो आरंभ से ही अमलिन तथा अपरिवर्तित रहे और जिनके सहारे मैं अपने वक्र दीखने वाले मार्ग पर बढ़ता गया।[1]

अमेरिका में जे.पी. मार्क्सवादी विचारधारा में सराबोर हो गये क्योंकि शोषण तथा गरीबी को समाप्त करने का रास्ता उन्हें मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं वर्ग-संघर्ष में दिखायी पड़ा। सन् 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "समाजवाद क्यों" में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि समाजवाद सामाजिक पुनर्निर्माण एक पद्धति है, वैयक्तिक आचरण की कोई संहिता नहीं। इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में उन्होंने महात्मा गांधी के 'क्लास-कोलेबोरेशनशिप', 'ट्रस्टीशिप' तथा अहिंसा की तीखी आलोचना की। अमेरिका से वापस लौटने पर उन्होंने

मार्क्सवाद का इस्तेमाल भारत के परिप्रेक्ष्य में करना चाहा। इसलिए भारतीय कम्युनिस्टों से अलग हटकर उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा लिया। यह लेनिन का प्रभाव था कि साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलनों में कम्युनिस्टों को भाग लेना चाहिए। उस समय भी उनके लिए स्वाधीनता का अर्थ मात्र राजनीतिक स्वाधीनता नहीं था, "स्वतंत्रता लोगों के लिए असली तभी हो सकती है जब इसकी परिभाषा में उनकी मौलिक आवश्यकताएं आती हों। सामान्य तथा मोटे तौर पर जनता के लिए समाजवाद का मतलब गरीबी और शोषण खत्म करने से है। जहां तक आम लोगों की बात है उनकी प्रवृत्ति उस दिन-प्रतिदिन के दमन के खिलाफ लड़ना है जिससे वे उत्पीड़ित होते हैं। उनके लिए वह संघर्ष और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष एक ही चीज है, जो एक दूसरे में समाहित हो जाता है।"[2]

विषमता का मूल कारण है संपत्ति का संग्रह और उनका स्पष्ट मत था कि सारी संपत्ति प्रकृति के गर्भ में है जिस पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व नहीं हो सकता। मनुष्य श्रम कर प्रकृति के गर्भ से कुछ उत्पादन करता है और यदि यह मात्र जीवन निर्वाह के लिए हो तो संग्रह के लिए कुछ बचना नहीं है, किंतु ऐसा है नहीं।

"हमारे देश के लोगों की गरीबी का कारण तब यह है कि उत्पादन के साधनों पर—यानी औजार, साधन, भूमि इत्यादि पर उनका स्वामित्व नहीं रह गया है। उन्हें अधिकांशतः इन साधनों का मूल्य चुकाना पड़ता है और जितना ही अधिक मूल्य वे उनका देते हैं, उतना ही कम उत्पादन का हिस्सा उन्हें मिल पाता है और उतनी ही उनकी गरीबी बढ़ती है।"[3] जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई तो उसकी नीति में यह साफ साफ लिखा गया, "हर व्यक्ति को आवश्यकता भर मिलेगा और हर व्यक्ति शक्ति भर समाज को देगा।" पार्टी के कार्यक्रमों को लेकर जे.पी. गांधी जी के पास गये। इस पंक्ति को पढ़कर गांधी जी ने कहा कि जयप्रकाश, तुम लोग यदि ऐसा कर लो, तो मैं सोलहों आने तुम लोगों के साथ हूं।

संपत्ति के बारे में जे.पी. का विचार अंत तक एक जैसा बना रहा। जब संविधान की रचना की जा रही थी तब भी उन्होंने संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाये जाने का विरोध किया था। लेकिन उनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया गया। इसका दुष्परिणाम बाद में पता चला जब केशवानंद भारती के मामले में उच्चतम न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया कि मौलिक अधिकारों में भी संशोधन किया जा सकता है, 13 न्यायाधीशों के अब तक के सबसे बड़े संविधान पीठ में 6 न्यायाधीशों ने विचार व्यक्त किया कि मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है, जबकि छह ने इसके विपरीत मत व्यक्त किया। न्यायमूर्ति हंसराज खन्ना, जिनका विचार निर्णायक हुआ, ने कहा कि मौलिक अधिकारों में तो संशोधन नहीं किया जा सकता है, किंतु संपत्ति के अधिकार में संशोधन हो सकता है, और चूंकि संपत्ति के अधिकार को भी मौलिक अधिकारों के साथ

कर दिया गया है, इसलिए संविधान के पूरे अध्याय तीन में संशोधन संभव है। 44वें संविधान संशोधन के जरिये संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से बदलकर कानूनी अधिकार कर दिया गया।

भारत एक कृषि-प्रधान देश है, इसलिए भारत के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने मार्क्सवाद को थोड़ा रूपांतरित कर मजदूरों और किसानों पर बल दिया। उनका मानना था कि गांवों के गरीब मजदूर तथा किसान ही क्रांति के सूत्रधार हो सकते हैं। बड़े बड़े कारखानों में काम करने वाले वर्करों से क्रांति की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए क्योंकि उनका उद्देश्य वेतनमान वृद्धि तक सीमित होता है। इन वर्करों को जे.पी. ने 'पेटी बुर्जुआ' कहा। यहां जे.पी. माओ के निकट प्रतीत होते हैं जिन्होंने सांस्कृतिक क्रांति के लिए किसान मजदूरों को गोलबंद किया।

कई वर्षों तक मार्क्सवादी विचारों से ओतप्रोत रहने के बाद तीन कारणों से उनके हृदय ने मार्क्सवाद के विरुद्ध बगावत कर दी। पहला, मास्को ट्रायल, जिसमें पुराने सभी काडरों के गढ़े हुए आरोपों पर हत्या कर दी गयी। दूसरा, 1939 में विश्वयुद्ध के ठीक पहले स्टालिन का हिटलर के साथ समझौता। और तीसरा था, भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में कम्युनिस्टों की भूमिका। इसके बाद जे.पी. मानवतावाद की ओर झुक गये और यह उन्हें सिर्फ गांधी के दर्शन में नजर आया। वे गांधी जी के इस विचार से प्रभावित हुए कि सत्ता और अधिकारों का विकेंद्रीकरण होना चाहिए ताकि हर नागरिक को वह समान रूप से प्राप्त हो। मार्च, 1948 में नासिक में आयोजित सोशलिस्ट पार्टी के सम्मेलन में जब उन्होने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो मार्क्सवाद से उनका मोहभंग स्पष्ट रूप से पहली बार सामने आया। इसी समय उन्होंने गांधी जी की इस धारणा का पुरजोर समर्थन किया कि पवित्र साध्य के लिए साधन का भी पवित्र होना आवश्यक है। बाद में सन् 1952 में 21 दिनों के उपवास के बाद तो उनकी विचार यात्रा में एक बड़ा मोड़ आया और उन्होंने गांधी के दर्शन को आत्मसात कर लिया। उसी समय अपने बहुचर्चित लेख "इंसेंटिव टू गुडनेस" में उन्होंने लिखा कि अच्छाई की प्रेरणा सिर्फ भौतिकवाद से नहीं मिल सकती है। कहीं न कहीं भविष्य और परलोक का डर मनुष्य को बुरे काम करने से रोकता है। इस सबके बावजूद यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्ग संघर्ष के विचार का उन्होंने पूरी तरह परित्याग कर दिया था।

जब वे मार्क्सवादी थे तब भी उन्होंने 'सर्वहारा की तानाशाही' का विरोध करते हुए 'लोकशाही' का समर्थन किया था। दरअसल, यह उनके चिंतन का आधार रहा है कि मानवता एवं लोकतंत्र के बिना साम्यवाद खतरनाक है जैसे आर्थिक समता के बिना लोकतंत्र एक धोखा है। 'लोकतंत्र' में भी उनका जोर हमेशा 'लोक' पर बना रहा और उनके सभी आंदोलनों का ध्येय था 'लोकशक्ति' को संगठित कर 'लोक' की प्रतिष्ठा को स्थापित करना।

जब गांधी जी ने आजादी के बाद कांग्रेस को विघटित कर 'लोक सेवक संघ' के गठन का सुझाव दिया तो इसके पीछे धारणा यह थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में सामाजिक कार्य की अधिक आवश्यकता एवं महत्ता है और लोकतंत्र को विकसित करने तथा सामाजिक संरचना को बदलने के लिए लोकसत्ता का स्थान राजसत्ता से ऊपर होना चाहिए। जे.पी. इस विचार से इत्तफाक रखते थे और मानते थे कि मानव संसाधन के उत्तम भंडार के पचास प्रतिशत से अधिक लोगों को सरकार से अलग रहना चाहिए ताकि वे सरकार पर नैतिक नियंत्रण के रूप में काम कर सकें। इसीलिए उन्होंने अपने को राजसत्ता से हमेशा अलग रखा क्योंकि उनकी मान्यता थी कि आम लोगों की सहभागिता के बिना किसी मंजिल पर नहीं पहुंचा जा सकता, "क्रांतिकारी जमात के हाथ में सत्ता आ जाये, यह कोई क्रांति की सफलता नहीं। इससे क्रांति का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इस 'सफलता' का क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ इतना ही होता है कि पुरानी समाज-व्यवस्था को ध्वस्त किया जा चुका, लेकिन ध्वंस ही किसी क्रांति का लक्ष्य नहीं हो सकता। उनका लक्ष्य तो हमेशा एक नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है।"[4]

समाज में असली ताकत जनता के हाथ में हो, इसके लिए उन्होंने 'दलविहीन लोकतंत्र' की अवधारणा का प्रतिपादन किया। यहां एम.एम. राय से उनके विचार मिलते हैं। एम. एम.राय भी दलविहीन राजनीति के पक्षधर थे। डा. राय ने स्पष्ट लिखा, "एक पार्टी प्राथमिकता एवं प्रधानता न तो बौद्धिक प्रतिभा और न ही नैतिक चरित्र वाले लोगों को देती है, बल्कि उन लोगों को देती है जो सत्ता कब्जा करने में सबसे अधिक मदद दे सकते हैं।"[5]

सन् 1930 के दशक में ही जे.पी. ने दलविहीन लोकतंत्र की वकालत शुरू की। उनका विचार था कि विधानसभा और संसद में विभिन्न दलों के नहीं, बल्कि 'जनता के उम्मीदवार' निर्वाचित होकर जायें। 'ए प्ली फॉर रीकंस्ट्रक्शन ऑफ इंडियन पॉलिटी' में उन्होंने लोकतंत्र के पाश्चात्य माडल को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उस शासन में जनता की सहभागिता की ज्यादा गुंजाइश नहीं है। इसके स्थान पर वे ऐसी व्यवस्था विकसित करना चाहते थे जिसमें सरकार के हर स्तर पर जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी हो और इसमें किसी राजनीतिक दल की मध्यस्थता नहीं हो।

इसके लिए वे गांव में बिल्कुल निचले स्तर से काम शुरू करना चाहते थे। शहर में लोग एक दूसरे को नहीं जानते हैं और उसमें लोकतंत्र का जो माडल है उसमें नियमों के अनुसार लोगों पर शासन किया जाता है, व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर नहीं। इसके विपरीत गांवों में लोग एक-दूसरे से कई तरह से जुड़े होते हैं और सबों के बीच एक आत्मीय संबंध होता है। इसके साथ ही वे प्रकृति के सान्निध्य में होते हैं। गांधी जी की तरह जे.पी. भी मानते थे कि समाज निर्माण के काम में शुरुआत गांवों से करनी होगी जहां

अधिकांश जनता रहती है।

गांव ही आर्थिक विकास, योजना और स्वराज की मौलिक इकाई होना चाहिए। गांव की सबसे महत्वपूर्ण संस्था होगी ग्रामसभा, सभी वयस्क ग्रामीण जिसके सदस्य होंगे। इसकी पंचायत का गठन आम सहमति से होना चाहिए, न कि चुनाव से। जैसे एक संयुक्त परिवार में सदस्यों के बीच मतभेद तो होते हैं लेकिन इससे अलग अलग गुट नहीं बन जाते। ग्रामसभा और पंचायत को पूरा अधिकार प्राप्त होना चाहिए ताकि वह यह सुनिश्चित कर सके कि हर व्यक्ति की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जैसे, यह देखना उसकी जिम्मेदारी होगी कि गांव का कोई व्यक्ति बिना भोजन, वस्त्र और आवास का नहीं रहे, हर बच्चे को प्राथमिक शिक्षा मिले, हर व्यक्ति को आवश्यक स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त हो, आदि।

इसके बाद क्षेत्रीय स्तरों पर ग्राम पंचायतों को मिलाकर पंचायत समिति बनायी जानी चाहिए। पंचायत समितियों को मिलाकर जिला परिषदों, फिर उसी क्रम में राज्य की विधानसभाओं और अंत में राष्ट्रीय संसद का गठन होना चाहिए। इस सबके लिए उन्होंने अप्रत्यक्ष निर्वाचन का सुझाव दिया। वे इस बात के प्रति सचेत थे कि ऐसी राज्य-व्यवस्था का निर्माण इतनी जल्दी नहीं हो सकता है। इसलिए उन्होंने विचार रखा कि जब तक वैसी व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक चुनाव इस प्रकार होने चाहिए कि जिला-स्तर तक राजनीतिक दलों की उसमें कोई भूमिका नहीं हो। विधान सभाओं और संसद के लिए भी 'लोक उम्मीदवार' खड़े किये जाने चाहिए।

दो वर्ष बाद 'स्वराज्य फॉर द पीपुल' में उन्होंने 'रीकंस्ट्रक्शन ऑफ इंडियन पॉलिटी' में रखे गये अपने कुछ विचारों को संशोधित किया। इसमें उन्होंने लिखा कि अप्रत्यक्ष निर्वाचन से क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिल सकता है और इससे नागरिकों का राष्ट्रीय दृष्टिकोण भी विकसित नहीं हो पायेगा। इसके अतिरिक्त धनबल की भी इसमें अहम भूमिका हो सकती है, क्योंकि अप्रत्यक्ष चुनाव में मतदाताओं की संख्या बहुत सीमित हो जायेगी। इसलिए उन्होंने कहा कि राजनीतिक दलों की भूमिका को जहां तक संभव हो कम किया जाना चाहिए और लोग निर्वाचन परिषदों का गठन कर 'लोक उम्मीदवारों' का चयन करें।

शहरों के बारे में उनकी राय यह थी कि बड़े नगरों का पुनर्गठन कर छोटे छोटे समुदायों का परिसंघ बना दिया जाये। यदि ऐसा करना संभव न हो तो इस बात का ख्याल रखा जाये कि उन नगरों का और विस्तार न हो और न ही कोई बड़ा नगर पनप सके। जैसे कई परिवार एक साथ मिलकर छोटे स्तर पर समुदाय बनाकर रहते हैं उसी प्रकार वे छोटे छोटे समुदाय मिलकर क्षेत्रीय समुदाय बनायेंगे और एक दूसरे के सहयोग से आम समस्याएं हल करेंगे। इसी की परिणति जिला समुदाय और प्रांतीय समुदाय के बाद राष्ट्रीय समुदाय में होगी। इस तरह जैसे जैसे ये समुदाय बड़े होते जायेंगे वैसे वैसे उनके पास बहुत कम

काम बचेंगे और अंत में राष्ट्रीय समुदाय के पास प्रतिरक्षा, विदेश नीति, मुद्रा और अंतर्राज्यीय समन्वय जैसे विषयों को छोड़कर कुछ बचेगा ही नहीं।

इसके साथ ही आर्थिक सत्ता के विकेंद्रीकरण पर जोर देते हुए उन्होंने विचार रखा कि कुटीर उद्योग, लघु उद्योग और बड़े उद्योगों के बीच संतुलन रखा जाना चाहिए। इसलिए कुटीर उद्योग द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन हो सकता है उनका लघु उद्योग द्वारा उत्पादन नहीं किया जाना चाहिए। इसी प्रकार लघु उद्योगों से बनने वाली चीजों का उत्पादन बड़े उद्योगों को करने नहीं दिया जाना चाहिए।

जब उन्हें लगा कि राजनीतिक प्रक्रिया से इस तरह के परिवर्तन नहीं हो रहे हैं तो वे सर्वोदय की ओर बढ़े। इसमें उन्होंने भूदान-ग्रामदान की जगह ग्रामीकरण पर बल दिया क्योंकि दान की गयी वस्तु पर दानकर्ता का अधिकार समाप्त हो जाता है जब कि ग्रामीकरण में उसका सामूहिक अधिकार होता है। उनका मानना था कि भूमि का कानूनी स्वामित्व गांव में होना चाहिए तथा किसानों को पंचायत द्वारा खेती के लिए जमीन दी जानी चाहिए। इस आंदोलन में उन्हें काफी संभावनाएं दिखायी पड़ीं। सन् 1957 में उन्होंने अपने साथियों को लिखे पत्र में लिखा :

> मैं मानता हूं कि आज दुनिया में जो भिन्न भिन्न विचार प्रणालियां और समाज व्यवस्थाएं अस्तित्व में हैं, उन सबसे बढ़कर सर्वोदय एक कदम आगे है।...मेरा यह अटल विश्वास है कि दुनिया में यदि कभी शांति, स्वतंत्रता और बंधुत्व स्थापित करना हो, तो समाजवाद को आखिर सर्वोदय में विलीन होना ही पड़ेगा।[6]

इसके साथ ही उन्हें लगा कि दलविहीन राजनीति की अभिव्यक्ति भी सर्वोदय में होती है। इसके अलावा सर्वोदय दर्शन में राज्य का अस्तित्व शून्य है। जे.पी. भी उसी आदर्श स्थिति के हिमायती थे कि ऐसी व्यवस्था हो जाये जिसमें इसकी आवश्यकता ही न रहे कि एक व्यक्ति दूसरे पर शासन करे। वे एक ऐसा राज्यविहीन समाज बनाना चाहते थे जिसमें समाज प्रतिस्पर्धा पर नहीं, बल्कि स्वतः स्फूर्त सहयोग पर आधारित हो। गांधी जी ने राज्य को हिंसा के वाहक के रूप में देखा तो मार्क्स ने इसे दमन का कारक माना।

लगभग बीस वर्षों तक जे.पी. ने भूदान-ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य आंदोलन को मजबूत बनाने में अपनी शक्ति लगायी। किंतु अंत में वे इस नतीजे पर पहुंचे कि विनोबा का समझाने बुझाने का प्रयोग असफल हो गया और उन्होंने फिर से महसूस किया कि भारतीय परिवेश में किसी न किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष आवश्यक है। लेकिन उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि वर्ग संघर्ष की उनकी धारणा मार्क्स की धारणा से भिन्न है। इसमें कम जमीन वाले और भूमिहीन मजदूर एक साथ मिलकर लड़ेंगे और यह वर्ग संघर्ष शांतिमय संघर्ष,

असहयोग या सत्याग्रह के रूप में हो सकता है। भारत में औद्योगिक क्षेत्र में वर्ग संघर्ष की संभावना उन्हें नहीं दिखी।

वे कोई भी संघर्ष शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहते थे। हिंसक क्रांति के लिए उन्हें नैतिक आपत्ति नहीं थी, मात्र व्यावहारिक आपत्ति थी। उन्होंने इस धारणा का भी खंडन किया कि हिंसक क्रांति के परिणाम जल्दी आते हैं। इसके विपरीत रक्त क्रांति से जो नया समाज बनता है वह उस समाज से बहुत भिन्न होता है, जिसकी कल्पना क्रांतिकारियों ने पहले की होती है।

अंत में सन् 1974 में उन्होंने 'संपूर्ण क्रांति' का आह्वान किया। दरअसल, सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स ने इस शब्द का इस्तेमाल सन् 1847 में 'पॉवर्टी ऑफ फिलासफी' में किया था, "इस बीच सर्वहारा और बुर्जुआजी के बीच विरोध एक वर्ग का दूसरे वर्ग के खिलाफ संघर्ष है, ऐसा संघर्ष जो अपनी सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति में संपूर्ण क्रांति है।"[7]

इस शब्द का प्रयोग अलग अलग संदर्भों में जे.पी. ने पहले भी कई बार किया था। सर्वोदय के बारे में उन्होंने एक बार टिप्पणी की थी कि सर्वोदय यदि साध्य है तो संपूर्ण क्रांति साधन। सन् 1969 में प्रकाशित एक लेख में सर्वोदय आंदोलन के उद्देश्यों का जिक्र करते हुए उन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल किया था। जे.पी. के अनुसार संपूर्ण क्रांति में सात क्रांतियां निहित हैं--सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैचारिक या बौद्धिक, शैक्षणिक और आध्यात्मिक। यह संख्या बढ़ायी या घटायी जा सकती है। जैसे--सांस्कृतिक क्रांति में शैक्षणिक तथा वैचारिक क्रांतियों का समावेश हो सकता है। इसी प्रकार बौद्धिक क्रांति को वैज्ञानिक तथा दार्शनिक क्रांतियों में बांटा जा सकता है।

जे.पी. महसूस करते थे कि व्यवस्था इतनी जर्जर हो चुकी है कि सरकार या शासन की पद्धति बदल देने मात्र से नये समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता है। एक ऐसी क्रांति, जो जीवन के सभी पहलुओं में व्यापक परिवर्तन ला सके, के जरिये ही नया समाज बनाया जा सकता है। इसके तरीके के बारे में उन्होंने लिखा, "संपूर्ण क्रांति समाज के लोकतांत्रिक ढांचे को नुकसान पहुंचाये बिना तथा लोगों की लोकतांत्रिक जीवन पद्धति को प्रभावित किये बिना शांतिपूर्ण तरीके से लाना है।"[8]

संपूर्ण क्रांति के बारे में आचार्य कृपलानी ने कई बार प्रतिकूल टिप्पणी की थी। उनका मानना था कि क्रांति अपने आप में पूर्ण होती है, फिर संपूर्ण क्रांति क्यों? इसके साथ ही उन्होंने कहा कि सोवियत संघ में लेनिन ने संपूर्ण क्रांति के अंतर्गत परिवार और विवाह जैसी संस्थाओं पर भी प्रहार किया जिससे वहां की सामाजिक संरचना चरमराने लगी। उन्हें आशंका थी कि यदि ऐसा भारत में होता है तो यहां का समाज क्षत-विक्षत हो जायेगा। किंतु जे.पी. का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं था। वे केवल समाज की कुरीतियों, जैसे--तिलक-दहेज, ऊंच-नीच पर आधारित जाति-व्यवस्था और अंधविश्वास आदि पर

कुठाराघात करना चाहते थे। उनके विचार में इन कुरीतियो एवं अंधविश्वासों को खत्म किये बिना कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है। इसी अर्थ में यह संपूर्ण क्रांति थी कि इसमें जीवन के इन आयामों को भी क्रांति की परिधि में शामिल किया गया।

अंधविश्वास पर उन्होंने अपनी कहानी 'टामी पीर'[9] के माध्यम से भी करारी चोट की है जो उन्होंने सन् 1944 में लाहौर किले में कारावास के समय लिखी थी। उन्होंने वहीं एक और कहानी 'दूज का चांद' भी लिखी। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ कविताएं भी हैं जिन्हें पढ़कर उनके समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण एवं सर्जनात्मक क्षमता का पता चलता है।

जे.पी. के जीवन का एक और दर्शन यह रहा कि वे कभी विफलता से विचलित नहीं हुए। कुछ लोगों की नजर में जे.पी. कभी अपने मिशन में सफल नहीं हुए। लेकिन ऐसे लोग भूल जाते हैं कि जब लक्ष्य बहुत ऊंचा हो तो सफलता दुर्लभ हो जाती है। महात्मा गांधी ने जो टाल्सटाय के बारे में लिखा है वह जे.पी. पर भी पूरी तरह लागू होता है, "टाल्सटाय का यह प्रिय कथन था कि जिस क्षण व्यक्ति को विश्वास हो जाता है कि वह अपने आदर्श तक पहुंच गया है उसका आगे का विकास रुक जाता है तथा उसका पतन शुरू हो जाता है और आदर्श की विशेषता भी इसी में है कि जैसे ही हम उसके निकट जाते हैं वह हमसे दूर हो जाता है।" इसीलिए यह कहना कि टाल्सटाय अपनी ही स्वीकारोक्ति के अनुसार अपने आदर्श तक पहुंचने में असफल रह गये, उनकी महानता से थोड़ा भी अलग नहीं खींचता है, यह सिर्फ उनकी विनम्रता दर्शाता है।

"...निरंतर विकास जीवन का नियम है, और एक व्यक्ति, जो सुसंगत दीखने के लिए हमेशा अपने मत से चिपके रहने की कोशिश करता है, अपने को झूठी स्थिति में धकेल देता है। इसलिए इमर्सन ने कहा कि मूर्खतापूर्ण सुसंगति छोटे मस्तिष्कों का हौआ है। टाल्सटाय की तथाकथित विसंगति उनके विकास और सत्य के लिए उनके भावपूर्ण आदर का द्योतक है। वे कई बार असंगत दीखते थे क्योंकि वे लगातार अपने सिद्धांतों से बड़े होते जा रहे थे। उनकी विफलताएं सार्वजनिक थीं, उनके संघर्ष एवं विजय निजी। ... वह अपनी विफलता में भी महान थे और उनकी विफलता उनके आदर्शों की व्यर्थता का नहीं, बल्कि उनकी सफलता का आभास कराती है।"[10]

इसी प्रकार जे.पी. विफल नहीं हुए और यदि वे विफल हुए तो उनकी विफलता उदात्त है। चंडीगढ़ जेल में 9 दिसंबर, 1975 को उन्होंने अपनी भावना को अपनी कविता "मेरा जीवन" में इस प्रकार अभिव्यक्त किया :

जीवन विफलताओं से भरा है,
सफलताएं जब कभी आयीं निकट

दूर ठेला है उन्हें निजमार्ग से !
तो क्या वह मूर्खता थी?
नहीं।
सफलता और विफलता की
परिभाषाएं भिन्न हैं मेरी।
इतिहास से पूछो कि वर्षों पूर्व
बन नहीं सकता प्रधानमंत्री क्या?
किंतु मुझ क्रांति-शोधक के लिए
कुछ अन्य ही पथ मान्य थे, उद्दिष्ट थे
पथ त्याग के, सेवा के, निर्माण के
पथ संघर्ष के, संपूर्ण क्रांति के।
जग जिन्हें कहता विफलता
थीं शोध की वे मंजिलें।
मंजिलें वे अनगिनत हैं
गन्तव्य भी अतिदूर हैं।
रुकना नहीं मुझको कहीं
अवरुद्ध जितना मार्ग हो।
निज कामना कुछ है नहीं
सब है समर्पित ईश को।
तो विफलता पर तुष्ट हूं अपनी,
और यह विफल जीवन
शत शत धन्य होगा
यदि समानधर्मा प्रिय तरुणों का
कंटकाकीर्ण मार्ग
यह कुछ सुगम बना जावे।

उद्धरण

1. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 157
2. नारायण जयप्रकाश : फर्स्ट थिंग्स फर्स्ट कांग्रेस सोशलिस्ट, दिसंबर 26, 1936 (देखें नेशन बिल्डिंग इन इंडिया, पृ. 10)
3. नारायण, जयप्रकाश : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ. 10
4. नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार यात्रा, पृ. 105

5. राय, एन.एन. : रैडिकल ह्यूमैनिस्ट (ईस्टर्न इकॉनोलिस्ट पैम्फ्लेट), पृ. 31
6. जयप्रकाश, पृ. 167
7. प्रसाद, बिमल : जे.पीज. कान्सेप्ट ऑफ टोटल रिवॉल्यूशन : एन इंट्रोडक्ट्री एसे (जे.पी. एंड सोशल चेंज, संपादक : नागेश्वर प्रसाद, रेडियेंज पब्लिशर्स, नयी दिल्ली) पृ. 1
8. नारायण, जयप्रकाश : प्रिजन डायरी, पृ. 33
9. हिमालय 11, अग्रहायणी संवत 2003, पृ. 1-4
10. पेन-पोट्रेट्स एंड ट्रिब्यूट्स बाई गांधी, संकलन एवं संपादन, यू.एस. मोहन राव (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली), 1981, पृ. 27

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका